हिन्दी की आँचलिक कहानियाँ
फणीश्वरनाथ रेणु शिवप्रसादसिंह एवं मार्कण्डेय के विशेष संदर्भ में

HINDI KI ANCHALIK KAHANIYAM

PHANEESWARNATH RENU, SIVAPRASAD SING EVAM MARKANDEY KE VISESH SANDARBH MEIN

THESIS SUBMITTED TO THE
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
SUNNYKUTTY KURIAN

SUPERVISING TEACHER
Dr. A. ARAVINDAKSHAN
READER

PROF: AND HEAD OF THE DEPT.
Dr. N. RAMAN NAIR
DEAN FACULTY OF HUMANITIES

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN-22

1987

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Sunnykutty Kurian, under my supervision for Ph.D. Degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
Cochin - 682 022.

10--11--1987.

Dr. A. Aravindakshan,
Reader
(Supervising Teacher).

विषय सूची

पुरोवाक् पृष्ठ 1 - 9

अध्याय - एक

आँचलिक कहानी : स्वरूप और दृष्टि 10 - 3'

भूमिका - आँचलिक कहानी - प्रेमचन्द की कहानियाँ बनाम आँचलिक कहानियाँ - आँचलिकता: पश्चिम का अनुकरण है या नहीं ? - आँचलिकता का स्वरूप - परिभाषायें - आँचलिक-व-ग्रामीण - आँचलिकता की रचना दृष्टि - आँचलिकता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - पश्चिमी साहित्य में आँचलिकता: संक्षिप्त रूप रेखा - भारतीय साहित्य में आँचलिकता - आँचलिक कहानी की देन

अध्याय -दो

फणीश्वरनाथ रेणु का कृति व्यक्तित्व 38 - 70

आँचलिक कहानी के प्रवक्ता - पूर्णिया के कथाकार - प्रारंभिक जीवन - राजनीतिक क्रिया कलाप - साहित्यिक समारंभ - प्रकृति प्रेम - ग्रामीण और शहरी व्यक्तित्व का समन्वय - निर्भीक व्यक्तित्व के धनी - रेणु के कथेतर साहित्य - उपन्यास - रेखाचित्र-संस्मरण - रिपोर्ताज

अध्याय - तीन

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ 71 - 12

भूमिका - वस्तुपरक विश्लेषण - ग्रामीण जीवन का बदलता रूप - ग्रामीण

व्यक्तिचित्र - ग्रामीण महिलाएँ - ग्रामीण कलाकारों से संबंधित कहानियाँ - राजनीतिक संदर्भ और व्यंग्यपरकता - आत्मकथात्मक पक्ष से संबंधित कहानियाँ - शहरी जीवन की कहानियाँ - आँचलिकता

अध्याय - चार

शिवप्रसाद सिंह का कृति व्यक्तित्व 132 - 15

प्रथम ग्रामीण कथाकार - जीवनवृत्त - साहित्यिक विचार - कथेतर रचनाओं का सामान्य परिचय - उपन्यास - निबंध संग्रह - शोधग्रन्थ - जीवनी - नाटक - ललित निबंध

अध्याय - पाँच

शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ 156 - 20

वस्तुपरक विश्लेषण - गरीबी और शोषण - निम्न जाति के चित्र - प्रताड़ित नारीवर्ग - बदलते हुए गाँव की परिस्थितियाँ - शहरी जीवन की कहानियाँ - आँचलिकता

अध्याय - छः

मार्कण्डेय का कृति व्यक्तित्व 201 - 22

यथार्थवादी धारा के हस्ताक्षर - प्रेमचंदीय संवेदना का विकास - मार्क्सवादी दृष्टिकोण - नया ग्रामीण मोह - संक्षिप्त जीवन परिचय - सामाजिक दृष्टि का विकास - पहली कहानी - सही आदमी की तलाश - प्रभाव ग्रहण - ग्रामीण कथाकार - रचना के पक्ष - साहित्यक मान्यताएँ - कथेतर रचनाएँ - उपन्यास - आलोचना - एकाँकी

अध्याय - सात

मार्कण्डेय की कहानियाँ 226

वस्तुपरक विश्लेषण - ग्रामीण किसान मज़दूरों की समस्या - ग्रामीण यथार्थ का चित्र प्रताड़ित नारी वर्ग - बदलते हुए गाँव और बिगड़ती स्थितियाँ - जनसेवकों की रिश्वतखोरी - नगर जीवन की कहानियाँ - आँचलिकता

अध्याय - आठ

फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों का शिल्प विधान 263

नयी कहानी: नये शिल्प-विधि की खोज-यथार्थवादी शिल्प - संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प-पात्र केन्द्रित कहानियाँ - पात्र और परिवेश की अन्विति: प्रतीकात्मकता - प्रथम पुरुष पात्रों की प्रस्तुति - अन्य शैल्पिक प्रवृत्तियाँ - भाषा

उपसंहार 314

ग्रन्थसूची 328

पुरोवाक्

पुरोवाक्

नई कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में आंचलिकता की चर्चा होती है। इस दौर में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय को रचनाओं में प्रथमतः आंचलिक प्रवृत्ति की रचनात्मक प्रतीति मिलती है। इसलिए वे आंचलिक कहानी के प्रथम प्रयोक्ता भी हैं। प्रस्तुत शोधप्रबंध आंचलिक कहानी के स्वरूप निर्धारण तथा उन की कहानियों के विश्लेषण की दिशा में एक विनम्र प्रयास है। एम. फिल की उपाधि केलिए जो लघुशोधप्रबंध लिखना था, उसकेलिए मैं ने शिवप्रसाद सिंह की कहानियों को विषय के रूप में स्वीकार किया था, तभी से आंचलिक कहानी पर कुछ करने की इच्छा पैदा हुई थी। हिन्दी के तीन महत्वपूर्ण आंचलिक कहानीकारों की रचनाओं के आधार पर विस्तार से लिखने की बात मन में उठी। आंचलिक उपन्यासों पर अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हैं, लेकिन आंचलिक कहानियों पर पत्र-पत्रिकाओं और संकलित आलोचनात्मक ग्रन्थों में उपलब्ध लेखों के अलावा कोई ठोस ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। अतः यही विश्वास है कि यह शोधकार्य आंचलिक कहानी को समग्रता के साथ समझने की एक कोशिश भी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय का शीर्षक है "आंचलिक कहानी: स्वरूप और दृष्टि"। इस में आंचलिक कहानी को परिभाषित करने का कार्य किया गया है। आंचलिक कहानी के बारे में बहुत सारे मत प्रचलित हैं। जब कुछ आलोचक इसे नयी कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति मानते हैं तो कुछ अन्य आलोचक इसे मात्र प्रेमचन्द की दृष्टि की पुनः - प्रस्तुति मानते हैं। अतः इस अध्याय में आंचलिक कहानी के स्वरूप को तटस्थ ढंग से निर्धारित करने का प्रयास हुआ है। आंचलिक कहानी को आधुनिक कहानी की एक प्रवृत्ति के रूप में देखने के कारण वह किस अर्थ में प्रेमचंद से अलग है, इस पर भी विचार

किया गया है । प्रेमचन्द को महत्व देते हुए आँचलिकता की अस्मिता पहचानी गयी है । आँचलिक कहानी, ग्राम कथा जैसे शब्दों को ले कर भी वाद विवाद हुए हैं । अतः इस अध्याय में अलग-अलग शब्दों पर विचार करते हुए यह दृष्टि अपनायी गयी है कि दोनों शब्द एक ही परिवेश केलिए प्रयुक्त हैं । यद्यपि आँचलिक शब्द किंचित सूक्ष्म अर्थ प्रतीत कराता है, फिर भी दोनों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करने की बात पर ज़ोर दिया गया है । इस संदर्भ में यह भी स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शोध प्रबंध में दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इस के पश्चात् आँचलिक कहानियों की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है । मुख्य रूप से इस का वर्गीकरण कहानी को दृष्टि में रख कर किया गया है । यह प्रकरण लिखते समय यह कठिनाई महसूस हुई कि आँचलिकता पर प्राप्त अधिकतर सामग्री उपन्यासों के बारे में है । आँचलिक उपन्यासों के विश्लेषण के दौरान स्वीकृत प्रतिमानों के उपलक्ष्य में आँचलिक कहानी के प्रतिमान को प्रस्तुत करना पड़ा है । प्रवृत्तियों के विश्लेषण के उपरान्त इस अध्याय में पश्चिमी आँचलिक साहित्य की अत्यन्त संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है । तदुपरान्त भारतीय साहित्य में इस के विकास के बारे में भी किंचित विचार संकेतित हैं । निष्कर्ष के रूप में आँचलिक कहानी की देन पर भी विचार किया गया है ।

दूसरा अध्याय फणीश्वरनाथ रेणु के कृति व्यक्तित्व को लेकर है । रेणु आँचलिक कहानी के प्रवर्तक माने जाते हैं । एक विशिष्ट प्रवृत्ति-विशेष के उन्नायक के रूप में ही नहीं बल्कि आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य के इने-गिने सार्थक लेखक के रूप में भी रेणु का स्थान है । रेणु की कहानी के विश्लेषण के पहले उन के कृति व्यक्तित्व का अध्ययन अनिवार्य है । इस अध्याय के अन्तर्गत उन के प्रारंभिक जीवन से लेकर निधन तक के विभिन्न क्रिया-कलापों का विश्लेषण है । इस का उद्देश्य उन के व्यक्तित्व के अनदेखे पहलुओं को पहचानना मात्र है । रेणु किस प्रकार प्रकृति के चितेरे बन गये,

ग्रामीण जीवन के साथ उन का इतना तादात्म्य क्यों और कैसे हुआ है, उन की दृष्टि में इतना आत्मविश्वास कैसे आ गया है आदि बातों पर विचार करने केलिए, उन के जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन आवश्यक हैं । प्रकृति के उपासक होने के साथ साथ रेणु के व्यक्तित्व का एक और सशक्त पक्ष है जो एक प्रबुद्ध राजनीतिज्ञ का है । उन के राजनीतिक सरोकारों पर भी प्रकाश डाला गया है । इस अध्याय के दूसरे भाग में रेणु की कथेतर रचनाओं का सामान्य विवरण है । इस के अन्तर्गत उन के उपन्यासों, रेखाचित्रों, व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों, संस्मरणों, रिपोर्ताजों पर विचार किया गया है । इस विवरण से रेणु की अन्य रचनाओं का सामान्य परिचय भी प्राप्त हो सकता है तथा इन रचनाओं में उन के व्यक्तित्व का प्रसार किस प्रकार हुआ है यह भी देखा जा सकता है ।

तीसरा अध्याय है फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ । प्रस्तुत अध्याय रेणु की कहानियों का वस्तुपरक विश्लेषण है । रेणु की करीब पैंसठ कहानियाँ प्रकाशित हैं । रेणु के जीवन काल में उन के तीन संग्रह प्रकाशित हो गये थे । इन संग्रहों के बाहर भी उन की कहानियाँ यत्र-तत्र प्राप्त थीं, जिन का संकलन बाद में श्री.भारत यायावर ने किया है । फिलहाल कुल मिलाकर उन के पाँच संग्रह उपलब्ध हैं । इन पाँच संग्रहों की कहानियों के आधार पर प्रस्तुत अध्याय लिखा गया है । इस अध्याय के अन्तर्गत आठ प्रकरण हैं । पहला है ग्रामीण जीवन का बदलता हुआ रूप, जिस में आधुनिक गाँवों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर सामान्य ढंग से प्रकाश डाला गया है और उस संदर्भ को ले कर लिखी हुई कहानियों का विश्लेषण भी हुआ है । तत्पश्चात् ग्रामीण व्यक्तियों, विशेष नारीपात्रों, ग्रामीण कलाकारों पर आधारित कहानियों का विश्लेषण है । रेणु की श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ इस संदर्भ में विवेचित हैं । पात्र और परिवेश का समन्वय रेणु ने अतिरिक्त सादगी के साथ किया है । इसलिए उन के पात्र और परिवेश में आमग्न दीखते हैं । रेणु की कहानियों का राजनीतिक संदर्भ भी सुस्पष्ट है

जिन में उन का व्यंग्यकार प्रकट होता है । ऐसी कहानियों पर भी अलग से विचार किया गया है । उन के अपने जीवन के कुछ पहलुओं से संबंधित कहानियों का भी विश्लेषण है । सभी आँचलिक कहानीकारों ने शहरी जीवन के कुछ सन्दर्भों को लेकर कहानियाँ लिखी हैं । रेणु की भी ऐसी रचनायें हैं जो उन के रचनात्मक उत्कर्ष को सूचित करनेवाली कहानियाँ नहीं हैं । अतः सामान्य ढंग से ही उन का विश्लेषण हुआ है । इस अध्याय का प्रमुख पक्ष उन की कहानियों में प्राप्त आँचलिक पक्ष है । रेणु ने किस प्रकार अंचल को उभारा, ग्रामीण जीवन रीतियों को रचनात्मक दिशा दी, आचार विचारों का संदर्भ कहानियों में कैसे उतारा है आदि बातें इस प्रकरण में विश्लेषित हैं । रेणु की कहानियों में आँचलिक स्थिति उस की उत्कर्षावस्था में है । इस ओर संकेत करने योग्य सामग्री आँचलिकता शीर्षक अलग प्रकरण में उपलब्ध है ।

चौथा अध्याय शिवप्रसाद सिंह का कृति व्यक्तित्व है । शिवप्रसाद सिंह को प्रथम आँचलिक कहानीकार कहें तो गलती नहीं होगी । उन की "दादी माँ" नामक कहानी इस ओर का प्रथम प्रयास है । उन की कहानियों पर विचार करने के पहले कहानीकार के कृति व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना था । इसलिए शिवप्रसाद सिंह के प्रारंभिक जीवन से लेकर अब तक की जीवन कथा तथा उन के व्यक्तित्व के प्रमुख पहलुओं पर विशेष रूप से विचार किया गया है । इस दौरान उन में किस तरह आँचलिक मोह का विकास हुआ, उस को भी रेखांकित किया गया है । इस अध्याय के दूसरे भाग में शिवप्रसाद सिंह की कथेतर रचनाओं का सामान्य विश्लेषण हुआ है । शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास और आलोचनायें विशेष रूप से विवेचन के योग्य हैं । अतः इस खंड में उन के उपन्यासों, आलोचनात्मक लेखों के संकलनों, निबन्ध संग्रहों, शोध ग्रन्थ तथा श्री.अरविन्द पर लिखित उन का प्रसिद्ध जीवनी "उत्तर योगी" तथा उन के ललित निबंध संग्रहों पर प्रकाश डाला गया है । वस्तुतः उन के रचना व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर विचार करना ही इस अध्याय का लक्ष्य है ।

पाँचवाँ अध्याय शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का वस्तुपरक विश्लेषण है । शिवप्रसाद सिंह ने अपनी समस्त कहानियों में ग्रामीण वातावरण बनाये रखने की चेष्टा की है । किन्तु उन्होंने विशेष रूप से ग्रामीण जीवन की विभिन्न सामाजिक विसंगतियों पर ही प्रकाश डाला है । उन की दृष्टि निम्नजाति के गाँववालों की आर्थिक कठिनाइयों पर पड़ी है । उन पर होनेवाले शोषण को भी उन्होंने चित्रित किया है । उपेक्षित निम्न वर्गीय जीवन को ग्रामीण परिवेश में प्रस्तुत करके उन्होंने आँचलिक कहानी का विस्तार किया है । प्रताड़ना और प्रवंचना के शिकार बने हुए कई नारी पात्र उन की कहानियों में उपलब्ध हैं । इस प्रकार ग्रामीण समाज का एक व्यापक परि-दृश्य उन की कहानियों में मिलता है । साथ ही साथ ग्रामीण आस्थाओं तथा विश्वासों की एक रचनात्मक परिवृति भी उन की कहानियों में प्राप्त है । इस अध्याय का दूसरा खंड़ आँचलिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण से संबंधित है जिस के अन्तर्गत अंचल का अंकन, ग्रामीण संस्कृति की विवृति, रूढ़ियों-अंधविश्वासों का वातावरण तथा लोकगीत का प्रयोग आदि विवेचित है । कुलमिलाकर इस अध्याय में शिवप्रसाद सिंह की सामाजिक और ग्रामीण दृष्टि के समन्वय का विवेचन ही हुआ है ।

छठा अध्याय मार्कण्डेय का कृति व्यक्तित्व है । नयी कहानी की यथार्थवादी धारा के अन्तर्गत मार्कण्डेय की चर्चा होती है । लेकिन वे मूलत: आँचलिक रचनाकार हैं । इस अध्याय में उन के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है । प्रगतिशील लेखन के साथ उन के संबंधों और मार्क्सवादी दृष्टि के प्रभावग्रहण तथा उन की सुदृढ़ और प्रखर सामाजिक दृष्टि के बारे में विचार करते हुए उन के व्यक्तित्व के मूल पक्ष को पहचानने का कार्य किया गया है । कृषकों के जीवन के साथ उन का संबंध मौलिक है । यहीं से समस्याओं के साथ उन का तादात्म्य प्रारंभित होता है । कहानीकार के रूप में जब मार्कण्डेय उभर कर आये तो उन्हीं ग्रामीणों के वे कथाकार

बन गये । अत: उन की कहानियाँ ग्रामीण यथार्थ की संवेदनायें हैं । इस अध्याय के दूसरे भाग में मार्कण्डेय की अन्य रचनाओं के बारे में विचार प्रस्तुत किया गया है । उन के उपन्यासों, कहानी संबंधी आलोचनात्मक ग्रन्थ तथा अन्य रचनाओं का सामान्य विवरण दिया गया है । प्रस्तुत अध्याय में उन के व्यक्तित्व के इन विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है ।

सातवाँ अध्याय मार्कण्डेय की कहानियों का वस्तुपरक अध्ययन है । मार्कण्डेय की कहानियाँ प्रेमचन्द की कहानियों का ही विकास है । अन्तर सिर्फ़ इतना है कि प्रेमचन्द में ग्रामीण मोह उतना प्रबल नहीं है जब कि मार्कण्डेय में वह प्रबल है । अत: संघर्षशील किसान-मज़दूरों को प्रस्तुत करते समय भी उन्हों ने आँचलिक स्थिति को बनाये रखने का प्रयास किया है । ग्रामीण जीवन की स्वछंदता और सरलता से भर पूर चित्र भी उन की कहानियों में प्राप्त होते हैं । ऐसी कहानियों में सामाजिक दृष्टि से अधिक एक ग्रामीण कलाकार का व्यक्तित्व उभरा है । मार्कण्डेय की कहानियों की आँचलिक प्रवृत्तियों पर अलग ढ़ंग से विचार किया गया है जिस में आँचलिक कहानी के उपयुक्त जितने प्रतिमान उन की कहानियों में उपलब्ध हैं उन पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । देहाती जीवन का सहज वातावरण प्रकारान्तर से उन की सभी कहानियों में मिलता है । किन्तु उन की कहानियाँ यथार्थवादी हैं, जिन में नये गाँवों और वहाँ की जनता की आशा आकांक्षाओं के बहुत सारे क्षण प्राप्त होते हैं ।

अध्याय आठ आँचलिक कहानी की शिल्प विधि से संबंधित है । इस अध्याय में तीनों की कहानियों को एक साथ रख कर शिल्पपरक वैशिष्ट्य को परखने का कार्य किया गया है । नई कहानी शिल्प की दृष्टि से भी काफ़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है । आँचलिक कहानी प्राय: यथार्थवादी दृष्टि को ही प्रश्रय देती रही है । इसलिए बहुत

सी रचनाएँ यथार्थवादी शिल्प पर विन्यसित हैं । यथार्थवादी शिल्प की विशिष्टता उस की विवरणात्मक प्रवृत्ति है । इन दो शैल्पिक प्रवृत्तियों का विभिन्न कहानियों के माध्यम से विश्लेषण किया गया है । यथार्थवादी शिल्प के बावजूद कुछ कहानियाँ संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प की हैं । जिन रचनाओं का यथार्थ संश्लिष्ट है उन में आँचलिक संकेतों का संरचनात्मक उपयोग हुआ है । कभी-कभी आँचलिक मिथकों के रूप में या आँचलिक प्रतीकों के रूप में । सांकेतिकता कहानी में रूपात्मक प्रयोग के रूप में नहीं बल्कि उस की कथात्मक स्थिति से युक्त होकर प्रकट होती है । संश्लिष्ट यथार्थ की कहानियों पर विचार करते समय सांकेतिकता पर भी विचार किया गया है । अधिकतर आँचलिक कहानियाँ ग्रामीण व्यक्ति विशेष पर आधारित हैं । इन व्यक्ति-विशेष की कहानियों के शिल्प की अपनी विशेषता है । तीनों कहानीकारों की ऐसी कहानियाँ हमें प्राप्त हुई हैं । कभी-कभी प्रथम पुरुष कथापात्रों के माध्यम से कहानी प्रस्तुत की जाती है । आँचलिक स्थिति को मूर्त बनाने के हेतु वृक्षविशेषों या स्थान विशेषों को प्रतीकात्मक पात्रों के रूप में स्वीकार किया गया है । जो भी हो यथार्थवादी शिल्प के बावजूद इन कुछ शिल्पगत प्रयोगों ने आँचलिक कहानी के रूपबन्ध को अवश्य संपन्न बनाया है ।

आँचलिक कहानियों के शिल्प के अध्ययन के दौरान भाषा पर विशेष रूप से ध्यान देना है । आधुनिक रचना में भाषा को अलग इकाई के रूप में नहीं बल्कि संरचना की मूलस्थिति के साथ रखकर आँका जाता है । इस दिशा में आँचलिक कहानी की भाषा का अलग महत्व है । आँचलिक भाषा ने हिन्दी साहित्य में लोक अस्मिता का एहसास दिया है । प्रस्तुत अध्याय में आँचलिक भाषा की सृजनात्मकता पर भी विचार किया गया है ।

उपसंहार में कहानीकारों की रचनाओं में प्राप्त तुलनीय और अतुलनीय पक्षों पर विचार किया गया है । अलावा इस के यह भी देखा गया है कि भारतीय संदर्भ में

आंचलिक कहानी का महत्व क्या है ? भारत की विशेष भौगोलिक परिस्थिति एवं हमारे ग्रामीण जीवन के समाज शास्त्र के संदर्भ में आंचलिक कहानियों का महत्व है ।

प्रस्तुत शोधकार्य कोचिन विज्ञान व प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डा.अरविन्दाक्षनजी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । कहानी के क्षेत्र में विशेष रुचि रखनेवाले परम आदरणीय अरविन्दाक्षनजी से मुझे कहानी संबंधी जो नयी दृष्टि मिली, जिस प्रकार उन्होंने मेरे शोधपथ को सुगम बनाया, शब्दों में उस का विवरण करना कठिन लग रहा है । मेरेलिए वह सर्वाधिक मूल्यवान क्षण है । अरविन्दाक्षनजी के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं ।

विभागाध्यक्ष डा.एन.रामन नायर जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना सर्वोच्च कर्तव्य समझता हूं । इस शोधकार्य के दौरान मुझे जितनी समस्याओं का सामना करना पड़ा उन्हें शीघ्र दूर करने तथा मुझे शोधकार्य में संलग्न बनाये रखने में वे अक्सर उत्सुक रहे हैं । उनका प्रोत्साहन और सौजन्य स्नेहोष्मल रहा है । उन की कृपा का मैं पात्र बन सका जो मेरेलिए महत्वपूर्ण है ।

विभाग के आचार्य डा.विजयन जी ने इस शोध प्रबन्ध की पांडुलिपि आद्यंत देख कर रचनात्मक सुझाव देने की कृपा दिखाई है । उनके सुझाव मुझे इसके पहले भी मिलते रहे हैं । उनके स्नेह और प्रोत्साहन, उनके समयोचित सुझाव केलिए तथा सहृदयता के सामने मैं नमन कर रहा हूं ।

डा.रामचन्द्र देव के प्रति भी मेरे मन में आदर समन्वित भावना है । उनके प्रोत्साहन का अपना मूल्य है । समय-समय पर प्राप्त प्रेरणा केलिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं ।

इस शोधकार्य के सिलसिले में मुझे कई यात्रायें करनी पड़ी तथा कई सुयोग्य व्यक्तियों से मिलने का सुअवसर भी मिला । कथाकार शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय

से उनके अपने घर पर मिलने की सुविधा मिली । उन के मुँह से, उनसे रचित कई कहानियों के बारे में सुनने का अवसर भी मिला । वस्तुत: वह एक मूल्यवान यात्रा है । हिन्दी के उन दो प्रसिद्ध आँचलिक कहानीकारों ने मुझे जो स्नेह दिया, अपने सुझावों से मेरे चिंतन को प्रशस्त किया, इसकेलिए उन दो रचनाकारों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

शोधयात्रा के दौरान विभिन्न विश्व-विद्यालयों में कार्यरत प्रतिष्ठित आलोचकों से लाभान्वित होने का अवसर भी मुझे मिला है । डा.नामवर सिंह (जवहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली), डा.काशीनाथ सिंह (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), डा. निर्मला जैन (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली), डा. शिवकुमार मिश्र (सरदार पट्टेल विश्वविद्यालय, गुजरात), डा.मानेजर पाण्डेय तथा डा.केदारनाथ सिंह (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली) आदि वरिष्ठ, प्रतिष्ठित विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से मेरी सहायता की है । उन की सहायता और उदारता केलिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ ।

बाँगलूर के सेंट जाँसफ्स कालिज के रीडर परमानन्द गुप्ताजी ने अपने निजी पुस्तकालय से कई पुरानी पत्रिकायें मुझे देकर अनुपलब्ध सामग्री को उपलब्ध बनाने का कार्य किया है । उनके प्रति भी मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने "फैकल्टी इम्प्रूमेंट प्रोग्राम" के अन्तर्गत शोध कार्य करने की सुविधा मुझे दी है । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, कोचिन विश्व-विद्यालय और सेंट बर्कमैन्स कोलेज के अधिकारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन की सहायता मुझे बराबर मिलती रही है ।

टंकण यंत्र तथा अन्य प्रकार की गलतियों केलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

कोच्चिन,

24-9-1987.　　　　　　　　　　सण्णिकुट्टि कुर्यन्

अध्याय एक

आंचलिक कहानी : स्वरूप और दृष्टि

अध्याय: एक

आँचलिक कहानी: स्वरूप और दृष्टि

भूमिका

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय साहित्य में परिवर्तन की अनेक दिशायें दृष्टिगोचर होती हैं । स्वाधीनता प्राप्ति भारतीय जनता केलिए सिर्फ एक घटना नहीं है भारतीय जन-मानस की आशा-आकांक्षा भी उस के साथ जुड़ी हुई है । परिवर्तन के और भी कई कारण हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के एकदम बाद की स्थितियाँ सामान्य नहीं थीं । अत: उन असामान्य स्थितियों को अनदेखा नहीं किया जा सकता था । 'भारत के स्वतंत्र होते ही विभाजन, शरणार्थियों का प्रवाह, पुनरावास की समस्या, गाँधीजी का आत्मबलिदान, सार्वजनिक क्षेत्र में मूल्यविघटन, धीरे-धीरे उबलते देशीय चरित्र का नाजुक क्षण आदि स्वतंत्र भारत के लेखकों को अपने विषय के रूप में मिल गये ....'[1] । अलावा इस के हम यह भी देख सकते हैं कि तब तक विश्वसाहित्य आधुनिकता के दौर से गुज़र रहा था । भारतीय साहित्य में भी उस की अनुगूँज सुनाई पड़ने लगी थी । इन तमाम बातों से प्रतिक्रियान्वित होने का उपक्रम उस दौर के भारतीय साहित्य में देखा जा सकता है । हिन्दी में परिवर्तन की सूचनाएँ उस के पहले ही प्रकट हो चुकी थीं । अत: स्वाधीनता प्राप्ति के समय तक आते आते हिन्दी में परिवर्तन का एक ठोस धरातल बन गया था । नये साहित्य का वातावरण पूर्ण रूप से व्याप्त हो चुका था ।

नई कहानी

नई कहानी स्वातंत्र्योत्तर युग की हिन्दी कहानी की महत्वपूर्ण रचनात्मक अवस्था है। नई कहानी के प्रारंभ को अर्थात् नयेपन को और उस के समग्रता के साथ

---

1. Quoted from 'Indian literature since Independence' - Introduction - K.R.Sreenivas Iyankar (1973), Page xvii.

के विकास को इसी संदर्भ में आँका जाना चाहिए । स्वातंत्र्योत्तर युग के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं तथा व्यक्ति जीवन की तरह-तरह की गहराइयों को ही नई कहानी ने विषय के रूप में ग्रहण किया था । अर्थात् एक व्यापक परिवेश को पूरी जीवन्तता के साथ नई कहानी ने आत्मसात किया । यह परिवेश नये यथार्थ बोध से पूरी तरह से संपृक्त था - "समकालीन यथार्थ और संदर्भों का जो विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कहानी में हुआ, वह वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से पिछले कथा-साहित्य से एक सचेत प्रस्थान है । नये परिवर्तनों को रेखांकित करने के कारण इस काल का कहानी-लेखन साहित्यचर्चा के केन्द्र में आ गया"[1] । इस अवसर पर यह भी सूचित करना अनुपेक्षणीय लग रहा है कि हिन्दी कहानी में आधुनिकता का एहसास पूर्ववर्ती कहानियों में भी प्राप्त था और उस दृष्टि से नई कहानी का प्रारंभ वहीं से भी माना जा सकता है । लेकिन इस संदर्भ में समग्र विकास का अपना एक अलग ही अर्थ है । अत: स्वातंत्र्योत्तर युग के पहले के परिवर्तनों और प्रयोगों को मूल्य प्रदान कर के स्वातंत्र्योत्तर युग से आधुनिक साहित्य का प्रारंभ माना जाता है और नई कहानी का संबन्ध स्वातंत्र्योत्तर स्थिति से ही है ।

आँचलिक कहानी

नई कहानी के साथ-साथ उस की एक सशक्त प्रवृत्ति के रूप में प्राय: आँचलिकता पर विचार-विमर्श होता है । पहले पहल तो नगर कहानी बनाम ग्राम कहानी के रूप में चर्चा चली और इस बात को लेकर मत भेद भी था कि किस संदर्भ को ले कर लिखी जानेवाली कहानी को नई कहानी माना जाय । आँचलिक शब्द बाद में चालू हो गया ।

---

1. सारिका, जुलाई 1978 - संवाद - प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी की मुख्य धारा, पृष्ठ 16

हिन्दी में प्रचलित कहानी के इस प्रवृत्ति विशेष के विभिन्न पक्षों पर विचार करने के पहले यह देखा जा सकता है कि अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रवृत्ति का रचनात्मक परिप्रेक्ष्य क्या है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में लोकचेतना से युक्त एक दृष्टि का विकास हुआ है । सभी भाषाओं में यह प्राप्त है । साहित्य के पहले यह प्रवृत्ति कला के क्षेत्र में विकसित हुई, विशेष रूप से चित्रकला और वास्तु कला के क्षेत्र में । इस के पीछे भारतीय अस्मिता की खोज वर्तमान है । लोकचेतना का स्फुरण साहित्यिक विधाओं में विभिन्न प्रकार से दिखाई देता है । कथासाहित्य में यह दृष्टि ग्रामीण जीवन के वैविध्य के चित्रण करते हुए विकसित हुई । भारत की सभी भाषाओं में यह प्रवृत्ति नज़र आती है । यह मात्र स्थानीय रंग के मोह से उद्भूत दृष्टि नहीं है । अत: आँचलिक कहानी लोकचेतना का अभिव्यक्ति-पक्ष है ।

भले ही यह प्रवृत्ति क्षीण रूप में पहले भी रही हो । फिर भी स्वातंत्र्योत्तर युग में ही यह बलवती हो गयी है । हिन्दी में यह प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर युग की देन है । हिन्दी के कई आलोचकों ने भी इस मत का समर्थन किया है । आँचलिकता की शुरूआत के बारे में राजेन्द्रअवस्थी का मत यों है - "स्वाधीनता के बाद जनता और विद्वानों का ध्यान जनपदों की ओर गया, जो अभी तक एकदम उपेक्षित थे । जनपदीय बोलियों, मुहावरों और लोकगीतों के संकलन का काम एक आन्दोलन की तरह आरंभ हुआ । स्वाधीनता के साथ ही यत्र-तत्र इन विषयों पर लगातार रचनाएँ छपने लगीं"[1] ।

---

1. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका आँचलिकता: एक बात चीत:राजेन्द्र अवस्थी, प्रथम संस्करण 1974, पृष्ठ 2

डा.बच्चन सिंह का मत भी इस से भिन्न नहीं - "यों इस स्वातंत्र्योत्तर दशक में ग्रामांचल की कहानियों ने ही पहले ध्यान आकृष्ट किया"[1] । लक्ष्मण दत्त गौतम की राय में - "आंचलिकता का उद्भव स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त घोषित गणतंत्रात्मक आस्था से संबद्ध है"[2] । डा.भगवती प्रसाद शुक्ल भी इस से सहमत हैं - "सन् 1947 से ले कर 1960 तक का युग आंचलिक साहित्य के अध्ययन और सृजन का युग रहा है"[3] । "इसी समय (स्वातंत्र्योत्तर काल) आंचलिक कहानी का विशेष आंदोलन उभरा"[4] । उपरोक्त निरीक्षणों से हम इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही कथा साहित्य में आंचलिकता की चर्चा ज़ोरदार हुई है । हिन्दी में यह प्रवृत्ति बाद में अधिकाधिक विकसित हुई और आगे चल कर एक विशिष्ट धारा के रूप में सुसम्मत बन गई ।

प्रेमचन्द की कहानी बनाम आंचलिक कहानी

प्रेमचंद ने भी ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं । लेकिन उन की कहानियाँ सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति केलिए सृजित हैं । प्रेमचन्द मानववादी कथाकार रहे हैं । उन की कहानियाँ पूरी तरह से सामाजिक संपृक्ति की प्रतीति देती हैं । उन में

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा.बच्चनसिंह प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 140.
2. तटस्थ - अक्तूबर 1972, पृष्ठ 22.
3. आंचलिकता से आधुनिकता बोध - डा.भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 130.
4. हिन्दी कहानी - सातवाँ दशक - प्रहलाद अग्रवाल, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ 8.

करुणार्द्र मानवीयता के कण बिखरे पड़े हैं । प्रेमचंद की कहानी कला के बारे में इन्द्रनाथ मदान यों लिखते हैं - "प्रेमचंद की कहानी कला के मूल में समाज-मंगल की भावना है, समष्टि सत्य की धारणा है, सामाजिक उद्देश्य की प्रेरणा है"[1] । प्रेमचंद की अच्छी समझी जानेवाली कहानियों में - "पूस की रात", "कफ़न", "ठाकुर का कुआ" जैसी कहानियों में-सामाजिक अन्तर्विरोध का सटीक चित्रण ही नहीं उस के विरुद्ध आवाज़ भी बुलन्द है । "उन्होंने तटस्थ दृष्टि से समझ लिया था कि इन समस्याओं के मूल कारण समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता है तथा वर्गचेतना के बिना इन समस्याओं का निराकरण संभव नहीं है"[2] । उपरोक्त सूचित उन की श्रेष्ठकहानियाँ एक विशेष अर्थ में ग्रामीण जीवन परिवेश को ले कर सृजित रचनाएँ हैं । पर इन कहानियों को पढ़ते हुए हमें ग्रामीण संस्कृति का वह महौल नहीं मिलता है जो कि इधर की आँचलिक कहानियों में उपलब्ध है । यह तो कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन की कहानियाँ भी लिखी हैं । लेकिन उन का इच्छित आदर्श रचना के स्तर पर जनपदीय संस्कृति का आवाहन नहीं था । सामान्य अर्थ में ग्रामीण चेतना की कहानियों का आरंभ प्रेमचन्द से माना जा सकता है ।

आँचलिक कहानियों में विशेष गाँव या जनपद की उपस्थिति ही प्रमुख है । सामाजिक उद्देश्य भले ही कई कहानियों में जीवन्त हो फिर भी लोक संस्कृति पर उन का पूरा ज़ोर है । सामाजिक पहलुओं को प्रमुख स्थान प्राप्त रचनाओं में भी ग्रामीण संस्कृति एक आन्तरिक स्रोत के रूप में प्राप्त होता है जिस से जनपदीय वातावरण रचनाओं का एक अभिन्न अंग-सा हो जाता है । राजेन्द्र अवस्थी ने इस अन्तर को यों

---

1. कहानी और कहानी - भूमिका, कहानी की कहानी - इन्द्रनाथ मदान, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 8.
2. वातायन अंक-10, अक्तूबर-जनवरी 1981 हेतुभरद्वाज के लेख से उद्धृत पृष्ठ 143.

सूचित किया है - "उन (प्रेमचन्द) के सामने एक आक्रान्त और सताया हुआ समाज था। उस समाज की बुराइयों को जितने अच्छे ढंग से रखा जा सकता था, प्रेमचन्द ने रखा। परन्तु एक विशिष्ट गाँव अथवा जनपद को अपनी पूरी कथा का माध्यम न तो प्रेमचंद ने और न उन के बाद के किसी कहानीकार ने बनाया"[1] । प्रेमचन्द और रेणु के संदर्भ में इस अन्तर को संस्थित कर के धनंजय वर्मा ने यों लिखा है - "ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण तो दोनों में है, लेकिन प्रेमचन्द में जहाँ ग्राम्य जीवन से सहानुभूति है, वहाँ रेणु में आत्मीयता और तादात्म्य है"[2] । यह अन्तर सामान्य नहीं है। किन्तु यह एक दूसरे की तुलना कर के एक को अतिश्रेष्ठ साबित करने का उपक्रम भी नहीं है। आँचलिक कहानी का प्रारंभ प्रेमचंद से मानना संगत नहीं है। अतः दोनों की रचनाओं मे प्राप्त विभिन्नताओं को सूक्ष्मता से रेखांकित करना भी आवश्यक है।

प्रेमचंद की कहानियों के बाद कहानी क्षेत्र से बहिष्कृत ग्रामीण किसान-मज़दूर और उन की समस्याओं को आँचलिक कहानी में एक नया संदर्भ मिला। पूर्णरूप से ग्रामीणता में आमग्न कथास्थितियाँ प्रेमचन्दीय दृष्टि से प्रस्थान का सूचक हैं। आँचलिक कहानियों में पिछड़े हुए इलाकों के जीवन तथा वहाँ के क्रिया-कलापों का जीवन्त चित्रण प्राप्त होने लगा है। इस कारण से उन कहानियों में "धरती की सोंधी गंध और क्षेत्रीय जीवन के स्पंदित यथार्थ"[3] का अनुभव गहरा है। तथा-कथित प्रगतिशील के बावजूद जीवन की वेगवान गति के साथ न बढ़ पाने की स्थिति में रहते आये जनपद के लोगों की कहानियाँ आँचलिक कहानी मे अनावृत होती हैं।

---

1. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 2.
2. नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति - धनंजयवर्मा के लेख से उद्धृत
   प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ 194.
3. कल्पना-मार्च 1965 - शिवप्रसादसिंह के आँचलिकता और आधुनिक परिवेश नामक लेख से उद्धृत - पृष्ठ 29.

अँचल शब्द से उस की विशिष्टता का बोध होता है । लेकिन यह विशिष्टता कभी-कभी उन के पिछड़ेपन के कारण है और कभी-कभी सामान्य धारा से कट कर जी लेने के कारण । ऐसे अँचलों से संबद्ध कृतियों में वहाँ की संस्कृति का बारीक चित्रण और उन लोगों के जीवन के साथ मिली-जुली रूढ़ियों एवं उन के अंधविश्वासों, तीज-त्योहारों तथा आचार विचारों, उन के भाषा-मुहावरों का, सहजता के साथ चित्रण मिलने लगा ।

<u>आँचलिकता पश्चिमी अनुकरण है या नहीं</u>

आँचलिक कहानियों के बारे में आरोप है कि वह पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्ति के अनुकरण के रूप में यहाँ प्रचलित हुई है । मधुकर गंगाधर "इस आँचलिकता का उत्स अमेरिका से मानते हैं".[1] । सीतारामशर्मा भी इस से सहमत हैं । उन्होंने लिखा है - "आँचलिक साहित्य भी इस पश्चिमी अनुकरणशीलता की परंपरा में आता है".[2] । लेकिन हर बात को पश्चिम में आयातित समझना संगत नहीं लगता । आँचलिक कथासाहित्य भारतीय परिस्थिति की विशेष उपज है । निसंदेह यह एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रवृत्ति का परिणाम है । स्वतंत्रता के बाद के एक निजी आत्मान्वेषण की भावना ही इस प्रवृत्ति में निहित है । साथ ही आज़ादी की लड़ाई के अवसर पर महात्मा गाँधीजी ने 'गाँव की ओर लौटो" आंदोलन शुरू किया था, जिस से हिन्दी साहित्य में आँचलिकता की प्रवृत्ति को प्रेरणा मिली होगी । अतः हम समझ सकते हैं कि "आँचलिकता की प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर हिन्दुस्तान की एक सांस्कृतिक प्रवृत्ति थी, जिस के भीतर भारतीयता को अन्वेषित करने की सूक्ष्म अन्तर्धारणा कार्य कर रही थी"[3] । डा.राजेन्द्र अवस्थी भी हिन्दी की आँचलिकता

---

1. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान - डा.रघुवरदयाल वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 109-10.
2. स्वातंत्र्योत्तर कथासाहित्य - सीतारामशर्मा, पहला संस्करण 1965, पृष्ठ 32.
3. कल्पना, आँचलिकता और आधुनिक परिवेश - लेख, शिवप्रसाद सिंह, मार्च 1965, पृष्ठ 32.

में विदेशी प्रभाव नहीं देखते - "इन सारे उपन्यासों (विदेशी) के बाद भी हिन्दी के किसी आँचलिक उपन्यास में इन की कोई छाप नहीं है - न कथ्य, न शिल्प, न एप्रोच और न विचारों में"[1] । इसलिए निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी की आँचलिक कथा आयात वस्तु नहीं, अपितु अपनी मिट्टी के साथ मिली वस्तु है ।

<u>आँचलिकता का स्वरूप</u>

गाँव, प्रांत या विशेष भूखंड के अर्थ में प्रयुक्त "अंचल" संज्ञा के साथ "इक" तद्धित लगा कर "आँचलिक" विशेषण तथा उस की भाववाचक संज्ञा के रूप में "आँचलिकता" का प्रयोग होता है । प्रथमत: सन् 1954 में फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने प्रथम उपन्यास "मैला आँचल" की भूमिका में यों लिखा - "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास"[2] तद्पश्चात हिन्दी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में "आँचलिकता" का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होने लगा । लेकिन रेंणु के पहले ही शिवप्रसाद सिंह की "दादी माँ" नामक कहानी प्रकाशित हो गयी थी, जिस में उन्होंने ग्रामीण आद्रता का परिचय दिया था । उस के भी पहले निराला की लंबी कहानियों में तथा नागार्जुन की प्रारंभिक रचनाओं में आँचलिकता का परिचय मिलता है । लेकिन जैसे कि उपरोक्त सूचित है कि "अंचल" शब्द में विशिष्टता का बोध है और रेणु का उपन्यास भी काफ़ी चर्चित रहा तथा उन की कहानियों और दूसरे कथाकारों की ऐसी रचनाओं केलिए आँचलिक शब्द प्रयुक्त होने लगा ।

भारतीय संदर्भ में ग्रामीण कहानियों की अपनी प्रासंगिकता है । क्यों कि भारतीय गाँवों की स्थिति अब भी काफ़ी शोचनीय है । यह उस समय की बात है कि

---

1. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ, भूमिका - राजेन्द्रअवस्थी, पृष्ठ 7.
2. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका, पृष्ठ 1.

जब कि भारत आज़ाद हो गया था । उस समय गाँव के जीवन में यद्यपि एक नयी लहर दौड़ आयी थी, फिर भी वहाँ की आर्थिक समस्यायें दुष्कर ही रहीं । इस शिथिल अवस्था की ओर नये कहानीकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ था । लेकिन, उन्होंने ग्रामीण जीवन की शिथिल अवस्था को ही नहीं बल्कि ग्रामीण जीवन के वैविध्य को भी कहानी का विषय बनाया । एक ग्रामीण चेतना जो कि निजी, मौलिक एवं प्रामाणिक रही, कहानी में फैल गयी । अत: आँचलिक कहानियों की भारतीय अस्मिता इन की दृष्टि से मूल्यवान है ।

"आँचलिक" अथवा "अंचल" शब्द का प्रयोग पहले कहानियों के क्षेत्र में किसी विशेष आग्रह से नहीं किया जाता था । नगर कहानी और ग्राम कहानी के बीच का तर्क-वितर्क समाप्त - सा हो गया था । नई कहानी की इस विशेष प्रवृत्ति ने एक नया उन्मेष ला दिया था और ग्रामीण कहानियों केलिए आँचलिक शब्द को भी जोड़ने लगा ।

परिभाषायें

आँचलिक कहानी की विभिन्न परिभाषायें प्रचलित हैं । पश्चिमी साहित्य में "रीजिनललिटरेचर" की चर्चा है और उसके दौरान रीजिनल प्रवृत्ति के बारे में विचार प्राप्त होते हैं । एनसैक्लोपीड़िया अमेरिकाना में आँचलिक साहित्य की जो व्याख्या दी हुई है, उस में अंचल विशेष की अतिविशिष्टता पर अधिक बल है - अपने विस्तृत अर्थ में आँचलिकता जब साहित्य के साथ संयुक्त हो जाती है तब उस के अन्तर्गत वे सभी साहित्यिक गतिविधियाँ आ जाती हैं जो मनुष्य के भाग्य पर परिवेश के निर्माणकारी प्रभाव को स्वीकार करती है तथा एक निश्चित स्थान के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के कारण वहाँ के निवासियों में प्राप्त होनेवाले असामान्य गुणों

को सत्यता से प्रकट करती है"[1] । लक्ष्मण दत्त गौतम ने आँचलिक साहित्य के प्रतिपाद्य के बारे में यों लिखा है - "विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के सहज जनजीवन की व्यंजना ही आँचलिकता का प्रतिपाद्य है"[2] । राजेन्द्र अवस्थी भी विशिष्ट जनपदीय जीवन चित्रण को प्रमुखता देते हैं - "जिस कथाकृति में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जनजीवन का समग्र चित्रण - वहाँ की भाषा, वेषभूषा, धर्म, जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न - एक साथ उभर कर आएँ, वह "आँचलिक कृति" होगी"[3] । भीष्म साहनी की राय में अंचलों के जीवन का सुस्पष्ट और प्रामाणिक विवरण देनेवाली रचना ही आँचलिक है - "स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद कई लेखक आँचलिक रचनायें प्रस्तुत करने लगे, विशेष कर उन अंचलों में जहाँ उन का जन्म हुआ । ताकि वे उन अंचलों की रीति-रिवाज़ों, बोलचाल की रीतियों, एवं रहन-सहन को प्रामाणिकता और सुस्पष्टता के साथ प्रस्तुत कर सके"[4] । आँचलिक रचनाओं के लक्ष्य के बारे में रामदरस मिश्र यों लिखते हैं - "आँचलिक कहानियों की विशेषता, गाँव और कस्बे की, पिछड़ी जातियों की ज़िन्दगी के कटु जीवन और उन के मानसिक संवेदना को ही लक्ष्य बना कर चलती है"[5] । ग्लेन कैवालिरो के मतानुसार "आँचलिक उपन्यास में लेखक देश के एक विशिष्ट भाग पर बल देता है और वहाँ के जीवन का

---

1. 'The term regional literature applies to a variety of literary works and movements which acknowledge the shaping power of environment on human fortunes and which try to render with exactitude the unique qualities that the geographical and cultural history of a given locality have imparted to the lives of the inhabitants'. Encyclopedia Americana, Edition 1961, P:571.
2. तटस्थ - डा.लक्ष्मदत्त गौतम, मई-अक्तूबर 1972, पृष्ठ 23.
3. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 2.
4. 'In the first few years after Independence, some writers turned towards 'regional' writing-largely the 'regions' of their own birth, so as to present a more authentic and graphic picture of that region, laying stress on the peculiarities of custom, mode of speach and way of life. Modern Hindi Short Story - 'The Progressive element' by Bhisham Sahni, First edition 1974, P:241-42
5. आज का हिन्दी साहित्य - रामदरस मिश्र, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 165.

इस प्रकार निरूपण करता है कि पाठक उस के अनोखे गुणों, विशिष्ट प्रवृत्तियों और असामान्य रीति-रिवाजों तथा जीवन प्रणाली का ज्ञान प्राप्त करें"[1] । अंग्रेजी के प्रसिद्ध कथाकार थॉमस हार्डी की वेसक्स (Wessex) कहानियों के बारे में क्रिस्टिन ब्राडी (Kristin Brady) का मत यों है - वेसक्स कहानियाँ डोरसेट (Dorset) जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के वैविध्य को व्यक्त करने वाली हैं"[2] । हेलन.ई.हेन्डस की राय में आंचलिकता राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के चित्र, साहित्य में प्रस्तुत करने का माध्यम है - "अमेरिकी साहित्य में आंचलिकता आधुनिक कथासाहित्य का विकासोन्मुख पक्ष है, जो वहाँ के प्राकृतिक दृश्य या निवासियों या प्राणिसमूह, वनस्पति, भौगोलिक आदतों या जनता की पृष्ठभूमि आचार-विचार बोली आदि के निरीक्षण और चित्रण का माध्यम बन गया है........."[3] ।

---

1. 'There was, for example, the rural novel proper, confined to a particular locality and for the most part, to that locality's native inhabitants, it was concerned with the exhibition of rustic idiosyncrasy, and made great use of dialect for ornamental or anthropological purpose'. Rural Tradition in English Novel - Glen Cavaliero, (1977) Page 15.

2. 'Wessex tales reflects in its narrative details in the social, economical and cultural diversity of Dorset life'. Short Stories of Thomas Hardy-Tales of Past and Present-Kristin Brady, (1982) Page 2.

3. 'In the United States the regional has become one of the most extensive fields of modern fiction, a medium for the observation and depiction of natural scene or human habitant, in fauna, flora, topographical characteristics, folk backgrounds, customs, speach, influence of environment, traditions and process of growth, in all section and many localities of the country.....'. What's in a Novel-Helen.E.Haindas, (1983) Page 67.

एम.एच.अब्राम्स के मत भी उपरोक्त मत के समान ही है - "आँचलिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान के लोगों के रहन-सहन, बोली तथा रीति-रिवाजों को स्थानीय रंग के रूप में नहीं, बल्कि वहाँ के चरित्रों की आदतों पर प्रभाव डालने की रीति से तथा उन के विचार, विकार तथा प्रवृत्ति को चित्रित किया जाता है......"[1] । उपन्यासों के संदर्भ में ही सही, आँचलिकता की परिभाषाओं में एकरूपता है । ये परिभाषायें आँचलिक कहानियों केलिए भी ठीक निकलती हैं । जीवन की सामान्य धारा से दूर रहनेवाले ग्रामीणों की कथा आँचलिक साहित्य में प्राप्त होती है । सिर्फ़ वह उन की कथा नहीं बल्कि उन के पूरे रहन-सहन का इतिहास है ।

आँचलिक-व-ग्रामीण

यह बताया जा चुका है कि आँचलिक शब्द का प्रयोग किस प्रकार प्रयुक्त होने लगा है । आँचलिक कहानी के साथ साथ ग्रामीण कहानी शब्द भी प्रचलित है । यहाँ एक प्रश्न उठता है कि ये अलग-अलग शब्द दो प्रकार की कथारीतियों केलिए प्रयुक्त है या मात्र एक प्रवृत्ति केलिए प्रयुक्त दो शब्द हैं । आँचलिक और ग्रामीण को अलग-अलग प्रवृत्तियों के रूप में माननेवाले आलोचकों के होने के कारण आँचलिकता और ग्रामीणता को ले कर अलग परिभाषएँ भी प्राप्त हैं जो कि प्रीतिप्रद बात नहीं है ।

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि हिन्दी में नई कहानी के दौर में पुन: ग्रामीण जीवन अंकित होने लगा । उस के पहले शहरी जीवन की कहानियों की तुलना में गाँवों की कहानियाँ बहुत कम लिखी जाती थीं । अत: ग्रामीण वातावरण की कहानियों ने एक नयी स्फुर्ति ला दी । अंचल विशेष की बात होने के कारण इन रचनाओं को

---

1. 'The regional novel emphasises the setting speach and customs of a particular locality, not merely as local colour, but as important conditions affecting the temperament of the characters and their ways of thinking, feeling and acting....' . A Glossary of Literary Terms - Abrams M.H., Reprinted 1985, Page 113.

आँचलिक भी कहे जाने लगा । वस्तुत: यही हुआ है कि ग्रामीण कहानियाँ लिखी जाने लगीं, जैसे "दादी माँ", "तीसरी कसम", "रस प्रिया", "कर्मनाशा की हार", "हंसा जाइ अकेला", "गुलरा के बाबा" आदि आदि । ये सभी नये ग्रामीण यथार्थ की कहानियाँ हैं । एक ओर इन में नये ग्रामीण जीवन का स्वरूप है, दूसरी ओर पारंपरिक ग्रामीण जीवन रीतियाँ भी । कुलमिलाकर आँचलिक जीवन गाथा की नई परंपरा की वह एक शुरूआत थी ।

इन कहानियों के आधार पर यह देखना उचित होगा कि उन अलग-अलग शब्दों का कितना अर्थविस्तार है । "ग्रामीण कहानी" शब्द में से सामान्यता का परिचय मिलता है जब कि आँचलिक कहानी शब्द में विशिष्टता की । अत: इस दृष्टि से "आँचलिक" शब्द को अपनाया जा सकता है । लेकिन इन दोनों को अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त कर के अलग-अलग अर्थ में समझने की आवश्यकता नहीं । अंचल की कहानी, किन्हीं ग्रामीण अंचल की ही हो सकती है, चाहे वह विशिष्ट अंचल की हो या अतिसाधारण अंचल की । अगर वह अंचल की है तो स्वत: ग्राम की भी है । "लाल पान की बेगम" पढ़ने के उपरान्त "पंचलैट" पढ़े या "भूदान", इन सब में ग्रामीण यथार्थ की ही पहचान होती है । एक में ग्रामीणता की सादगी है तो दूसरी में गाँव-वालों का बेवकूफीपन तीसरी में ग्रामीण जनता की विद्रोहात्मकता । पहली रचना निरी ग्रामीणता से संबंधित है तो तीसरी ग्रामीण की जीवन के बुनियादी संघर्ष से संबंधित । अंतर सिर्फ़ इतना ही है ।

इस प्रकार "आँचलिक" और "ग्रामीण" दोनों एक ही प्रतीति को परिभाषित करने केलिए, उपयुक्त शब्द हैं । विशिष्ट अर्थ की प्रतीति देने के कारण आँचलिक अधिक स्वीकृत शब्द है, विशेष रूप से आलोचना में । इतने पर भी ग्रामीण शब्द की भी अवहेलना नहीं की जा सकती । वस्तुत: ये रचनायें ग्रामीण हैं एतदर्थ आँचलिक भी ।

अंग्रेज़ी में आंचलिक शब्द के समानान्तर अधिकतर "रीजिनल" (Regional) शब्द प्रचलित दीखता है । एम.एच.अब्राम्स ने रीजनल शब्द का प्रयोग किया है[1] । अमेरिकी साहित्य की आंचलिकता पर विचार करने केलिए हेलन.इ.हैन्डस ने "रीजिनल" शब्द का ही प्रयोग किया है[2] । फिलिस बेंन्टले के ग्रन्थ का नाम ही "दि इंग्लीश रीजिनल नॉवल" है जिस में उन्होंने "रीजिनल" शब्द की परिभाषा दी है[3] । वैसे तो थॉमस हार्डी अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार माने जाते हैं । लेकिन उन के कथासाहित्य को वेसेक्स (Wessex) कह कर अभिहित किया जाता है । वेसेक्स इंग्लैंड का एक भू-भाग है[4] । अंग्रेज़ी में एक और शब्द प्रचलित है - रूरल (Rural) ग्लेन कैवालिरो (Glen Cavaliero) के ग्रन्थ का नाम है "रूरल ट्रेडीशन इन इंग्लीश नॉवेल" । इस में वे लिखते हैं - "उदाहरण केलिए, आंचलिक उपन्यास देश के एक विशिष्ट भू-भाग को सीमाबद्ध करता है."[5] । मात्र शब्दगत अनुवाद करना हो

---

1. 'The regional novel emphasises the setting speach and custums of a particular locality, not merely as local colour, but as important conditions affecting the temperament of the characters and their ways of thinking, feeling and acting.....'. A Glossary of Literery Terms-Abrams M.H., Reprinted 1985, Page 113.
2. 'In the United States the regional has become one of the most extensive fields of modern fiction, ...'. What's in a novel - Helen.E.Haindas, (1983), Page 67.
3. '..... it is a novel which concentrating on a particular part, a particular region, of a nation, depicts the life of that region in such a way that the reader is conscious of the characteristics which are unique to that region and differentiate it from others in the common motherland'. The English Regional Novel - Phyllis Bentley (1941), Page-7.
4. 'Wessex-- that is to say the six south-west counties of England, Hampshire, Wiltshire, Somerset, Dorset, Devon and Cornwall.. is a stretch of agricultural and pastoral country, dotted with health and woodland, and rolling down to a rugged sea coast.' The English Regional Novel - Phyllis Bentley (1941), Page 24.
5. 'There was, for example, the rural novel proper, confined to a particular locality and for the most part, to that locality's native inhabitants, it was concerned with the exhibition of rustic idiosyncrasy, and made great use of dialect for ornamental or anthropological purpose'. Rural Tradition in English Novel-Glen Cavaliero, First Published 1977, Page 15.

तो हमें आँचलिक कथा के स्थान पर "रीजिनल फिक्शन" (regional fiction) रखना होगा । लेकिन यहाँ हम देख चुके हैं कि रीजनल शब्द के साथ-साथ अन्य शब्द भी प्रचलित हैं ।

उपरोक्त सूचित किया गया कि आँचलिक के अनुकूल "रीजनल" (Regional) शब्द ही अधिक उचित जान पड़ता है । लेकिन रीजनल शब्द की प्रसंगिकता के साथ ही उस की विपुलता भी है । इस कारण से ही डी.एच.लारेंस जैसे उपन्यासकारों को भी कहीं कहीं रीजनल लेखक माना गया है[1] ।

निष्कर्षत: यही बताया जा सकता है कि हर भाषा में कथासाहित्य की इस विशिष्ट प्रवृत्ति के लिए कई शब्द प्रचलित हैं । स्पृहणीय बात सिर्फ यही है कि हम इन शब्दों के माध्यम से विवृत होनेवाले कथा संसार और जीवन मूल्यों को अपनाएँ और यह जानने की चेष्टा करें कि इस कथाशाखा ने पूरे कथा-साहित्य को किस प्रकार प्रभावित और विकसित किया है । हर शब्द को अलग-अलग मान कर अलग व्याख्याओं का आग्रह करना वाँछित नहीं है ।

आँचलिकता की रचना दृष्टि

प्राय: आँचलिक उपन्यासों के विश्लेषण के दौरान ही आलोचकों ने आँचलिकता की रचना दृष्टि पर विचार किया है । आँचलिक उपन्यासों पर प्रकट किये गये मन्तव्यों से आँचलिकता की रचना दृष्टि का पता चलता ही है । फिलिस बेंटले (Phyllis Bentlay) के मतानुसार आँचलिक उपन्यास देश के किसी विशिष्ट भू-भाग व पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं से परिचित कराता है । उन के मतानुसार आँचलिक

---

1. 'D.H.Lawrence (1885-1930) portrays in the Lancashire region the clash between two ways of life: the industrialism of the mining towns, corrosive of all human values, and the passionate life of the country people attained to the rhythms of nature'. Here regional characteristics are utilized in a symbolistic presentation of a basic dilemma of modern life'. The Encyclopedic Americana, Vol.17, Page 572-73.

रचना केलिए ऐसी विशिष्टताओं की आवश्यकता एक अनिवार्य शर्त है । यही सामान्यता से उसे बचाती भी है । यही बात देवराज उपाध्याय ने दूसरे ढंग से प्रकट किया है जो फिलिप्स बेंटले के मत से भिन्नता नहीं है । बेंटले के मन्तव्य को उन्होंने थोड़ा विस्तृत किया है[1] । इस में लोकजीवन के तत्व को आँचलिक कहानी के लिए अनिवार्य भाग लिया गया है ।

हीराप्रसाद त्रिपाठी के मतानुसार "निश्चित रूप से अंचल विशेष के किसी कस्बे अथवा किसी बड़े शहर के सबर्ब (suburb) में स्थित विशिष्ट प्रकार के लोकजीवन पर आधारित कहानी, आँचलिक हो सकती है"[2] । यहाँ एक बात विशेष विवेचनीय है । आँचलिकता केलिए लोक तत्व का होना अनिवार्य है । पर आँचलिकता का कोई सीमारेखा नहीं है कि वह किसी कस्बे से संबंधित हो जाती है, जनजातीय जीवन से या पहाड़ी जीवन पर आधारित हो सकती है ।

जासफ़.टी. शिप्ले आँचलिकता में एक अलग संस्कृति का आभास देखते हैं - "आँचलिक रचनाकार प्रत्येक प्रदेश की उन विभिन्न स्थितियों पर ध्यान देता है, जिन का वहाँ के निवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव है और इस प्रकार एक अलग सांस्कृतिक और चरित्र विकास संभव होता है, स्थानीय रंग, सेटिंग, बोली, वेश-भूषा, प्रथाओं के अनावश्यक तत्वों को कथा के प्रमुख तत्व के रूप में नहीं, सजावट के रूप में प्रस्तुत करता है"[3] । इस में एक बात स्पष्ट होती है कि स्थानीय

---

1. 'In a regional novel the writer concentrates on a particular part of a country and depicts its life in such a way as to bring about a consciousness among the readers of its unique characteristics, distinguishing features and particular customs and patterns of life'. Hindi Review Magazine, Devaraj Upadhyaya - Recent tendencies in Hindi Fiction, May 1956, Page 27.
2. समालोचना, जून 1978, पृष्ठ 39.
3. 'While regionalist sees in each region different conditions that operate profoundly in the lives of its people and thus, develop different pattern of culture and character..... Local colour thus presents superficial elements of setting, dialect, costumes, not as basic element of the story but as decoration. Dictionary of world Literary Terms - Joseph.T.Shipley, Published 1960, page 257.

रंग का उतना महत्व नहीं है । महत्व उस का तभी बढ़ता है कि जब लेखक उस अंचल के जीवन को ठीक से आत्मसात करता हो । अन्यथा ये सारी बातें-बोली मुहावरे एवं प्रथायें, पर्व इत्यादि-रचना की ऊपरी चमक को ही बढ़ायेंगी ।

आँचलिक कहानी का उन्मेष नया था । अत: नन्ददुलारे वाजपेई ने नई खोज के रूप में आँचलिकता को देखा है - "अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के जन-जीवन का वैविध्यपूर्ण चित्रण आँचलिक रचना में होता है"[1] । उपेक्षितों के जीवन चित्रण के रूप में ही वाजपेई, आँचलिक रचना को देखते हैं । जिन अंचलों के जीवन को रचनाओं में प्रमुख स्थान मिला नहीं हैं, जिन-जिन नई रीतियों और गतिविधियों को रचनाओं के अभिन्न अंग के रूप में चित्रित नहीं किया है ऐसे पक्षों को लेकर नई रचनाएँ प्रकाशित हो गई हैं । एक नये भू-भाग के साथ एक नया परिवेश भी ऐसी आँचलिक रचनाओं के माध्यम से विवृत होता है शिवप्रसाद सिंह उपेक्षित किए गए प्रसंगों को उठाया है जिस में नंददुलारे वाजपेई की बात का अनुगूंजन है । "अपरिचित" में वह स्पष्ट है । लेकिन यह एक स्वीकार्य तथ्य है, क्योंकि आँचलिक जीवन अछूता ही समझता आया है । "आँचलिकता एक खास प्रकार के विशिष्ट क्षेत्र के जीवन से अपने को पूर्णत: संबद्ध कर देती है । उस जीवन को उपेक्षित और अछूता समझ कर उस के समग्र रूप का छोटी-से-छोटी विशेषताओं के साथ पुन: प्रस्तुतीकरण आँचलिकता का लक्ष्य होता है"[2] । उन्होंने आगे यह भी लिखा है - "आँचलिक वे ही कहानियाँ कही जा सकती हैं जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा-मुहावरे, रूढ़ियों-अंधविश्वासों, पर्व-उत्सव, लोक-जीवन, गीत-नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्देश्य माने । आँचलिक तत्व ही उन के साध्य होते हैं"[3] ।

---

1. सारिका-अक्तूबर 1961 नन्ददुलारे वाजपेई के लेख से उद्धृत पृष्ठ 26.
2. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिवप्रसाद सिंह, प्रथम संस्करण 1970, पृष्ठ 119.
3. नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति शिवप्रसाद सिंह के लेख से उद्धृत पृष्ठ 143-44.

नामवर सिंह ने आँचलिक और ग्रामीण शब्द के बदले लोकजीवन पर अधिक बल दिया है । अत: उन की राय में "लोकजीवन के अन्तर्वैयक्तिक सामाजिक संबंधों की सम को अभिव्यक्त करनेवाली कहानी आँचलिक कहानी बन जाती है । नामवर सिंह ने आँचलिक कहानियों की अलग-अलग दृष्टि से बढ़ कर उस की मूल चेतना पर ज़ोर दिया है । लोकोन्मुखता आँचलिक कहानियों की मूल प्रेरणा और मूलचेतना है ।

परमानन्द श्रीवास्तव के मतानुसार "कहानियों को आँचलिकता की संज्ञा तभी दी जा सकती है जब कि ग्रामकथाओं पर आधारित कहानियों में विशेष जनपद की संस्कृति का चित्रण, आस्था, रूढ़ी, संदेह, अंधविश्वास का यथातथ्य अंकन, लोकजीवन, गीतनृत्य, लोक-भाषा, मुहावरे का उपयोग - आदि तत्व साधन न होकर साध्य हो"[2] । आँचलिक तत्व साध्य होने पर भी वह पूरे रचना तंत्र में व्याप्त हो सकता है । कहानी में आँचलिकता का परिपाक तभी होता है जब उस में यथार्थ अंकन के अलावा संश्लिष्ट यथार्थ का सम्मिश्रण भी है । संश्लिष्ट लोकचेतना को सही पैमाने पर आत्मसात करने की रचनात्मक सक्रियता से संबद्ध है । "उन का कथ्य एवं लक्ष्य अंचल तथा जातिविशेष के जीवन का संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत करना होता है" । लेकिन सभी रचनाओं में समान ढंग से संश्लिष्ट आँचलिक रचनादृष्टि का विकास नहीं हुआ है । जिन रचनाओं में संश्लिष्ट ढंग से उस की अभिव्यक्ति हुई है, ऐसी रचनाएँ मानक रचनाएँ बन गई हैं ।

आँचलिक कृतियों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

विभिन्न समालोचकों ने आँचलिक कथा की विभिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है । इस संदर्भ में भी यह दुहराना आवश्यक जान पड़ता है कि उन्होंने उपन्यासों के विश्लेषण के सिलसिले में प्रमुख प्रवृत्तियाँ निर्धारित की हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार

---

1. कहानी: नयी कहानी - नामवर सिंह, पृष्ट 23.
2. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - डा.परमानन्द श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण 1970, पृष्ठ 275.

हैं - मार्कण्डेय ने कहानी के संदर्भ में ही आँचलिकता को निम्नलिखित प्रवृत्तियों बतायी हैं -

1. नया वस्तु संचयन
2. रूपगत गठन
3. प्रतीक योजना
4. शब्द-संस्कार
5. परिवेश की नई उभरती सच्चाइयों की अभिव्यक्ति[1] ।

शिवप्रसाद सिंह के मतानुसार ग्रामीण कहानी की ये प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं -

1. उपेक्षित और अछूते जीवन का चित्रण
2. ग्रामीण जीवन की छोटी-सी-छोटी विशेषताओं का प्रतिपादन
3. ग्रामीण जीवन की समग्रता का रूपायन[2] ।

राजेन्द्र अवस्थी ने आँचलिक कथा की निम्न लिखितप्रवृत्तियाँ बताई हैं -

1. अंचल की समग्र चेतना को अभिव्यक्त करने में एक समग्र दृष्टि
2. व्यक्ति का स्थान अंचल ग्रहण कर के अंचल ही कथा के नायक के रूप में प्रस्तुत होना
3. अंचल की सही प्रस्तुति केलिए वहाँ के कुछ शब्दों, गीतों आदि का प्रयोग
4. कथा की एक विशिष्ट शैली[3] ।

आदर्श सक्सेना के अनुसार आँचलिक प्रवृत्तियाँ निम्न सूचित हैं । उन्होंने आँचलिक उपन्यासों के संदर्भ में ये प्रवृत्तियों बतायी हैं ।

---

1. भूदान - भूमिका - मार्कण्डेय, पृष्ठ 10.
2. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 119.
3. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका - राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 5,8.

1. आँचलिक उपन्यास का अपना एक चुना हुआ क्षेत्र होता है ।

2. इस क्षेत्र की अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषतायें होती हैं जिन का समग्र चित्रण किया जाता है ।

3. ये विशेषताएँ असामान्य प्रकार की होती हैं जो उस अंचल विशेष के विशिष्ट रीति-रिवाजों व जीवन यापन के ढंग को जन्म देती है ।

4. इस प्रकार के जीवन के चित्रण का प्रभाव उपन्यास के सभी तत्वों पर लक्षित हो

5. समग्र रूप से आँचलिक उपन्यास एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और इस प्रकार अपने उद्देश्य में भी विशिष्ट होता है[1] ।

उपरोक्त ~~कथित~~ आलोचकों ~~के जो~~ द्वारा निर्धारित प्रवृत्तियों के आधार पर संक्षिप्त रूप में आँचलिक कहानी की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ लक्षित की जा सकती हैं -

क. जनपद की मूल चेतना

ख. पात्र और परिवेश की पारस्परिकता

ग. उपेक्षित अंचल एवं व्यक्तियों के प्रति मोह

घ. आँचलिक भाषा का प्रयोग

<u>जनपद की मूल चेतना</u>

गाँव एवं अंचलों में सामान्य लगनेवाले जीवन की अपनी एक परिवृति है । उस की अपनी स्वच्छता भी होती है जो संस्कारों की मौलिकता पर बल देती है । जनपदीय चेतना की सूक्ष्मता तक पहुँचने केलिए ग्रामीण संस्कृति की आत्मा को पहचान आवश्यक है । इसलिए कथाकार जीवन के कई बाह्य पक्षों का सहारा लेता है ।

---

1. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि आदर्श सक्सेना, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ट 58-59.

जनपदीय जीवन की विचित्रताओं, रूढ़ी-अंधविश्वासों, भाषा-मुहावरों, लोक-गीतों, नृत्य-नाट्यों को भी प्रस्तुत करते हैं । इन के साथ ही साथ उस भू-भाग के कुछ सहज चित्र भी प्रस्तुत होते हैं । वहाँ के व्यक्तिपात्रों के जीवन को भी पूरी सहजता और आत्मीयता के साथ चित्रित किया जाता है । कहीं कहीं विशिष्ट जनपद के जीवन चित्रण के साथ उन के आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न भी अभिव्यक्त होते हैं । कभी कभी विशेष आँचलिक इकाई की समस्याओं और जन-संघर्ष के परिदृश्य भी चित्रित होते हैं । वस्तुतः ग्रामीण जीवन की समस्याओं और जीवन संघर्ष का चित्रण ग्रामीण चेतना केलिए आवश्यक तो नहीं है । आज कल के ग्रामजीवन के बदलते हुए स्वर को पकड़ने केलिए, बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में ग्राम जीवन को पहचानने केलिए इस का भी चित्रण होता है । कुल मिलाकर कहानी मात्र एक ग्रामीण पात्र की न रह कर एक जनपद की चेतना की कहानी बन जाती है । यह प्रवृत्ति रचना में प्रकट नहीं होती । यह कहानी की मूल चेतना और उस की समग्र संवेदना (रूरल सेंसिबिलिटी) का मूल स्रोत है ।

पात्र और परिवेश की पारस्परिकता

ज्यादातर आँचलिक कहानियों में एक भरा-पूरा परिवेश उभरता है । इस कारण से पात्र प्रधान कहानियों में भी पात्र के इर्द-गिर्द कहानी का आँचलिक परिवेश सृजित होता रहता है । इस कारण से पात्र की प्रधानता नष्ट होती है और परिवेश उभरता है । इस का यह मतलब नहीं कि इन कहानियों में कोई प्रमुख पात्र ही नहीं है । इस अवसर पर यह विशेष उल्लेखनीय भी है कि बहुतेरी रचनाएँ पात्र-प्रमुखता केलिए विख्यात हैं - जैसे "तीसरी कसम" "ठेस", "धारा", "गुलरा के बाबा" आदि । आँचलिक कहानियों में पात्रों की स्थितियों को उन के वैयक्तिक संदर्भ में देखा-समझा नहीं जाता । इस कारण उन्हें परिवेशगत सच्चाइयों के संदर्भ में ही पहचाना जा सकता है ।

आँचलिक कहानियों में अक्सर वैयक्तिकता का लोप हो जाता है । साथ को साथ एक व्यापक भू-भाग का अस्तित्व सकार कर देने की प्रवृत्ति मिलती है । इसे राजेन्द्र अवस्थी ने यों व्यक्त कर दिया है - "किसी एक व्यक्ति का प्राधान्य हो नहीं सकता । वहाँ व्यक्ति का स्थान अंचल ले लेता है और वह अंचल ही कथा का नायक बन जाता है । वहाँ के घटना-विधान में सभी पात्रों का स्तर समान होता है । सभी पात्र अपना स्वतंत्र अस्तित्व ले कर आते हैं । ये सब उस विशिष्ट आँचलिक जीवन को पूर्ण करने केलिए ही अवतरित होते हैं । पात्रों की यह विविधता घटनाक्रम में भी असर पैदा करती है".[1] । अवस्थी का यह कथन इसलिए सही लगता है कि उन्होंने आँचलिक व्यक्ति और आँचलिक स्थिति की पारस्परिकता पर बल दिया है । आँचलिक रचनाएँ अंचल सापेक्ष रचनाएँ हैं । उन में व्यक्ति उभरते हैं - तमाम आँचलिक गतिविधियों के साथ । वार्ष्णेय भी अवस्थी से सहमत हैं - "इन (आँचलिक) कहानियों का व्यक्ति विशेष नायक नहीं होता, बल्कि स्वयं अंचल ही उस का नायक होता है.. ....".[2] । इस प्रवृत्ति विशेष के कारण आँचलिक रचनाओं में एक शब्दायमान वातावरण प्राप्त होता है । मनुष्य ही नहीं मनुष्येतर प्राणियों का एक जीवन्त परिवेश भी मिलता है । सारांशतः ऐसी कहानियाँ ग्रामीण अस्मिता की लहराती हुई प्रतीति छोड़ जाती हैं ।

उपेक्षित अंचल का मोह

बहुधा आँचलिक कहानियों की रचना के पीछे उपेक्षित जन समूह के जीवन को चित्रित करने का मोह बलवती रहता है । एक अरसे तक यह जन-समूह साहित्य के बाहर

---

1. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 5.
2. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान - डा. रघुवरदयाल वार्ष्णेय पृष्ठ 112.

ही रहा है । तब तो यह कहना असमीचीन न होगा कि आँचलिक कहानियों में उपेक्षित अंचलों, व्यक्तियों, समूहों का चित्रण हुआ है । अतः यह आँचलिक कहानियों की प्रमुख प्रवृत्ति ही नहीं बल्कि उस की प्रेरणा भी है ।

इन कहानियों में हमें भारतीय जीवन की विविधता का परिचय मिलता है । साथ ही साथ यहाँ के सामाजिक जीवन की विचित्र विड़ंबना का परिचय भी प्राप्त होता है । साहित्य-क्षेत्र में वर्षों से उपेक्षित साधारण किसानों, मज़दूरों की जिजीविषा की अभिव्यक्ति अधिकांशतः आँचलिक कहानी द्वारा हुई है । इस संबंध में शिवप्रसाद सिंह का निरीक्षण सही और सारवान है - "उस अंचल के जीवन को उपेक्षित और अछूत समझ कर उस के समग्र रूप का छोटी-सी छोटी विशेषताओं के साथ पुनः प्रस्तुतीकरण ही आँचलिकता का लक्ष्य होता है"[1] । रामदरस मिश्र ने भी यही मत प्रकट किया है - " आँचलिक कहानियाँ विशेषतः गाँव और कस्बों की पिछड़ी जातियों की ज़िन्दगी के कटु जीवन और उन के मानवीय संवेदना को ही लक्ष्य बना कर चली हैं"[2] । आँचलिक कहानी ने पहली बार जीवन के व्यापक क्षेत्र में हमारा परिचय कराया । पर यह सूचना प्रधान परिचय नहीं बल्कि सहज अनुभव का परिचय है और सक्रिय सहभागिता का परिचय है । इस की सहजता का एक और कारण लेखकों का इन पिछड़े इलाकों के साथ सीधा परिचय है । हिन्दी के अधिकतर आँचलिक कथाकारों ने अपने-अपने अंचल को ही रचनापरिदृश्य बना लिया है ।

आँचलिक भाषा का प्रयोग

नई कहानी की भाषा ही बदली हुई भाषा है । यद्यपि यह बदलाव प्रेमचन्दोत्तर युग से शुरू हो गया था फिर भी भाषिक संरचना नयी कहानी के दौर में अधिक

---

1. कल्पना - लेख - आँचलिकता और आधुनिक परिवेश - शिवप्रसादसिंह, मार्च 1965, पृष्ठ 33.
2. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि - रामदरस मिश्र, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 165.

सृजनात्मक हो गई । "नई कहानी ने भाषा की जड़ता को तोड़ा । व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को पृथक कर समय के विस्तार में जी रहे मनुष्य की बोली में ही उसने नये अर्थों की तलाश की । भाषा की छिपी हुई ऊर्जा की तलाश और उस का सर्जनात्मक संयत उपयोग पहली बार कहानी में हुआ है"[1] । आँचलिक कहानीकारों ने इसे अंचल के संदर्भ में चरितार्थ किया ।

आँचलिक कहानियों केलिए विशिष्ट बोलियों का प्रयोग अपेक्षित है । तदर्थ विशिष्ट स्थान के विशिष्ट भाषिक प्रयोग को आँचलिक कहानी की एक प्रवृत्ति कही जा सकती है । प्रत्येक अंचल को तथा प्रत्येक व्यक्ति को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करने केलिए उन की निजी भाषा का सहारा लेना पड़ता है । ऐसी एक रचनात्मक भाषा के रूपान्तरण के बारे में कमलेश्वर का मत यों है - "मार्कण्डेय और शिवप्रसाद सिंह ने गाँवों की बदली स्थितियों में मर गयी भाषा को छोड़ कर जीवित-कण उठाये थे । बाद में रेणु ने आँचलिक भाषा के रूप में उसे परिष्कार और परिपूर्णता प्रदान कर जोखिम को उपलब्धि में बदल दिया"[2] । अपने पात्रों या कथा-संदर्भों के अनुकूल भाषा का यह प्रस्तुतीकरण नहीं है । बाह्यत: यही आभास मिल सकता है कि आँचलिक कहानियों में ग्रामीण भाषा या बोली का प्रयोग हुआ है । पर वास्तविकता यह है कि इन रचनाओं में ग्रामीण भाषिक चेतना का वातावरण सृजित हुआ है ।

अंचल के स्थानीय वातावरण को विश्वसनीय तथा सजीव बनाने के हेतु आँचलिक भाषा का प्रयोग होता है । अनुभव की गहराई के साथ ऐसी गँवई भाषा का मिश्रण जब होता है तो नई रचनात्मक भाषा का प्रारंभ होता है । यह अवश्य है कि आँचलिक

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, संस्करण 1978, पृष्ठ 176.
2. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, पृष्ठ 175.

कहानियों मे ग्रामीण भाषा का यथार्थ प्रयोग भी किया गया है, संरचनात्मक प्रयोग भी । लोकगीतों आदि का प्रयोग मात्र आंचलिक रचना में अलंकार के रूप में होने पर भाषा की गहराई नष्ट होती है । पर ये ही लोकगीत कहानी की संवेदना को गहराने में सहायक सिद्ध भी हो सकते हैं ।

पश्चिमी साहित्य में आंचलिकता : संक्षिप्त रूप रेखा

पश्चिमके आधुनिक साहित्य में आंचलिक रचनाओं का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी से ही शुरू होता है । अंग्रेजी साहित्य में आंचलिक कथासाहित्य का सुवर्ण युग 1840 से 1940 तक माना जाता है[1] । इस युग के प्रमुख आंचलिक साहित्यकार चारलोट ब्रोंटी (Charlotte Bronte) जोर्ज इलियट (George Eliot), थॉमस हार्डी (Thomas-Hardy) तथा अरनोल्ड बेन्नट (Arnold Bennelt) हैं[2] । इन में सब से प्रभावशाली आंचलिक कथाकार थॉमस हार्डी हैं।[3] । लेकिन "मरिया एड्गवरित (1967-1849) को अंग्रेजी के प्रथम प्रमुख आंचलिक कथाकार मानते हैं"[4] । वाल्टर स्कोट भी अंग्रेजी के महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यासकार हैं ।

अमेरिकी साहित्य में भी आंचलिक रचनाओं की परंपरा अत्यन्त ही प्रौढ़ एवं समृद्ध है । "इस विधा का जितना सर्वांगीण विकास अमेरिका में हुआ उतना संसार में और कहीं नहीं हुआ"[5] । संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग के लोगों की संस्कृति, बोली, आचार-विचार आदि को आधार बना कर अधिकांश आंचलिक रचनाएं लिखित हैं ।

---

1. '......... the golden age of the English regional novel is approximately 1840 to 1940'. The English Regional Novel, Page 13.
2. 'I propose to consider first the work of the four regional-masters-Charlotte Bronte, George Eliot, Thomas Hardy, Arnold Bennett'. - The English Regional Novel Page 13.
3. 'The most impressive rural regionalist is Thomas Hardy (1840-1928) .....'. The Encyclopedia Amaricana, Vol.17 Page 572.
4. 'Among its first practitionars was Maria Edgewortt (1767-1849)......'. The Encyclopedia Amaricana, Vol.17 Page 572.
5. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उन की शिल्पविधि - आदर्श सक्सेना, पृष्ठ 339.

"आँचलिकता का वास्तविक स्वरूप विश्व की भाषाओं में सर्वप्रथम अमेरिकी उपन्यास साहित्य में ही प्रकट होता है"[1] । "विलकैथर", "फाकनर", "स्टैनबक", "मार्कट्वन", "अनेस्ट हेमिंग्वे" आदि अमेरिकी आँचलिक साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । आनेस्ट हेमिंग्वे के नोबल पुरस्कार प्राप्त विख्यात उपन्यास "दि ओल्ड मैन एण्ड दि सी" में एक बूढ़े साहसी मछुए की कहानी कही गयी है । आँचलिक उपन्यासों की सही परंपरा अमेरिकी साहित्य में ही उपलब्ध होती है । इस प्रकार "विश्व के अन्य देश अपने उपन्यासों पर आँचलिकता का लेबिल लगाने केलिए अमेरिका से ऋणी है"[2] ।

फ्रेंच साहित्य में भी आँचलिकता का प्रचार है । फ्रांस की आँचलिकता के प्रमुख प्रवर्तक हैं - उपन्यासकार जार्ज साँद (George Sand) 1804-1876, रेने फ्राँकोइस निकोलास मारी बाज़िन (Rene Francois Nicolas Marie Bazin) 1853-1932, तथा आँचलिक कवि फ्रेडरिक मिस्ट्रल (Frederic Mistral) 1830-1914"[3] । रूस में शोलोखोव की रचनाओं में भी आँचलिकता की प्रवृत्ति के बीज मिलते हैं । शोलोखोव का उपन्यास "क्वाएट फ्लोज द डॉन" (धीरे बहे दोन रे) में आँचलिक प्रवृत्ति प्रभूत मात्रा में पाई जाती है । यूगोस्लाविया का प्रसिद्ध लेखक ईवो आँद्रिच के आँचलिक उपन्यास "ड्रिना नदी के कगार पर" नोबल पुरस्कार प्राप्त रचना है । "तुर्की का स्वात दखेश की प्रसिद्ध रचना "अंकार का बंदी" भी आँचलिक उपन्यास है"[4] । इसी प्रकार इटली में मैसिमो बोंतेम्पेली ने आँचलिकता को खूब बढ़ावा दिया[5] ।

---

1. आँचलिक उपन्यास और रेणु - डा.सत्यनारायण उपाध्याय, प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ 16.
2. आलोचना - शिवप्रसाद सिंह चौहान, जनवरी 1966, पृष्ठ 79.
3. 'The major figures in French regionalism are the novelists Geo Sand (1804-1876) and Rene Francois Nicolas Marie Bazin (1853-1932) and the Provincal Poet Fraderic Mistral (1830-1914)'. The Encyclopedia Americana, Vol.17 Page 573.
4. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका, राजेंद्र अवस्थी, पृष्ठ 11.
5. हिन्दी कहानी: बदलते प्रतिमान - रघुवरदयाल वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण 1975, पृष्ठ 109.

भारतीय साहित्य में आँचलिकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही प्राय: भारत की सभी भाषाओं में आँचलिकता का विकास हुआ है । इस के सामाजिक और राजनीतिक कारण भी हैं । भारत के आँचलिक कथाकारों की देन के बारे में के.आर.श्रीनिवास अय्यंकार ने यों लिखा है - "आँचलिक उपन्यास साहित्य एक अलग विभाग हैं, तेलुंगाना के बारे में लिखनेवाले दाशरथी, हिन्दी के बिहार के अंचलों के बारे में लिखनेवाले रेणु, मराठी के पेंड्से और बंगाल के ताराशंकर आदि ने अपने भू-भाग को उस प्रकार परिचित कराया जिस प्रकार हार्डी ने वेसेक्स का परिचय कराया था तथा आर.के.नारायण ने अपनी "मालगुड़ी" को एकदम प्रतिनिधि अंचल बनाया"[1] ।

आधुनिक युग में भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनेकों आँचलिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं । भले ही कुछ रचनाकार आँचलिकता के सशक्त प्रवक्ता न हो, फिर भी आँचलिकता की चेतना को जिस प्रकार उन्होंने अपनी रचनाओं में आत्मसात किया है वह विशेष उल्लेखनीय है ।

हिन्दी में रेणु और शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय से शुरू होनेवाली आँचलिक कहानी की परंपरा अधिक सुदृढ़ बनी और आगे विकसित हुई । राजेन्द्र अवस्थी, मणिक मधुकर, शैलेश मटियानी, रामदरस मिश्र, केशवप्रसाद सिंह आदि रचनाकारों के साथ आँचलिक कहानी की धारा विकसित होती रही है ।

---

1. 'The Regional novelists are a class apart, there is Dasaradhi who writes of Telengana, there is 'Renu' in Hindi who evokes rural Bihar, there is Pendse in Marathi and there is Tarashankar in Bengali who have made their Konkan and Birbhum as familiar as Hardy's Wesses, and there is, finally, R.K.Narayan whose 'Malgudi' is distinctive in its topography and interior landscape and is also the representative small towns in India'. Indian Literature since Independence-introduction- K.R.Srinivasa Iyankar, 1973 Page XXXIII.

आंचलिक कहानी की देन

आंचलिक कहानी की देन के बारे में विचार करने के पूर्व आंचलिक कहानी को नयी कहानी के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए और उसी परिप्रेक्ष्य में आंचलिकता की प्रासंगिकता भी है । नई कहानी ने जीवन के विस्तार तथा उस की गहराई का शब्दबद्ध करने का कार्य किया है । यही कार्य आंचलिक कहानियों में संपुष्ट होता है, भले ही उस का क्षेत्रीय विस्तार हिन्दी अंचल या गांव तक ही सीमित क्यों न हो । आंचलिक कहानी में ग्रामीण संस्कृति का अन्तस्पंदन सुनाई पड़ता है । आंचलिक कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर युग के परिवर्तित गांवों की स्थितियां तथा वहां की समस्याओं का चित्रण प्राप्त है । "आंचलिक कहानी की सब से महत्वपूर्ण देन यह रही है कि उस में स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते परिप्रेक्ष्य को संवेद्य बनाया गया है, ..."[1] । यह सही है कि बहुत सारी रचनाओं में कृषकों की समस्याओं का चित्रण भर ही हुआ है या गांववालों पर होनेवाले शोषण भर का चित्रण । लेकिन इस सन्दर्भ को इनकार किया नहीं जा सकता कि स्वातंत्र्योत्तर युग की इन रचनाओं में पुन: गांव सही मायने में जीवंत हो उठा है । "तीसरी दुनिया" के देशों की समस्याओं और वास्तविक जीवन के साथ, आंचलिक कहानी सीधा साक्षात्कार कर लेती है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य में प्रगति चेतना - डा. लक्ष्मण दत्त गौतम, प्रथम संस्करण 1974, पृष्ठ 16-17.

अध्याय दो

फणीश्वरनाथ रेणु का कृति व्यक्तित्व

अध्याय-दो

फणीश्वरनाथ रेणु का कृतिव्यक्तित्व

आँचलिक कहानी के प्रवर्तक

फणीश्वरनाथ रेणु का नाम आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य में बहुचर्चित है । हिन्दी कथा साहित्य की एक नई धारा का प्रवर्तन उन के द्वारा हुआ जिसे "आँचलिक" बताया जाता है[1] । इसलिए आँचलिकता का प्रारंभ प्रायः रेणु से ही माना जाता है[2] । अपने उपन्यासों तथा कहानियों के द्वारा उन्होंने इस नयी शाखा को समृद्ध भी कर दिया है ।

रेणु एक सजग कथाकार हैं । उन्होंने अपने चिरपरिचित ग्रामांचल को कथा का आधार बनाया । जिस ग्रामीण अंचल को उन्होंने आधार स्वरूप ग्रहण किया है, उस

---

1. अ. रेणु का आगमन हिन्दी - कथा-साहित्य में एक धूमकेतु की तरह हुआ । आते ही उन्होंने महत्व के शिखरों का स्पर्श किया । इस का प्रधान कारण नये नये अंचलों की तलाश थी - नये अंचल केवल वस्तु के क्षेत्र में ही नहीं, भाषा और संवेदना के भी" । नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति-संपादक देवीशंकर अवस्थी, लेख-कुछ नये कहानीकारों की कहानियाँ-धनंजयवर्मा, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ 194.

   आ. "रेणु जी न होते तो हिन्दी में आँचलिक उपन्यास के लेखन और आलोचना की परंपरा आरंभ नहीं होती, इस पर दो मत नहीं होना चाहिए" । डा. सियाराम तिवारी, संपादकीय, रेणु कतृत्व और कृतियाँ, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ ग

2. अ. रेणुजी पहले कथाकार थे जिन्हों ने अपनी कृतियों के माध्यम से आँचलिकता की धारा का प्रादुर्भाव किया" । गगनांचल, डा. रामधारी सिंह दिनकर, वर्ष 7, अंक 2, पृष्ठ 46.

   आ. "अब आँचलिक उपन्यासों का आरंभ फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल" से माना जाता है" । हिन्दी गद्य-विकास और परंपरा - डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 643.

का उन्होंने चित्रण भर नहीं किया, वह उन की केवल रचनात्मक पृष्ठभूमि ही नहीं रही, वह उन की आत्म सजगता और आत्मविभोर अवस्था का ही रंगमंच है । वे उस अंचल में जीते भी हैं और उस को झेलते भी हैं । डा. विश्वंभर मानव ने रेणु के बारे में जो मत प्रकट किया है, वह द्रष्टव्य है - "जन-जीवन से तादात्म्य के कारण इन को कहानियों में गाँव की आत्मा, मिट्टी को गंध और श्रमजीवियों के संस्कार रच-बस गये हैं । ग्रामीण सौन्दर्य को मोहकता, वहाँ की प्रकृति को प्रकृति की रम्यता, संगीत के शास्त्रीय बोलों और पक्षियों की ध्वनियों आदि का अंकन ये अत्यंत सधे हाथ से करते हैं । उपेक्षित जनता के सामान्य सुख-दुख की घटनाओं के भीतर निहित हर्ष - विषाद को आत्मीय स्पर्श से स्पंदित करनेवाले रेणु हिन्दी के बडे ही संवेदनशील कहानीकार हैं".[1] ।

यह सर्वविदित बात है कि रेणु का आगमन एक नई प्रवृत्ति की सान्दर्भिकता का सूचक है । इस एक प्रवृत्ति की उपस्थिति प्रकारांतर से हर युग में प्राप्त होती है और हिन्दी कहानी में रेणु ने उस केलिए आधुनिक पृष्ठभूमि दी । इस आधुनिक पृष्ठभूमि की प्रासंगिकता हिन्दी कहानी के इतिहास में सामान्य नहीं है । इसलिए उन की रचनाओं का ऐतिहासिक एवं रचनात्मक महत्व बराबर है । डा.धनंजय वर्मा के अनुसार रेणु के महत्व का कारण, वस्तु, भाषा और संवेदना के क्षेत्र में नये अंचलों की तलाश थी[2] । रेणु के प्रसंग में यह तलाश सार्थक है कि जिस अनुपात में ग्रामांचलीय यथार्थ में वे जुड़ गये, उस का विस्तार उन्हीं की रचनाओं में कितना और कैसा है ।

---

1. हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, 1975, पृ.ठ 9-10.
2. आलोचना, पूर्णांक 33, पृष्ठ 60.

रेणु ने अंचल विशेष के जनजीवन को पूरी यथार्थता एवं गहराई के साथ चित्रित किया है । "ग्रामीणों की कुटिलता एवं विशेषतायें, लोकगीत तथा लोकजीवन, परंपरायें तथा रूढ़ियाँ एवं नवीन परिवर्तनशीलता......... चित्रित की है कि वे स्वयं उन की आत्मभोगी प्रतीत होते हैं । ग्रामीण जीवन में जो नवीन मूल्य आ रहे हैं और प्रगतिशीलता के जो चिन्ह छिपे पड़े हैं उन्हें उभारने का रेणु ने विशेष रूप से प्रयत्न किया है"[1] । गाँवों के साथ रेणु में इतनी आत्मीयता थी कि उन का कोई अलग अस्तित्व ही नहीं था । वे गाँवों के साथ तादात्म्य प्राप्त करते दिखाई पड़ते हैं । आँचलिक कथाकार होने पर भी उन की कहानियों में आँचलिकता की वस्तुपरकता से बढ़ कर गहरी मानवीयता दर्शित होती है जो उन की रचनाओं का सर्वाधिक प्रबल पक्ष है ।

पूर्णिया के कथाकार

पूर्णिया जिले के पिछड़े अंचलों के रेणु चितेरे हैं । कहना यह बेहतर होगा कि वे पूर्णिया के कथाकार हैं । वहाँ की मिट्टी से, वहाँ की प्रकृति से, फूल-पौधों से वे इस तरह बंधे हुए थे कि उन्हें आँचलिक कहानीकार कहने केलिए हम बाध्य हो जाते हैं । आँचलिक कहानीकार उन केलिए एक सामान्य विशेषण मात्र है । वे उस मिट्टी के कहानीकार हैं । बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के "औराही हिंगना" नामक गाँव में रेणु का जन्म 4 मार्च उन्नीस सौ इक्कीस में हुआ । उन के पिता शीलानाथ जो कूर्म क्षत्रीय वंश के संपन्न और सहृदय किसान थे । रेणु के जन्म के अवसर पर उन के पिता को फौजदारी मुकदमे के सिलसिले में कुछ ऋण हुआ था । दादी और माँ ने नवजात बच्चे को "रिनवाँ" 'ऋणवाँ'[2] कह कर इसलिए पुकारना शुरू किया कि यह बच्चा अपना ऋण वसूलने आया है । बाद में लाड़प्यार का वही घरेलू नाम "रिनु" से "रेणु" हो गया ।

---

1. नई कहानी की मूल संवेदना - डा.सुरेशसिन्हा, पृ.ठ 118.
2. श्रुत-अश्रुत पूर्व - फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 56, प्र.सं.1984.

प्रारंभिक जीवन

राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों में गहरी दिलचस्पी के कारण शीलानाथ का, बीहार में ही नहीं बंगाल और नेपाल के कई भद्रजनों के साथ आत्मीय संबंध था। इसलिए रेणु को बचपन में ही इन सज्जनों के सत्संग की सुविधा मिली। गाँव से दस मील की दूरी पर स्थित फारबिसगंज शहर के अररिया हाई स्कूल के होस्टल में रह कर रेणु की पढ़ाई शुरू हुई। सन् उन्नीस सौ तीस-इकतीस में रेणु हाईस्कूल के चौथे दर्जे का विद्यार्थी था। उस समय की एक घटना का वर्णन रेणु ने विस्तार से यों किया है - "महात्मा गाँधीजी की गिरफ्तारी की खबर मिलते ही सारा बाजार बंद हो गया और स्कूल के सभी छात्र बाहर निकल आये। दूसरे दिन भी हम हड़ताल के अलावा "पिकेटिंग" भी कर रहे थे। अतिरिक्त उत्साह में मैं ने स्कूल के असिस्टेंट हेडमास्टर साहब को भी रोका। उन्होंने झुंझला कर बंगला में कहा था - "तोमरा चुलोय जाच्छो, जाओ! आमा के केन टानहे- ? अर्थात् तुम लोग चूल्हे - भाट में जाते हो, जाओ ; मुझे क्यों खींचते हो ?

मैंने तत्काल जवाब दिया - "आप हमारे गुरु जो हैं"। दूसरे दिन हम स्कूल पहुँचे तो मालूम हुआ कि हर हडताली विद्यार्थी को आठ आने पैसे जुर्माने की सजा होगी। दो-तीन घंटी की पढ़ाई होने के बाद हेडमास्टर साहब का नोटीस निकला जो विद्यार्थी कल नहीं आये थे, उन्हें आठ आने बतौर जुर्माने के और जो लोग बीमार थे अथवा अन्य किसी कारण से स्कूल नहीं आ सके, उन्हें दरखास्त लिखकर देना होगा और जो लोग अपनी गलती स्वीकार कर माफी माँगना चाहते हैं, वे भी दर्खास्त दें।

नोटीस के अंत में विशेष रूप से मेरा नाम और वर्ग लिख कर कहा गया था कि असिस्टेंट हेडमास्टर साहब के साथ अशोभनीय बर्ताव - इम्पर्टिनेंट बिहेवियर - के लिए - सारे स्कूल के छात्रों के सामने पाँचवीं घंटी के बाद इस लडके का दस बेंत लगाये जायेंगे

नोटीस निकलने के बाद ही मैं अचानक "हीरो" हो गया । ऊँचे दर्जे के विद्यार्थी मुझे ढाढ़स बाँधते, शबाशी देते और कोई-कोई तरस खा कर कहते - माफ़ी माँग लो ।

लेकिन, मैं ने जलियाँ बाग काण्ड़, मदनगोपाल की कहानी पढ़ी थी । मेरे सिर पर मदन गोपाल की आत्मा आकर सवार हो गयी मानो । कई अध्यापकों ने भी आकर समझाया - डराया - धमकाया । लेकिन मैं माफ़ी माँगने को तैयार नहीं हुआ ।

तब तक मित्रों ने न जाने कहाँ से फूल माला, चन्दन आदि की व्यवस्था कर ली थी ।

नियत समय पर "वार्निंग बेल" बजा । सभी वर्ग के छात्र सामने मैदान में आकर एकत्रित हुए । सिक्सुथ मास्टर साहब, तुर्की टोपी और शेरवानी पहने-हाथ में बेंत धुमाये हुए मैदान के बीच में आये । सभी शिक्षक सिर झुका कर खडे थे । मेरे नाम की पुकार हुई और मैं रिंग में जा कर खडा हो गया, ठीक विवेकानन्दीय मुद्रा में - दोनों बाहों को समेट कर । बेंत मारने के पहले, मास्टर साहब ने अंग्रेजी में कुछ कहा । फिर चिल्लाये -

"स्टेच योर हैण्ड" ।

"ह्विच हैण्ड । लेफ्ट ऑर राइट" ?

भीड से कई आवाज़ एक साथ - "शबाश"

मास्टर साहब ने शुरू किया, "वन" ।

"वन्देमातरम् ।" मैं ने नारा लगाया ।

एकत्रित छात्रों ने दुहराया - "वन्देमातरम् ।"

"टू"

महात्मा गाँधी की जै" ।

अब सड़क, कचहरियों और बाजार से लोग
दौड़े - नारा लगाते - "महात्मा गांधी की जय" ।
"श्री - ई - ई" ।
"जवाहरलाल की जै ।"
"जै - जै - जै - जै - जै वन्देमातरम् झंडे
तिरंगे - कौमी नारा - महात्मागांधी की जै - जै ।"

"इलाके के मशहूर सुराजी" सत्याग्रही चुन्नीदास गुसाईं उस भीड़ को चीर कर न जाने कहाँ से आ गये । जनता नारे लगाने लगी । हेडमास्टर साहब ने "केनिंग" रोकवा दिया । छुट्टी की घंटी बजा दी गयी । लेकिन, भीड़ बढ़ती ही गयी और नारे बुलन्द होते रहे । सारा कस्बा उमड़ पड़ा । इस के बाद मुझे किसी ने कंधे पर चढ़ा लिया और लोग जुलूस बना कर निकल पड़े ।

दस में सिर्फ तीन बेंत ही लगे । दूसरे दिन सारा बाज़ार फिर बन्द रहा और स्कूल के सभी छात्र हड़ताल पर रहे"[1] ।

बचपन में ही स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उन को झुकाव था । उस केलिए इस से बढ़ कर अन्य किसी विवरण की आवश्यकता नहीं है । यह वह समय था कि सभी इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हो रहे थे । लेकिन इस घटना में से रेणु के व्यक्तित्व के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष प्राप्त किये जा सकते हैं । बचपन में ही यौवन सहज साहस और स्पष्टवादिता, प्रतिबद्ध दृष्टि, स्वतंत्र विचार आदि उन में प्रकट हुए । बाद में उन के जीवन में घटी हुई घटनाओं के विश्लेषण से यह मालूम होगा कि बचपन में प्रकट ये सारे पक्ष उन में उत्तरोत्तर विकसित हुए हैं ।

---

1. श्रुत अश्रुत पूर्व - रेणु, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 151-53.

सन् उन्नीस सौ पैंतीस को छुट्टी के एक बरसाती दिन, रेणु कहीं जा कर रेलगाडी से लौट रहा था । यात्रा के बीच रेणु नेपाल के कोइराला परिवार का एक सदस्य- विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला- से परिचित हो गया । यह एक गहरी मित्रता की शुरूआत थी जिस ने रेणु के जीवन की दिशा को बदल दी । भागती गाडी में चढ़ते समय रेणु के पिताजी की नयी छतरी नष्ट हो गयी थी । गाँव पहुँचने पर रेणु को अपने पिताजी की मार का बहुत अधिक डर था । रेणु ने लिखा है - "होस्टल का बाकी-बकाया छुट्टी के पहले ही घर से वसूल किया था, सो जमा नहीं किया- बाबू जी को इस की खबर भी मिली थी" । चलती गाडी में चढ़ने पर जो छतरी गिर गयी वह "छतरी जो गिरी, बाबूजी की थी । नयी थी" । नयी छतरी नष्ट करने की मार मिलेगी । उस के साथ ही चलती गाडी में चढ़ने का दंड - "चलती गाडी में क्यों चढ़ने गया था ? इस अकेले प्रश्न को पाँच बेंत ...."[1] । इसी पर घर जाये बिना रेणु भाग कर विराटनगर (नेपाल) चला गया । यहीं से कोइराला परिवार से रेणु का संबंध प्रारंभ होता है । जल्दी ही रेणु उस परिवार का एक सदस्य-सा बन गया । वहीं रह कर उस ने हाईस्कूल के अंतिम दो वर्ष की पढ़ाई भी पूरा कर दी । वहाँ के रहन-सहन से उस की महत्वाकांक्षाओं को सहारा मिल गयी[2] । उस घर से उसे जो प्रेम मिल गया था, जो ममता मिली थी जिस से रेणु नेपाल को अपनी "सानो आमाँ" - छोटी माँ- मानता है - "नेपाल में मेरी छोटी माँ रहती है । हर साल विजयादशमी में प्रणाम भेजता हूँ - आशीष पाता हूँ"[3] । अपने समवयस्क मित्र तारणी प्रसाद कोइराला के साथ कोइराला परिवार में रेणु का जीवन आनन्दप्रद रहा । कृष्णप्रसाद कोइराला से उसे पिताजी के सहज स्नेह मिलता रहा । श्रीमती दिव्या कोइराला रेणु को अपना छोटा बेटा मानती थी ।

---

1. श्रुत अश्रुत पूर्व-फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 51

2. श्रुत अश्रुत पूर्व-फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 56

3. वही पृष्ठ 46

राजनीतिक क्रिया कलाप

विराटनगर से हाई स्कूल की पढ़ाई पूरा करने पर उच्च शिक्षा केलिए रेणु के पिता ने उसे काशी विद्यापीठ में भेजा। वहाँ पर रेणु कई राजनीतिक नेताओं तथा साहित्यकारों के संपर्क में आये, जिस से राजनीतिक तथा साहित्यिक बातों में उन की दिलचस्पी बढ़ने लगी। इस के बारे में नागार्जुन ने यों लिखा है - "आचार्य नरेंद्र देव, यूसुफ मेहर अली, राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि से ले कर भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद रामप्रसाद बिस्मिल जैसे प्रकट-अप्रकट व्यक्तियों के प्रति मानसिक लगाव की दृष्टि से बनारस में गुज़रे ये कुछेक वर्ष रेणु केलिए बड़े महत्वपूर्ण साबित हुए। साहित्य साधना के संस्कार भी वहीं गहरे हुए"[1]।

सन् उन्नीस सौ बयालिस में रेणु पढ़ाई छोड कर स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हिस्सा लेने लगे। कुछ वर्ष जेल में भी बिताना पड़ा। कारावास के दौरान बंगाल के प्रसिद्ध कथाकार सतीनाथ भादुरी से उन का परिचय हो गया। रेणु के साहित्यिक व्यक्तित्व को स्थापित करने में सतीनाथ भादुरी का योगदान रहा है। रेणु में छिपे साहित्यकार को उन्होंने जगा दिया था।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् उन्नीस सौ पचास में रेणु ने बी.पी.कोइराला के साथ नेपाल की राणाशाही के खिलाफ़ सशस्त्र क्रांति में सक्रिय भाग लिया। फिर लंबी बीमारी से लड़ कर लतिकाजी की सहायता से बच गये थे। जयप्रकाश नारायण के साथ रेणु बिहार आंदोलन में शामिल हो गये - "रेणु जी बिहार आंदोलन से सीधे जुड़े हुए हैं, उन्होंने लाठियाँ भी खायी हैं। जेल भी गये हैं"[2]।

---

1. आजकल, नागार्जुन, जुलाई 1977, पृष्ठ 7.
2. रेणु: संस्मरण और श्रद्धांजली, लेख - विश्वनाथ प्रसाद कोइराला, प्रथम संस्करण 1982, पृष्ठ 29.

आपात कालीन समय के दौरान फिर कुछ समय उन्हें जेल जाना पडा । उस के बाद की चुनाव में भाग ले कर लौटने ही उन्हें पाटना मेडिकल कालज आस्पताल में दाखिल किया गया । एक आपरेशन के बाद उन्नीस दिनों तक बेहोशी में पड़े रहे । छप्पन वर्ष की उम्र में ग्यारह अप्रैल उन्नीस सौ सतहत्तर में रेणु की मृत्यु हो गयी । संघर्षों से भरा हुआ रेणु का जीवन यों समाप्त हो गया ।

साहित्यिक समारंभ

सन् उन्नीस सौ चालीस से पचास तक रेणु की रुचि तुकबन्दियों और मुक्त छन्दों की तरफ़ थी । इस के बारे में नागार्जुन ने लिखा है - "फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्य सर्जना का आरंभ कविता से हुआ था । पूर्णिया नगर से निकलने वाले, उस युग के 1940-50 साप्ताहिकों की फइलें यदि कहीं मिल जाए तो रेणु की तुकबन्दियों और मुक्त छंदों के अनेक नमूने हासिल होंगे"[1] । "शिव विवाह" नाटक का रचयिता तथा "हितैषी" का संपादक तिवारी जी की स्वीकृति और आशीर्वाद से ही रेणु ने तुकबन्दियों की रचना शुरू की थी । राजनीति की ओर जाने के पीछे भी उन की प्रेरणा रही है । उस के बारे में रेणु ने स्वयं लिखा है - "उन (तिवारी जी) के आशीर्वाद के बल पर मैं ने तुकबन्दी शुरू की । कविसम्मेलन में समस्या पूर्ति कर के पुरस्कार प्राप्त किया । उन्हीं के आशीर्वाद से विद्यार्थी आंदोलन में भाग लिया । उन्हीं की स्वीकृति से राजनीतिक क्षेत्र में आया"[2] ।

छोटी उम्र में ही रामायण-महाभारत आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों से उन का परिचय हो गया था । साथ ही हर सप्ताह निकलती पत्र-पत्रिकायें भी, रेणु केलिए प्रिय थीं ।

---

1. आजकल, रेणु संस्मरणांक, जुलाई 1977, पृष्ठ 6.

2. श्रुत अश्रुत पूर्व - फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 84.

लिखने की प्रेरणा के बारे में रेणु ने लिखा है - "बचपन से ही पत्र-पत्रिकायें पढ़ता था ! तुकबन्दियाँ और कहानियाँ बचपन से ही जोडने-गढ़ने लगा था । प्रेरणा निश्चय ही अच्छी रचनाओं से मिली होगी"[1] । विदेशी कथासाहित्य से भी रेणु को प्रेरणा मिली थी - "विदेशी - खास कर रूसी और फ्रेंच - कथासाहित्य में हमें एक नई गन्ध मिलती थी और उन्हीं गंधों के सहारे हम उस देश की हवा में पहुँच जाते थे - गोर्की, चेखव, तुर्गनेव, मोपोसा और शोलोखव के कथांचल में"[2] । इन की कहानियों से रेणु को यथार्थ का स्वाद मिलता था और उस से वे तृप्त भी थे । साथ ही "रेणु जी रवीन्द्र साहित्य के परम प्रशंसक थे, उन्हें कंठस्थसा था, बंगला के सभी लेखक से वे अच्छा परिचय रखते थे"[3] । सन् उन्नीस सौ इक्कावन-बावन में रेणु ने रामकृष्ण, विवेकानन्द साहित्य का भी गहरा अध्ययन किया था[4] । इन अध्ययनों ने रेणु के साहित्यकार व्यक्तित्व को जोडने-तोड़ने में सहायता दी है ।

रेणु ने सन् उन्नीस सौ छत्तीस से, स्कूल-कालज के मैगजीन में लेखन कार्य शुरू किया था । उनकी प्रथम कहानी अपने ही गाँव के "एक महान् महीरुह एक विशाल वट वृक्ष........ ऋषितुल्य, विराट् वनस्पति [5] । को ले कर रचित है । सन् उन्नीस सौ बयालीस में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण रेणु को भगलपुर सेंट्रल जेल जाना पडा । वहीं रह कर उन्होंने "अगाखाँ राजमहल में" नामक कविता लिखी थी । पूरी कविता सुनने के बाद प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार सतीनाथ भादुडी ने कहा :- "तुम गद्य क्यों नहीं लिखते हो ? अरे कहानी लिखो, कहानी ।

---

1. प्रश्नों के घेरे, सं.राजेन्द्र अवस्थी, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 155.
2. श्रुत अश्रुत पूर्व, पृष्ठ 60.
3. आजकल, मन्मथनाथ गुप्त, जुलाई 1977, पृष्ठ 13.
4. श्रुत अश्रुत पूर्व, पृष्ठ 96.
5. वन तुलसी की गंध - रेणु प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 142.

तुम्हारी बातें गद्य में कितनी जमती है । तुम अगर लिखते तो तुम्हारी कहानियाँ खूब जमेंगी".[1] । तिवारी जी भी भगलपुर के सेंट्रल जेल में थे । उन्होंने भी रेणु की यह कविता ध्यान से सुन कर कहा - ".........तुम कविता छोड़ कर कहानी लिखना शुरू करो.......".[2] । इस प्रकार कथाक्षेत्र में आने की प्रेरणा रेणु को मिली थी ।

अनुभवों के विस्तृत संसार ने रेणु को बहुत अधिक स्रोतस्थल दिए हैं । राजनीति में भाग लेने के कारण रेणु को गाँव-गाँव भटकने और अपने लोगों से मिलने तथा उन्हें समझने-पहचानने का अवसर मिला । जनक्राँति में उन्होंने सूचित किया है - "सिर्फ कलम से नहीं, अपनी काया से कुछ लिखना ज़रूरी है । अपने ही कलेजे के रक्त में अपनी उँगली डुबा कर दीवार पर "क्रान्ति अमर हो" लिख पाऊँ".[3] - यही रेणु की आकाँक्षा थी । लेकिन आज़ादी के बाद राजनीतिक दलों के आपसी झगडे और जनता से अलगाव देख कर उन्होंने पार्टियों को तिलाँजली दी । जिन मूल्यों केलिए वे पार्टी में आये, उन मूल्यों को ले कर लिखना शुरू किया".[4] । आज़ादी के वर्षों बाद भी भारत के बे-जमीन, पिछडे और अछूत एवं आक्रान्त लोगों केलिए रेणु ने लिखा । समाज को ग्रसते शोषण का, अपनी रचनाओं के माध्यम से रेणु ने पर्दाफाश किया । साधारण ग्रामीणों के साथ रहने और उन के जैसा जीवन व्यतीत करने के कारण ग्रामीणों की समस्याओं का पूरा ज्ञान उन्हें मिला । एक शालीन ग्रामीणवृत्त उन की रचनाओं में खुलता रहता है । वह शालीन इस अर्थ में है कि उस में अभिव्यक्त लोकचेतना एक दम सर्जनात्मक है । वह स्थिर चित्र नहीं, वह गत्यात्मक है, जीवन की सामान्य

---

1. रेणु संस्मरण और श्रद्धाँजली, नागार्जुन, पृष्ठ 18.
2. श्रुत अश्रुत पूर्व, पृष्ठ 85.
3. श्रुत अश्रुत पूर्व, पृष्ठ 133.
4. वही, पृष्ठ 138.

आकांक्षाओं को उभरता हुआ ग्रामप्रांत । यही रेणु का जीवन और रचना-जगत है । साधारण ग्रामीणों के जैसे रेणु ने "अपने एक हाथ में उन्होंने अपने नाम का "गोदना" गोदवाया था".[1] । बाद में वे पटना, इलाहबाद, वाराणसी आदि शहरों में रहने लगे तो भी दो-तीन महीनों के अन्दर गाँव आकर कुछ दिन रहते, खुली हवा में साँस किया करते थे ।

प्रकृति प्रेमी

प्रकृति की सुन्दरता में, उस की निजता में घुल-मिल जाने की आकांक्षा रेणु में सदैव रही है । बचपन में ही रेणु की यही इच्छा थी कि आम ग्रामीण व्यक्ति के जैसे गाँव की प्राकृतिक सुन्दरता में भविष्य जीवन बिताने का अवसर मिले । रेणु का पिता उन्हें पढ़ा कर वकील बनाना चाहते थे । अपने एक अध्यापक जी के प्रश्न के उत्तर के रूप में रेणु ने आत्मीयता के साथ बताया था कि वह सिमराह रेलवें स्टेशन का मास्टर बनना चाहता है[2] । वह स्टेशन मास्टर जो गरीबों को मुफ्त दवाई देनेवाला और नेक इनसान था । ग्रामीणता के प्रति उनका यह आकर्षण बचपन से ही शुरू हुआ था । बचपन में वह बचपनोचित आकर्षण रहा होगा । लेकिन बढ़ते-बढ़ते यह आकांक्षा भी उत्तरोत्तर बढ़ती रही और वे उन्हीं आकांक्षाओं के रचनाकार बन गये । अज्ञेय ने सही लिखा है - "रेणु की असली शक्ति धरती के साथ उन का संबंध है, जिस के कारण मैं ने उन्हें धरती का धनी कहा है".[3] ।

---

1. रेणु संस्मरण और श्रद्धांजली - सुरेश शर्मा, पृष्ठ 174.
2. श्रुत अश्रुत पूर्व, पृष्ठ 82.
3. स्मृति लेखा - अज्ञेय, पृष्ठ 115.

ग्रामीण और शहरी व्यक्तित्व का समन्वय

रेणु के व्यक्तित्व में गाँव के खलिहान से ले कर राजधानी के कॉफ़ी हाउस तक का एक आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है । अपने गाँव के हर परिचित से बडी मित्रता और हमदर्दी के साथ बातें करते थे । पाटना के कॉफ़ी हाउस के एक कोने में कई मित्रों से घेरे वे हर शाम मिलते थे । इस के बारे में नागार्जुन ने लिखा है - "वह जहाँ कहीं भी रहे, लोग उन्हें घेरे रहते हैं । फारबिसगंज, पाटना, इलाहबाद, कलकत्ता, मैं ने रेणु को जहाँ कहीं देखा और जब कभी, निर्जन एकांत में शायद ही देखा होगा"[1]। कई प्रकार के लोगों से उन का जो परिचय रहा है उसी प्रकार उन के अनुभव की दुनिया भी बहुरंगी और बहुआयामी है, जो धूल-शूल-फूल से भरी हैं ।

एक रचनाकार और एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ का संसार अलग ही होता है । चुनाव आदि राजनीतिज्ञों का ही अड्डा है । चुनाव में निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में वे लडे । इस अवसर पर भूपेन्द्र अबोध ने रेणु से यह प्रश्न पूछा था कि निर्दलीय हो कर अगले चुनाव जीत जायें तो वे क्या करेंगे ? इस का रेणु ने यों उत्तर दिया था - "बेज़मीन लोगों की समस्याओं को सबल कण्ठ से प्रस्तुत करना तथा उसे अमल में लाने केलिए व्यक्तिगत सत्यग्रह से ले कर सामूहिक आंदोलन तक करना तथा अपने अंचल की नयी पीढ़ी, नई पौधे, नई फसल की निगरानी करना मेरा पहला कर्तव्य होगा"[2] । चुनाव का फल आने पर वे पराजित हो गये ।

सन् उन्नीस सौ पचास की नेपाली क्रांति में "......... रेणु भी शामिल हो गया और मुक्तिसेना की फौजी वर्दी में मेरे साथ बन्दुक लेकर मोर्चे पर कूद पडा ।

---

1. आजकल - नागार्जुन, जुलाई 1977, पृष्ठ 5.
2. रेणु से भेंट - सं. भारत यायावर, प्रथम संस्करण 1987, पृष्ठ 66.

क्रान्ति के समय उस ने नेपाली कांग्रेस के प्रचार-प्रकाशन तथा विराट नगर से स्थापित एक "गैर कानूनी" आकाशवाणी के संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की"[1] । इस क्रान्ति के दौरान बीमार बन गये रेणु को घरवालों ने मरने को आस्पताल छोड दिया था । वहीं पर लतिकाजी की लगातार सेवा-शिश्रूषा से वह फिर भी उठा और लतिकाजी को शादी भी कर दिया[2] । इस प्रकार जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों से उन्हें गुज़रना पड़ा । पर गाँव के साधारण जीवन से वे घुलमिल गये । शहरी जीवन की व्यवस्थाओं के भी वे अंग रहे । इस अर्थ में उन का व्यक्तित्व अद्भुत ही था ।

निर्भीक व्यक्तित्व के धनी

निर्भीकता और आत्मविश्वास उन के व्यक्तित्व के प्रमुख अंग थे । यह विशिष्ट दृष्टिकोण ही, हर अत्याचार के खिलाफ़ खडे हो कर प्राण की बाजी लगाने को, उन्हें प्रेरणा देता है । वस्तुत: यह उन के व्यक्तित्व के नैतिकोन्मुख सामाजिक दर्शन को उभारनेवाला पक्ष है । अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ने तथा नेपाल की राणाशाही के विरोध में नेपालियों के साथ कंधा मिलाने की क्षमता उन के इस दृष्टिकोण का परिणाम है । जनविरोधी सत्ता के विरुद्ध लड़ना रेणु अपना कर्तव्य समझते थे । श्री.जयप्रकाश नारायण ने रेणु के बारे में यों लिखा है - "वे रेणु मेरे सम्मानित मित्र और सहयोगी थे । जन आन्दोलन में उन का योगदान अभूतपूर्व रहा है"[3] । स्वतंत्रता के बाद भी उन्होंने अपनी राजनीतिक अदाकारी ज़ारी रखी । बिहार के संपूर्ण क्रान्ति आँदोलन में वे जयप्रकाश नारायण के सहयोगी बने । भारत सरकार से उन्हें जो पद्मश्री मिली, जिसे सरकार के अत्याचारों के विरोध में रेणु ने लौटा दिया । बिहार राज्य शासकों से

---

1. नेपाली क्राँतिकथा की भूमिका - विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 7.
2. आजकल, जुलाइ 1977, पृष्ठ 9.
3. सारिका, रेणु स्मृति अंक, अप्रैल 1979, पृष्ठ 13.

जो तीन सौ रुपये की वृत्ति मिली थी, उसे भी रेणु ने छोड़ दिया । यह नैतिक साहस उन के आत्मविश्वास का ही सूचक है ।

साहित्यिक मान्यताएँ

अपने लेखन के प्रति ईमानदार होने की बात में रेणु अटल दिखाई पड़ते हैं । लेखन की आवश्यकता पर उन की राय यही है कि "मैं अपने आप को खोजता हूँ । इसलिए लिखता हूँ । पर लिखता मैं भी वही हूँ जो देखता हूँ, सोचता हूँ, अनुभव करता हूँ".[1] । इस कारण से उन के लेखन में सहजता की प्रतीति होती है । इस का यह मतलब नहीं कि दूसरों में यह सहजता नहीं है । रेणु के लेखन में निजता का एहसास हमें मिल जाता है । साथ ही साथ वे स्वयं अपने लेखन में अपना निजत्व भी प्राप्त करना चाहते हैं । उन्होंने सूचित किया है - "रही लिखने की बात, तो अपना दुख-दर्द बाँटने केलिए लिखता हूँ".[2] । और बाद में रेणु ने लिखा है - "स्वांत सुखाय" लिखता और "सर्वजन सुखाय" प्रकाशित करवाया".[3] । साहित्यकार के अनुभवों में तीव्रता की आवश्यकता पर साथ ही उसे विस्तृत पाठक वर्ग तक पहुँचाने में वे विश्वास रखते हैं ।

साहित्य सृजन की प्रेरणा के बारे में रेणु की राय यही है - "निःसन्देह आन्तरिक प्रेरणा".[4] ही सर्वप्रमुख है । यह आन्तरिक प्रेरणा उन्हें अपने ग्रामांचल से ही प्राप्त होता है । आंचलिक शैली में वे स्वयं अपने को प्राप्त करना चाहते हैं - "आंचलिक शैली में, अपनी रचनाओं में अपने को ही ढूँढ़ता हूँ - अपने को अर्थात् आदमी को ।

---

1. रेणु संस्मरण और श्रद्धांजली, पृष्ठ 30.
2, वही, पृष्ठ 31.
3. प्रश्नों के घेरे, सं.राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 155.
4. प्रश्नों के घेरे, सं.राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 156.

और आदमी को ढूढ़ने में जो समस्यायें पेश आती हैं, उन्हें हर शैली के रचनाकार समान रूप से झेलते हैं । किसी शैली का निर्वाह रचनाकार के व्यक्तिगत सामर्थ्य की बात है.[1] ।

अनुभव और सृजन के आन्तरिक संबन्ध के बारे में उन के अपने मत हैं । उन के मतानुसार निरीक्षण तो होता ही रहता है । उस का असर पड़ता ही जाता है । लेकिन उस की गवाही प्रस्तुत करने में कोई फायदा नहीं । इस के पहले रेणु की जिस निजता की बात कही गई थी वही यहाँ विस्तार पर कही जा रही है और उन के अनुसार वह सहभागीत्व का प्रश्न है । यह किस प्रकार से आत्मपथ को वस्तुपथ में बदलता है और पुन: आत्मपथ में झाँकने लगता है, यही मुख्य है । उन्होंने लिखा है - लेखक को परिवर्तन की प्रक्रिया का गवाह नहीं भोगीदार बनता है.[2] । लेखक के कर्तव्य के बारे में उन की मान्यता है कि "लेखक का काम सृजन करना है, वक्तव्य देना नहीं, यदि लेखक को वक्तव्य दे कर अपने सृजन की आवश्यकता महसूस होती है तो उसे डूब मरना चाहिए"[3] । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैला आँचल" और "परती-परिकथा" लिखने के बाद उन की लिखने की क्षमता नष्ट हो चुकी थी । लेकिन "बिहार आन्दोलन ने उसे पुन: जीवित कर दिया"[4] । रेणु की रचनाओं में निजता के सहभागीत्व की उपस्थिति के संबंध में शिवकुमार मिश्र का कथन सर्वथा स्वीकरणीय लगता है - "रेणु ने इसी भारत की व्यथा कथा कही है, उस की आशाओं, आकांक्षाओं,

---

1. प्रश्नों के घेरे, सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 160.
2. रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजली, पृष्ठ 32.
3. वही
4. वही, पृष्ठ 31.

उसी के स्वप्नों और संकल्पों को, बडी गहरी संवेदना के साथ, बडी आत्मीय शैली में, उस के एक-एक देश से अपने निकट की पहचान तथा एकदम अंतरंग रिश्ते को सूचित करते हुए उजागर किया है"[1] । इस प्रकार रेणु ने कथासाहित्य में एक लंबे अन्तराल के बाद प्रेमचन्द की परंपरा को पुन:जीवित कर दिया था । यह पुनराविष्करण की प्रक्रिया मात्र नहीं है । कई सन्दर्भों में भारतीय जीवन के सूक्ष्मतम पहलुओं से जुडने का आग्रह भी है ।

हिन्दी कथासाहित्य केलिए रेणु ने नया स्वर दिया। एक नया परिवेश दिया । यह सर्वमान्य बात है कि वे आंचलिकता के प्रवर्तक हैं । इस के बारे में डा.नामवर सिंह यों लिखते हैं - "चित्रकला में नवीन प्रवृत्तियों का प्रवर्तन करनेवाले पिकासों जैसे चित्रकारों ने जिस प्रकार परंपरागत रूप को खंडित कर के नये-नये अनुक्रमों-द्वारा जीवन-वास्तव के विविध आयाम चित्रित किये, उसी प्रकार संभवत: आज की हिन्दी कहानी में भी कहीं कहीं यह कार्य चल रहा है । रेणु और मार्कण्डेय ने इस कला के द्वारा ग्रामजीवन के कुछ मार्मिक पक्ष उभारे हैं ...."[2] । ग्रामीण जीवन के यथार्थ को, गाँवों के मनुष्य और उन की समस्याओं को उभरनेवाले रचनाकार के रूप में रेणु को डा.मानेजर पांडेय[3] ने तथा डा.शिवकुमार मिश्र ने चित्रित किया है [4] ।

---

1. रेणु: संस्मरण और श्रद्धांजली, पृष्ठ 48-49.
2. कहानी: नयी कहानी, डा.नामवर सिंह, पृष्ठ 58.
3. ".......रेणु ग्रामीण जीवन के यथार्थ के कहानीकार हैं । वे ग्रामीण जीवन के टूटते-बिखरते और जीवित मानवीय संबंधों के कथाकार हैं" । मूल्यांकन-मासिक पत्रिका, लेख डा.मानेजर पांडेय, अंक 1, 1985, पृष्ठ 9.
4. नये कहानीकार - फणीश्वर नाथ रेणु, संपादक राजेन्द्र अवस्थी, भूमिका - मेरा हमदम मेरा दोस्त - कमलेश्वर, पृष्ठ 6.

रेणु के परिवेश-चित्रण-कुशलता के बारे में कमलेश्वर ने लिखा है - "परिवेश-वातावरण-जीवित पात्र की तरह सामने खडा हो कर अपना हक शायद अकेले रेणु में ही माँगता है। रेणु का पाठक कहानी पढ़ता नहीं, देखता है एक-एक ध्वनि, एक-एक गंध, एक-एक रंग को महसूस करता हुआ उसे जीता है, उस के गहरे अर्थों को जान कर चकित होता है".[1] । इसी सूक्ष्मग्राही दृष्टि से उन्होंने साहित्य के गत्यवरोध को दूर किया । इसलिए उन को पढ़ने का अर्थ उन की संलग्नता के साथ घुलमिल जाना है[2] । रेणु का यही रचनात्मक अनुदान है ।

रेणु का कथेतर साहित्य: संक्षिप्त विवरण

इस प्रकरण में कहानी को छोड कर रेणु की बाकी सभी रचनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है ।

1. उपन्यास

रेणु प्रमुख रूप से उपन्यासकार हैं । उन के छह उपन्यास प्रकाशित हैं । उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है -

1. मैला आँचल 1954
2. परती परिकथा 1957
3. दीर्घतपा 1963
4. जुलूस 1965
5. कितने चौराहे 1970
6. पलटू बाबू रोड़ 1979

---

1. **वीणा** मासिक पत्रिका, मार्च 1986, पृष्ठ 9.
2. **ज्योत्सना** - रेणु स्मृति अंक, पृष्ठ 23.

1. मैला आँचल

रेणु का यह प्रथम उपन्यास है । यह उन का सर्वप्रमुख तथा बहुचर्चित उपन्यास भी है । इस औपन्यासिक कृति ने हिन्दी उपन्यास साहित्य क्षेत्र में एक नया क्षितिज खोल दिया । इस का कथा-फलक काफ़ी विस्तृत है । यह दो खंडों में विभक्त है जो क्रमश: इस प्रकार हैं - सुराज के पहले (सैंतालीस सर्ग) और बाद (तेईस सर्ग)। इस उपन्यास को रेणु ने "आँचलिक उपन्यास" नाम से अभिहित किया । यह कार्य नामकरण तक सीमित नहीं रहा । इस शब्द ने बाद में चल कर एक नई प्रवृत्ति का समारंभ भी कर दिया । यही नहीं लोकजीवन की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति भी शुरू हो गयी है[1] ।

रेणु ने बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की रचना की है । इस गाँव का मालिक, ज़मीन्दार तहसीलदार बाबू विश्वनाथ मल्लिक है । गाँव के लोग कायस्थ,राजपूत, यादव, ब्राह्मण आदि टोलों और टोलियों में बँटे हुए हैं । अशिक्षा, अंधविश्वास, आर्थिक पिछडापन शोषण आदि सदियों से वहाँ घर कर गये हैं । गाँव में मलेरिया फैल जाती है । मलेरिया निवारण के हेतु वहाँ एक मलेरिया - केन्द्र तथा आस्पताल की स्थापना होती है । इस आस्पताल में नौकरी करने केलिए डा.प्रशान्त आ जाता है । मानवीय भावना से प्रेरित हो कर वह मलेरिया के बारे में शोध कार्य भी शुरू करता है । विदेश जाने को फेलोशिप मिलने पर भी डा.प्रशान्त मेरीगंज छोड कर जाने को तैयार नहीं होता । आस्पताल के शुरू होने से लोगों को उस पर संदेह और विरोध होता है । जोतखीजी द्वारा लोगों के अंधविश्वास को प्रश्रय दिया जाता है । डा.प्रशान्त और कमली, खलासी और फुलिया, कालीचरण और मंगला, बलदेव और लछमी आदियों के प्रणय प्रसंगों से हो कर उपन्यास का कथासूत्र विस्तृत हो जाता है । "मैला आँचल" के पात्रों को इसी से हम कई सिक्तों

---

1. नया आलोक, अंक 6 , 1984 अनन्दनारायण शर्मा के लेख, साहित्येतिहास, आधुनिक साहित्य और लोक चेतना से उद्धृत, पृष्ठ 39.

में देखते हैं और अन्त में गहरी मनवीय सहानुभूति और आस्था की छाप के हमारे मन पर छोड जाते हैं   उन की दुर्बलतायें मानवता के भविष्य में हमारी आस्था को कम नहीं करती है"[1] । सामाजिक संघर्ष-संथालों और गैर संथालों का संघर्ष, जमीन्दारों और भूमिहीनों का संघर्ष, हिन्दू-मुसलिम दंगों का उल्लेख आदि भी इस उपन्यास में उल्लेखित हैं । इन के साथ ही साथ मेरीगंज की लोक-संस्कृति, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियों की तरफ भी उपन्यासकार ने इशारा किया है । गाँव की सुन्दरता के साथ साथ कुरूपता का तथा गरीबी और अभावग्रस्त जीवन का भी वर्णन किया गया है ।

विस्तृत मानवीय संवेदना के कारण यह उपन्यास शीघ्र ही विख्यात हो गया । इस उपन्यास के बारे में प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने "धूल भरा-सा मैला अंचल"[2] बताया है । दिनकर जी ने रेणु को एक महान रचनाकार माना[3] । "मैला आँचल" के बारे में देवीशंकर अवस्थी ने यों लिखा है - "मिट्टी और मनुष्य की मुहब्बत की गंध से न केवल लेखक स्वयं उन्मत्त है, अपितु वह औरों को भी उस से उन्मत्त करने में सफल हो सका"[4] । नलिन विलोचन शर्मा मैला आँचल को "गोदान की परंपरा में, भारतीय भाषाओं का दूसरा उपन्यास" के रूप में चित्रित करते हैं[5] ।

---

1. अधूरे साक्षात्कार, नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 36.
2. फणीश्वर नाथ रेणु की उपन्यास कला, कुसुमसोफ्ट, पृष्ठ 39.
3. दिनकर जी मैला आँचल को मन्मथनाथ गुप्त को दे कर बोले - "पढ़िए, एक महान प्रतिमा का जन्म हुआ है" । रेणु संस्मरण और श्रद्धांजली, पृष्ठ 25.
4. विवेक के रंग, पृष्ठ 211.
5. रेणु कर्तृत्व और कृतियाँ, पृष्ठ 161.

2. परती परिकथा

"परती परिकथा" रेणु का दूसरा उपन्यास है । कोसी नदी के किनारे की परती पृथ्वी परानपुर गाँव को इस उपन्यास का क्षेत्र बना लिया है । "रेणु उस अंचल परानपुर के माध्यम से सामाजिक ग्रामीण जीवन का ही चित्र प्रस्तुत कर देना चाहते हैं"[1] परानपुर की परती धरती तथा उस के भूमिपति जितेन्द्रनाथ मिश्रा दो प्रमुख कथास्रोत हैं ।

"परती परिकथा" परानपुर गाँव की समग्र कथा है । गाँव के अनेक लोग उस उपन्यास के पात्र हैं । लेकिन रेणु ने सभी चरित्रों का अंकन सबल रेखाओं से किया है । उन पात्रों में जितेन्द्र-ताजमनी, शिवेंद्र-गीता, मलारी, दिलबहादूर, सुवंशलाल, कंछीवाला आदि प्रमुख हैं । इन के अलावा परती से संबंधित अनेक लोक-कथाओं और लोक-गीतों - जो वहाँ के जनजीवन का अविच्छिन्न अंग हैं - का एक अलग संसार भी रचित है । इन सबों के माध्यम से "धूसर, वीरान, अन्तहीन, प्रान्तर, पतिताभूमि, परती जमीन, वंन्धा - धरती.........."[2] की कथा "परती परिकथा" बन जाती है । इन कथाओं के द्वारा जमीन्दारी उन्मूलन के उपरान्त भी भूमिहीनों की समस्या, सामाजिक-राजनीतिक स्थिति आदि के चित्र भी हैं । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि अतिशय सीमित क्षेत्र (परानपुर गाँव) के चित्रण के द्वारा संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन को व्यंजित किया गया है । साथ-ही-साथ "यह उपन्यास वर्णनात्मक और दीर्घसूत्री न हो कर असंख्य चलचित्रों (स्नैप शोट्स) की समाहित योजना पर आश्रित है"[3] । इस प्रसिद्ध उपन्यास की रचना से "......रेणु ने देश के एक छोटे से अचीन्हे को लिया है और अपनी लेखनी से उस की पूजा रचा ली है"[4] ।

---

1. वही, डा.प्रेमशंकर, पृष्ठ 202
2. परती परिकथा - फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ 1.
3. पं. नंददुलारे वाजपेई, आलोचना, अक्तूबर, 1957, पृष्ठ 65.
4. पं. नंददुलारे वाजपेई, आलोचना, अक्तूबर 1957, पृष्ठ 65.

3. दीर्घतपा

यह रेणु का तीसरा उपन्यास है । अपने सुख की चिन्ता न कर के समाज केलिए तथा दूसरों केलिए विषपान करते हुए, आजीवन कष्ट सहनेवाली नारी ही दीर्घतपा कहलाती है । दीर्घतपा को एक नारी पात्र प्रधान उपन्यास भी कहा जा सकता है । इस का कथांचल बाँकीपुर (बिहार) शहर और वहाँ का विमेन्स वेलफेयर बोर्ड है । भारत के स्वाधीनता संग्राम के समय चलनेवाली क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का भी उल्लेख इस उपन्यास में है । क्रान्तिकारियों का साथ देने पर भी, बाद में पुरुषों की वासना, बलात्कार और व्यभिचार का शिकार बनी नारी का चित्रण इस में है । साथ ही देश के विभाजन के परिणामस्वरूप पुरुषों की स्वैराचारिता का शिकार बनी नारियों का भी चित्रण प्राप्त है ।

भारत की स्वाधीनता के बाद नारी शिक्षा के प्रचार और प्रसार के कारण कई महिलाएँ नौकरियों में आ गयीं । विभिन्न विभागों में काम करने वाली नारियों केलिए शहरों में आवासगृह की समस्या भी थी । फलस्वरूप सरकार ने "वर्किंग विमेन्स वेलफेयर बोर्ड" के अधीन "वर्किंग विमेन्स होस्टल", "हेल्थ सेंटर" आदि का कार्यक्रम शुरू किया । रमला बानर्जी नामक एक सुसंस्कृत महिला के नेतृत्व में बाँकीपुर शहर में "वर्किंग विमेन्स बोर्ड" की स्थापना होती है । इसी बोर्ड के अधीन में औरतों की सहायता केलिए "वर्किंग विमेन्स होस्टल", "हेल्थ सेंटर", "मेटेर्निटी सेंटर", "शिल्प केन्द्र", "मिल्क सेंटर" आदि भी शुरू हो गये । रमलाबानर्जी इन सबों की संचालिका भी बन जाती है । बेलागुप्ता ने भारत की स्वतंत्रता की लडाई के अवसर पर पुरुषों के साथ क्रान्तिकारी क्षेत्र में भाग लिया था । पुरुषों से धोखा खाई हुई बेलागुप्ता आज-कल रमलाबानर्जी के सहारे में थी । वर्किंग विमेन्स होस्टल शुरू करने पर बेलागुप्ता उस का सूपरिन्टेन्डेन्ट बन जाती है । बोर्ड के अधीन के

हेल्थ सर्वीस के कार्यक्रमों में भी बेलागुप्ता संबंधित है । रमलाबैनर्जी के संचालन में सारे कार्य सुचारू रूप से चलते हैं । बेलागुप्ता सभी कार्य बड़ी निष्ठा के साथ, नियमपूर्वक तथा अनुशासन के साथ करती है । रमलाबैनर्जी की मृत्यु के बाद श्रीमती जोत्सना आनंद संचालिका बन जाती है । तत्पश्चात् सभी समस्यायें उठ खड़ी हो जाती हैं । जोत्सना रुपये को महत्व देनेवाली थी । संपत्ति और व्यक्तिगत स्वार्थ-लाभ केलिए वह छोटी-सी अवधि में ही चार पतियों की पत्नी और पाँचवें व्यक्ति की भोग्या बन जाती है । वह होस्टल अपने स्वार्थ लाभ केलिए इस्तेमाल करने लगती है । होस्टल की महिलायें स्वैराचार करने लगतीं तथा बलात्कार भी होता है । विदेशों से मिली दवा और दूध की चोरी हो जाती है । इन सब का अभियुक्त बेलागुप्ता बन जाती है । जीवनभर सेवा, त्याग तथा तपस्या का व्रत ले कर तपनेवाली बेला, न्यायालय में नारी की लाज बनाने केलिए सब गलती स्वीकार कर लेती और जेल चली जाती है । साथ ही होस्टल पर हमेशा केलिए ताला भी झूल जाता है ।

इस उपन्यास में रेणु ने नारी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को चित्रित किया है । साथ ही आधुनिक जीवन की जटिलता और उस में फँसे शहरी लोगों की मनोवृत्ति का भी बडा सुन्दर चित्रण किया है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत भर में व्याप्त सामाजिक शोषण और राजनीतिक विडंबना का भी अंकन इस उपन्यास में हुआ है । आंचलिक धारा से विचलित हो कर इस की रचना हुई है । लेकिन रेणु का सामाजिक दृष्टिकोण इस में स्पष्ट है । श्री मधुरेश ने इस उपन्यास के बारे में अपना मत यों प्रकट किया है - रेणु के अन्य उपन्यास की भाँति "दीर्धतपा" किसी अंचल विशेष का उपन्यास नहीं है, उस के पात्र भी अधिकांशत: पिछले दोनों उपन्यास के पात्रों से भिन्न हैं । लेकिन चूँकि रेणु के लेखन का एक खास अन्दाज है, भाषा और बोली के कुछ देशज प्रयोग और लोकगीतों की प्रासंगिक चर्चा आदि से उन्होंने उसे आंचलिक उपन्यास का ही रूप दिया है । कुलमिला-

कर यह कृति रेणु के पिछले दोनों उपन्यासों से आगे नहीं जाती है, परन्तु उन के लेखन का निजी रंग उस में सर्वथा सुरक्षित है - इसे ले कर कोई दो राय नहीं हो सकती".[1] ।

4. जुलूस

'जुलूस' रेणु का चौथा उपन्यास है । इस के कथानक का संबंध पूर्वी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के पुनर्वास केलिए बनाए नबीनगर तथा पास के गोडियार गाँव से है । शरणार्थी नगर का उद्घाटन राज्य के उपमंत्री मुहम्मद इस्मइल नबी ने किया । इस कारण उस नगर को मंत्री का ही नाम पड़ा "नबी नगर" । इस कालनी के सभी निवासी बंगाल के मैमन सिंध जिले के जुमापुर गाँव के रहनेवाले हैं । पवित्रा को छोड कर सभी लोग पिछडे जाति के हैं । पवित्रा जुमानपुर के काशीनाथ चाटर्जी की बेटी थी । विनोद नामक युवक से उस की शादी का निर्णय भी हो चुका था । उस के घर के पास का कासिम चाचा पवित्रा को अपनी बीबी बनाना चाहता था । स्वतंत्रता प्राप्ति तथा भारत-पकिस्तान का विभाजन भी हो चुका था । सांप्रदायिक दंग शुरू हुआ । कासिम को अच्छा मौका मिल गया । उस ने विनोद तथा पवित्रा के माँ-बाप, भाई-बहनों की हत्या करवा दी । कासिम का यही विश्वास था कि निरालंब हो कर पवित्रा उस के समक्ष आत्मसमर्पण कर देगी । लेकिन पवित्रा अन्य निम्नजाति के शरणार्थियों के साथ भाग कर हिन्दुस्तान चली आयी ।

तलेवर गोढ़ा गोडियार गाँव का सब से धनी व्यक्ति है । वह पवित्रा और उस को सहेली संध्या को फँसाने का परिश्रम करता है।लेकिन पवित्रा चालाकी से उस से बच कर, अतिवृष्टि के कारण दुर्भिक्षा में पड़े लोगों केलिए तालेवर से पाँच हज़ार रुपये चंदा भी ले लेती है । अंत में वह प्रसिद्ध अंग्रेज़ी साप्ताहिक "इनक्लाब" के

---

1. ज्ञानोदय, जून 1965, पृष्ठ 123.

प्रतिनिधि नरेश वर्मा के साथ समाज-सेवा करने लगती है । पवित्रा की कथा के साथ जयराम सिंह, रामजयसिंह, कुलदीप, सरस्वती, छिदाम दास, कालाचाँदघोष, हरे राम, हरिधन इत्यादि कालनी के अन्य लोगों की कथायें भी इस उपन्यास में वर्णित है ।

इस में पूर्वी बंगला के विस्थापित लोगों की कथा है । साथ ही पाँचवें दशक में कृषि-संस्कृति की टूटती मीनार, आर्थिक स्थिति में बदलाव, गाँववालों का शहरी आकर्षण, गाँव के छल-छद्म के चित्रण से बदलते गाँव के विशद और मर्मस्पर्शी चित्र भी हैं । इस उपन्यास में भी रेणु ने आँचलिक भाषा और शैली का प्रयोग भी किया है । डा.जनार्दन उपाध्याय के मतानुसार इस उपन्यास में " दो क्षेत्रों के लोगों के मध्य पाये जानेवाले भेद-भाव की सहज रूप से उत्पन्न भावात्मक एकता में उपन्यासकार रेणु ने बडी सफलता से पर्यवसित किया है".[1] ।

5. कितने चौराहे

यह रेणु का पाँचवाँ उपन्यास है । आज सब कहीं भ्रष्टाचार फैला है । व्यक्ति-सीमित स्वार्थपरता भी फैल गयी है । लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के समय, व्यक्तिगत सुख-दुख, स्वार्थ-लाभ को छोड कर अपने सिर पर कफन बाँध कर लडाई में भाग लिये हुए कुछ किशोरों की बलिदान-गाथा ही इस उपन्यास का कथाफलक है ।

मनमोहन गाँव का प्रतिभाशाली लडका है । वह स्कोलरशिप ले कर "अररिया कार्ट" शहर के स्कूल में भर्ती हो जाता है । मोहरिल मामा के घर में रह कर वह पढ़ाई शुरू कर देता है । पिता की मनमोहन को बडा वकील बनाने की अभिलाषा थी ।

---

1. हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च 1984, पृष्ठ 71.

बाद में मोहरिल मामा का घर छोड कर मनमोहन महाराज द्वारा संचालित "स्टुडेंट होम" में आ जाता है । वह महाराज के इस उपदेश को स्वीकार कर लेता है - "कभी झोंक में आकर तुम भी पढ़ना लिखना मत छोड बैठना ।
अभी सीधे बढ़े चलो । राह में छाँव में कहीं बैठना नहीं है । कितने-चौराहे आयेंगे । न दाएँ मुड़ना, न बाएँ-सीधे चले जाना"[1] । वह पढ़ाई छोडे बिना ही देशसेवा और स्वतंत्रता संग्राम में लगे रहता है । सन् बयालीस के भारत छोडो आंदोलन में भाग ले कर शहीद बने पांच मित्रों का अग्निसंस्कार करने के बाद मनमोहन गिरफ्तार हो जाता है । पांचसाल के बाद जेल से छूटने पर वह देहरादून जा कर स्वामी सच्चिदानंद बन जाता है । मनमोहन का भाई जगमोहन भी उन्नीस सौ पैंसठ में पाकिस्तान में होनेवाली लडाई में भाग ले कर वीरमृत्यु का वरण कर देता है ।

यह एक आदर्शभावना से प्रेरित औपन्यासिक कृति है । स्वार्थ के स्थान पर त्याग को उन्होंने महत्व दिया है ।

6. पलटू बाबू रोड

रेणु के इस छठे उपन्यास का प्रकाशन उन की मृत्यु के बाद हुआ है । इस उपन्यास के द्वारा रेणु ने, भारत में आजादी के बाद उभरते नवसमृद्ध वर्ग का चित्रण किया है जो भोगसाधना के द्वारा सत्ता और संपत्ति प्राप्त करते हैं । मानवीय भावनाओं और आदर्शों के अवमूल्यन ही "पलटू बाबू रोड़" का केन्द्रीय विषय है, यानी पलटू बाबू द्वारा प्रतीकित जीवन पद्धति ।

अमलेन्दुराय या पलटूबाबू संरक्षक का काम करते हैं, ठेके दिलाते हैं और बदले में आडंबर बनाये रखते हैं,पलटू बाबू की कोठी की कन्याओं और गृहणियों

---

1. फणीश्वर नाथ रेणु, कितने चौराहे, पृष्ठ 99.

को खराब करते हैं । वृद्धावस्था में वे कुन्तला नामक वकील युवती से विवाह कर लेते हैं । प्रथम रात्री में ही पलटू बाबू की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है ।

पलटू बाबू व्यापार को सफलता केलिए अपनी भतीजी बिजली के द्वारा मारवाडी छोगमल तथा मंत्री मुरली मनोहर को भी फँसाते हैं । पलटू बाबू किसी को कांग्रेस और किसी को समाजवादी पार्टी में शामिल कराकर, सब कहीं से लाभ उठाते रहते हैं । इस उपन्यास में शासन में फैले भ्रष्टाचार की कुत्सित रीति का वर्णन हुआ है । मानव मूल्य को नगण्य समझनेवाली पीढ़ी के द्वारा आज की अवनति का चित्र ही रेणु ने खींचा है ।

<u>रेखाचित्र</u>

<u>1. वनतुलसी की गंध</u>

यह रेणु के रेखाचित्रों का संग्रह है । इस का संपादन भरत यायावर ने किया है । "रेणु के रेखाचित्रों की अपनी विशिष्टता है । सब से अलग और अपनी तरह के अकेले"[1] । इस रेखाचित्र-संग्रह के तीन खंड हैं । पहले खंड में हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकार-यशपाल, अश्क, अज्ञेय, जैनेंद्र, त्रिलोचन आदियों पर लिखित रेखाचित्र हैं । बालकृष्ण सम (नेपाली), सुहैल अजीमावादी (उर्दू), रवीन्द्रनाथ ठाकुर (बंगाली) तथा सतीनाथ भादुडी (बंगाली) आदि साहित्यकारों पर रचित स्केच दूसरे भाग में हैं । तीसरे खंड में ऐसे स्केच हैं, जो साधारण पात्रों पर केन्द्रित हैं । शायद इस खंड के आधार पर ही इस पुस्तक को "वनतुलसी की गन्ध" नाम रखा गया है जो सब से उपेक्षित होने पर भी तीखे गंधवाली है । इन तीनों खंडों के प्रारंभ में भूमिका के रूप में भी एक स्केच है जिस का शीर्षक है "विषयांतर"[2]। यह "विषयांतर" रेणु के स्केचों की कुंजी है । इस में अपने गाँव के बूढ़े चौकीदार नन्हूत्तम तथा भिंभल मामा के रेखा चित्र भी हैं ।

---

1. डा.चन्द्रशेखर कर्ण, आज कल, एप्रैल, 86, पृष्ठ 4.
2. वन तुलसी की गंध, भूमिका

इस संग्रह के व्यक्तिपरक रेखाचित्रों में कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है । उदाहरण द्रष्टव्य है, कवि त्रिलोचन का शब्द चित्र रेणु ने यों किया है - "और, अगर कहीं कवि हो जाता तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन भर रहता । त्रिलोचन के सॉनेट के लिए ही मैं उसे "शब्दयोगी" कहता हूँ । उस के कुछ सॉनेट हद-अनहद की सीमा को लाँघकर, साखी, शबद, रमैनी की कोटि के हो गये हैं । त्रिलोचन ने बहुत कम लिखा है । अर्थात् बहुत अल्प "उत्पादन" किया है । किन्तु मेरे लिए त्रिलोचन का "होना" मात्र उन की रचनाओं से "अधिक" है[1]"। व्यक्तियों के बारे में लिखने के साथ ही साथ रेणु ने कई जगह अपनी विचार धारा को भी खुल कर प्रस्तुत किया है । रेणु के दृष्टि-बिन्दु का सूक्ष्मतम परिचय तथा उन की सहज व सरल जीवन दृष्टि का परिचय भी हमें इन रचनाओं से प्राप्त होता है ।

रेणु का संपर्क क्षेत्र बहुत विशाल है । उनका हिन्दीतर भाषा के कई लेखकों, कलाकारों, चिंतकों से गहरा परिचय था । इस ग्रन्थ के दूसरे खंड में नेपाल के बहुमुखी प्रतिभावाले कलाकार बालकृष्ण सम के बारे में लिखा है । प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार तथा रेणु का साहित्यिक गुरु सतीनाथ भादुड़ी के बारे में भी एक लंबा लेख है । उन के साथ के परिचय के बारे में वे लिखते हैं - "जेल में तीन साल और जेल के बाहर सोलह-सत्रह साल उन के साथ रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था । एक ही साथ पूर्णिया जिले के गाँव-गाँव में घूमे थे । उन की पुस्तकों के चरित्रों को देखा है, उन की बातों की साक्षी रहा हूँ - एक साथ अनेक सुख-दुख झेले हैं । बहुत घूमा हूँ उन के साथ"[2] । इसी प्रकार प्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार तथा नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बारे रेणु के शब्द इस प्रकार हैं - "रवीन्द्रनाथ की काव्य प्रतिभा, नाट्य-निर्माण क्षमता, दार्शनिक चिन्तन शक्ति सार्वभौमिक

---

1. वनतुलसी की गंध, पृष्ठ 60-61
2. वनतुलसी की गंध, पृष्ठ 118-9, 133.

धर्मानुभूति, औपन्यासिक अन्तर्दृष्टि, वैज्ञानिक कौतूहल-सब कुछ मिला कर उन का अखंड़ रूप हृदय और मन में आँकने की बात तो दूर-जहाँ वे भारत तथा पृथ्वी के सभी कवियों को पीछे छोड़ गये हैं, उस का ही संपूर्ण परिचय कितने बंगालियों ने पाया है ?"[1] तीसरे खंड़ में उन स्केचों को रखा गया है, जो साधारण पात्रों पर लिखित हैं । उन रेखाचित्रों से रेणु की समीक्षात्मक दृष्टि का अच्छा परिचय मिलता है ।

<u>व्यक्तिगत निबंध, संस्मरण</u>

<u>1. श्रुत अश्रुत पूर्व</u>

इस संग्रह में पन्द्रह निबंध हैं । इस के संपादक ने प्रस्तुत निबंधों के संबंध में यों लिखा है - "इस संग्रह की अधिकांश: रचनाएँ "श्रुत" है या "पूर्व अश्रुत" को श्रुत करने की कोशिश है"[2] । इस संग्रह के तीन लेख रेणु के बचपन और पढ़ाई से संबंधित हैं । ये उन के व्यक्तित्व पर झाँकी प्रस्तुत करते हैं, जो सरल दीखते हुए भी रेणु के जीवन में और व्यक्तित्व के संदर्भ में प्रमुख हैं । इन निबंधों के शीर्षक इस प्रकार हैं - "पाँडुलेख", "मेरा बचपन" तथा नेपाल - मेरी सानो आमाँ" । "श्रुत-अश्रुत पूर्व" नामक लेख में बंगाल की मुक्ति की लड़ाई का संस्करण है । अंतिम लेख हे कलकत्ता, मेरे कलकत्ता" का मूल बंगाली में है, जिस का अनुवाद ही इस ग्रन्थ में दिया गया है । रेणु की प्रसिद्ध कहानी "तीसरी कसम" सिनेमा बनाने के दौरान घटी घटनाओं के संस्मरण "तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन" में मिलता है । रेणु स्वयं पूछ रहे हैं कि "तटस्थ लेखक का जो काम होना चाहिए, मैंने निभाया या नहीं" ? "केवल रेणु की जाति के लेखक ही, जो रचना-धर्म की महत्ता से भली-प्रकार परिचित और प्रतिबद्ध होते हैं, यह प्रश्न उठाने का साहस कर सकते हैं"[3] । एक जगह पर रेणु नक्सलियों की तरफदारी करते दीख पड़ते हैं - "यह चेंज बैलट के ज़रिये नहीं हो सकता - यह बैलट जो है, अमजाल है । यह

---

1. वनतुलसी की गंध, पृष्ठ 80
2. श्रुत अश्रुत पूर्व, संपादकीय, पृष्ठ ।
3. श्री.कृष्णबिहारी मिश्र, रविवार, अप्रैल 13-19, 1986, पृष्ठ 73.

डमोक्रसी भी भ्रमजाल है"[1] । इस ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए श्यामसुन्दर घोष ने ठीक ही लिखा है कि   रेणु का मुल्यांकन रेणु के ढंग के अनुरूप ही करना होगा"[2] । उन के जीवन की सूक्ष्मरेखाओं की पहचान के लिए इस ग्रन्थ का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है ।

रिपोर्ताज

क ऋणजल धनजल

प्रस्तुत ग्रन्थ सन् उन्नीस सौ छासठ के बिहार के सूखे तथा सन् उन्नीस सौ पचहत्तर पाटना के आसपास की बाढ़-दो अभूतपूर्व दुर्घटनाओं पर लिखित ऐतिहासिक दस्तावेज है । इस की पूरी रूप-रेखा तय करने के साथ-साथ इस का नामकरण तक रेणु ने स्वंयं किया था। पन्द्रह-बीस पृष्ठ की भूमिका तैयार कर के प्रेस में पहुँचाने के पूर्व ही रेणु की मृत्यु हो गयी थी । यह पुस्तक दो भागों में विभक्त हैं - पहला -"बाढ़ 1975", दूसरा "सूखा 1966 बिहार " । इस में गरीब ग्रामीणों की कठिनाइयों का दुखदायी चित्रण है । साथ ही साथ ऐसी विषम परिस्थितियों के अवसर पर अपने लाभ उठाने वाले कुछ कार्यकर्ताओं पर तीखा व्यंग्य भी किया गया है[2] । रेणु के परदुख कातर हृदय का अनुभव हम इन वाक्यों में कर सकते हैं - "मैं ने जीवन में ऐसे लोगों की भीड़ कम देखी है, चलते-फिरते मुर्दे की टोली"[3] । बाढ़ से पीड़ित पाटना शहर का चित्रण बिंबात्मक ढंग से उन्होंने किया है - "यों पाटना शहर भी बीमार ही है । इस के एक बाह में हैजे की सुई का और दूसरी में टाइफायड़ के टीके का घाव हो गया है । पेट से "टेप" कर के जलोदर का पानी निकाला जा रहा है । आँखें जो कंजक्टिवाइटिस (जोय बाँग्ला) से लाल हुई थीं - तरह-तरह की नकली दवाओं के प्रयोग के कारण क्षीण ज्योति हो गयी है ।

---

1. समीक्षा, अप्रील-जून 1985; पृष्ठ 48.
2. ऋणजल धनजल, पृष्ठ 130, प्रथम संस्करण 1977.
3. वही, पृष्ठ 129.

कान को एकदम चौपट ही समझिए- हियरिंग एड से भी कोई फायदा नहीं । बस, "आइरन लंग्स" अर्थात् रिलीफ की साँस के भरोसे आस्पताल के बेड़ पर पड़ा हुआ किसी तरह "हुक-हुक" कर जी रहा है"[1] ।

इस संग्रह के प्रारंभ में "श्रद्धांजली" शीर्षक से दो लेख - "कवि की यात्रायें" रघुवीर सहाय तथा "समग्र मानवीय दृष्टि" निर्मल वर्मा - भी दिये गये हैं, जो बहुत ही उचित लगते हैं । इस रिपोर्ताज के प्रकाशन से हम रेणु के "रचना जगत की एक अद्भुत घटना के प्रमाण" तथा "भीतर से बाहर और बाहर से भीतर की अपनी मानस-यात्राओं का रचनात्मक अन्तस्सम्बन्ध देख पाये"[2] हैं । साथ ही साथ हम यह भी समझ सकते हैं कि "वह रेणु समकालीन हिन्दी साहित्य के संत लेखक - एक ऐसा व्यक्ति जो दुनिया की किसी चीज को त्याज्य और घृणास्पद नहीं मानता - हर जीवित तत्व में पवित्रता और सौन्दर्य और चमत्कार खोज लेता - थे"[3] ।

2. नेपाली क्रांतिकथा

सन् उन्नीस सौ पैंतीस से ले कर रेणु नेपाल राज्य तथा वहाँ के लोगों से निकट संबंध रखने लगे थे । नेपाल के विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला से परिचित होने पर उन का कोइराला परिवार से गहरा परिचय हो गया था । कोइराला परिवार साहित्य, राजनीति तथा कला की त्रिवेणी थी । वहाँ के आश्रमतुल्य जीवन में रेणु की सारी महत्वाकांक्षाओं को सहारा मिला था । कोइराला परिवार वालों के

---

1. ऋणजल धनजल, पृष्ठ 85.
2. वही , श्रद्धांजली, रघुवीर सहाय, पृष्ठ 12-13
3. ऋणजल धनजल, श्रद्धांजली, निर्मलवर्मा, पृष्ठ 16.

नेतृत्व में जब सन् उन्नीस सौ पचास में नेपाल को राणाशाही के विरुद्ध जो क्रांति शुरू हुई उस में रेणु ने भी सक्रिय रूप से भाग लिया । उन्होंने विद्रोही सेना का साथ दिया था । इस के बारे में विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला यों लिखते हैं - "वह रेणु स्वतंत्रता का प्रचंड योद्धा था । नेपाल में प्रजातंत्र के हमारे संघर्ष में उस ने हम से कंधे से कंधा मिलाया । उन्नीस सौ पचास में जो सशस्त्र क्रांति छेड़ी थी, उस में रेणु भी शामिल हो गया और मुक्ति सेना को फौजी वर्दी में मेरे साथ बन्दूक ले कर मोर्चे में कूद पडा । .....विराटनगर में स्थापित एक गैर कानूनी आकाशवाणी के संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की"[1] । इस क्रान्ति में रेणु ने अपना तन-मन-धन का बलिदान किया था । "नेपाल की मुक्ति केलिए रेणु ने अपने यौवन का बलिदान दिया और सक्रिय राजनीति में अपने को भूल कर जुटा रहा । इसी से वह टूट गया उस ने अपने शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया और बावन-तिरपन में वह राजनीति के क्षेत्र से एक थके हुए योद्धा के रूप में लौटा और मरने का इन्तजार करने लगा"[2] । इस क्रान्ति का जीता-जागता चित्र "नेपाली क्रान्तिकथा" में प्रस्तुत किया गया है ।

निष्कर्ष

रेणु का रचना-संसार अतिविस्तृत है । विभिन्न अनुभवों एवं विविध घटना क्रमों का वह एक दस्तावेज़ है । सब से बढ़ कर उन की रचनाओं का वह अंतरंग प्रवाह तेजदीप्त है जो करुणार्द्र और पूरी मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत है । रेणु

---

1. नेपाली क्रान्ति कथा की भूमिका - रेणु और मैं, पृष्ठ 7
2. फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ - भूमिका - कमलेश्वर, पृष्ठ 15.

की कहानियों के संबंध में लिखते हुए मधुरेश ने सूचित किया है कि "रेणु का महत्व उन की आँचलिकता में नहीं बल्कि आँचलिकता के अतिक्रमण में निहित है"[1] । यह कथन इसलिए सही है कि उस में उन के रचना-व्यक्तित्व की ओर संकेत है । आँचलिक दृष्टि रेणु के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है । उस को उन्होंने पूरी तरह से जिया और भोगा है । लेकिन रेणु की वास्तविक रचनादृष्टि व्यक्तित्व के उस अंग के प्रसार में है । आँचलिकता का अतिक्रमण इस अर्थ में सही है । मानवीयता के सरल धरातल पर उन का व्यक्तित्व चरितार्थता का अनुभव करता है ।

---

1. पूर्वग्रह - मार्च-अप्रैल 79, पृष्ठ 42

अध्याय तीन

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ

अध्याय-तीन

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ

भूमिका

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी के शीर्षस्थ आँचलिक कहानीकार हैं। उन की करीब पैंसठ कहानियाँ इस के साक्षी हैं । इन कहानियों में पचहत्तर प्रतिशत रचनायें आँचलिकता से युक्त हैं । हिन्दी के अधिकतर समीक्षक रेणु को आँचलिक कहानीकार मानते हैं[1] ।

रेणु के जीवन काल में उन की कहानियों के तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं -

1. ठुमरी (1958)
2. आदिम रात्री की महक (1967)
3. अग्निखोर (1973)

---

1. अ. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व- डा.लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण 1960, पृष्ठ 144.
   आ. नई कहानी की मूल संवेदना - डा.सुरेश सिन्हा, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 118.
   इ. हिन्दी कहानी: उद्भव और विकास - डा.सुरेश सिन्हा, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ 591.
   ई. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - डा. शिवप्रसाद सिंह, प्रथम संस्करण 1970, पृष्ठ 114.
   उ. प्रेमचंद:विरासत का सवाल - शिवकुमार मिश्र, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 26.
   ऊ. आलोचना, पूर्णांक 33, डा.धनंजयवर्मा का लेख, पृष्ठ 60.
   ऋ. हिन्दी गद्य - विकास और परंपरा - डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश, पृष्ठ 64.

इन के अलावा 1973 में प्रकाशित "मेरी प्रिय कहानियाँ" और राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित "रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ" नामक दो संग्रह निकल चुके हैं । इन दोनों संग्रहों में उपरोक्त मूल संग्रहों की कहानियाँ ही संकलित हैं । रेणु की मृत्यु के उपरान्त भारत यायावर ने उन की अप्रकाशित तथा कई पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों के दो और संग्रह भी निकाले हैं -

1. एक श्रावणी दोपहरी की धूप (1984)
2. अच्छे आदमी (1986)

अपने प्रथम कहानी संग्रह के बारे में, उस की भूमिका - "स्वरलिपि" - में रेणु ने लिखा है - "इस संग्रह में ठुमरी नाम की कोई कहानी नहीं ; सभी संयोजित कहानियाँ ठुमरी धर्मा है"[1] । संगीत में ठुमरी शास्त्रीय गीत नहीं, केवल " एक प्रकार का चलता गाना"[2]...... है । सैद्धान्तिकता विलगित, परन्तु प्रवाहमान रागालाप ही इन रचनाओं का मूलस्वर हों । उन्होंने लिखा है - "ठुमरी के कथागायक ने ऐसी चेष्टा की है । एकाधिक कथाओं में एक ही विशेष मुहूर्त को विभिन्न परिवेश में रख कर, रूपायित किया गया है"[3] । इस संग्रह की कहानियों को पढ़ने पर ऐसा लग सकता है कि उन्होंने जीवन के विशिष्ट क्षेत्रों के केन्द्र में मानवीयता की तलाश की है । "तीसरी कसम", "रसप्रिया", "ठेस", "लालपान की बेगम", "तीन बिन्दियाँ" आदि इन की प्रमुख कहानियाँ हैं । "ठुमरी" की समीक्षा करते हुए श्री.देवराज उपाध्याय ने लिखा है - रेणु ने प्रेमचन्द की परंपरा को अग्रसर किया है, वे आगे की कड़ी हैं"[4] । यथार्थवाद के रचनात्मक विकास के रूप में ही रेणु की रचनाओं को देखा गया है । श्री.सुवासकुमार लिखते हैं - जिन की अनेक विविधताओं के बावजूद उन का "अन्तर्मार्ग" एक ही है । उन की

---

1. ठुमरी, भूमिका, छठी आवृत्ति, पृष्ठ 2.
2. मानक शब्दकोश - भाग 2, प्रथमसंस्करण 1964, पृष्ठ 456
3. ठुमरी, भूमिका, छठी आवृत्ति, पृष्ठ 2
4. कल्पना - देवराज उपाध्याय, मई-जून 1961, पृष्ठ 121

कहानियों का यह सुरंगनुमा किन्तु स्वच्छ हवादार अन्तर्मार्ग हमें आदमी के भीतर के उनलक्ष-अलक्ष प्रकोष्ठों तक पहुँचाता है, जहाँ आदमीयता की सभी खिड़कियाँ और दरवाज़े स्वगत और आत्मवितरण के लिए खुल रहे हैं"[1] । संग्रह की सभी कहानियाँ ग्रामीण वातावरण से युक्त हैं ।

सन् 1967 में प्रकाशित चौदह कहानियों का संग्रह "आदिम रात्री की महक" रेणु का दूसरा संग्रह है । इस संग्रह की दो-तीन कहानियाँ ग्रामीणेतर वातावरण से संबद्ध हैं । "विघटन के क्षण", "ताँबे एकला चलो रे", "एक आदिम रात्री की महक", "जलवा", "पुरानी कहानी नया पाठ", "आत्मसाक्षी", "नैना जोगिन" आदि इस संग्रह की बहुचर्चित कहानियाँ हैं ।

रेणु की कहानियों का तीसरा संग्रह "अगिनखोर" 1973 में प्रकाशित है । इस संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं । इस की सात कहानियाँ शहरी जीवन पर आधारित हैं । शहरी जीवन को चित्रित करने में भी वे सफल निकले हैं, यद्यपि उन की आत्मीयता ग्रामीणता में रमी हुई है ।

भारत यायावर द्वारा संकलित कहानियों का पहला भाग 1984 में प्रकाशित हुआ । उस में 1945 से ले कर 1973 तक की रेणु की चौदह कहानियाँ हैं । इस संग्रह की कहानियों में "न मिटनेवाली भूख", "हाथ का जस बात का सच", "एक लोकगीत की विद्यापति", "एक श्रावणी दोपहरी की धूप", "संवदिया" आदि प्रमुख हैं । "इस संग्रह की कहानियों में मनवीय राग-चेतना और बदलते हुए युग-बोध की जो राग-सिक्त अभिव्यक्ति हुई है, उस में श्रावणी दोपहरी की ऊष्मा है । (इन कहानियों में) रेणु की ज़िंदादिली और उत्कृष्ट रचनाशीलता का अच्छा परिचय मिलता है"[2] ।

---

1. प्रतिमान-सुवास कुमार, अक्तूबर 1972, पृष्ठ 76
2. दस्तावेज - एक श्रावणी दोपहरी की धूप (रेणु) -समीक्षा, कृष्णचन्द लाल, जुलाई 1984, पृष्ठ 64, 67.

भारत यायावर द्वारा संकलित कहानियों का दूसरा संग्रह "अच्छे आदमी" शीर्षक से प्रकाशित है । यह सन् 1986 में प्रकाशित हुआ । इन सोलह कहानियों में से दो कहानियाँ "रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ" में तथा एक "अगिनखोर" संग्रह में पहले से ही प्रकाशित हैं । दो कहानियाँ -"जहाँ पमन को गमन नाहिं" तथा "नेपथ्य का अभिनेता" - मैथिली भाषा में रचित हैं, मैथिली और हिन्दी में दी हुई हैं । इन में से दो कथारिपोर्ताज भी हैं - "नये सबेरे की आशा" में पाटना में हुए किसान मार्च का वर्णन है । दूसरा "जीत का स्वाद" एक खेल कथा है[1] ।

वस्तुपरक विश्लेषण

रेणु की कहानियाँ एक सच्चे ग्रामीण व्यक्ति की आत्मीय अभिव्यक्ति है । हिन्दी कहानी में रेणु के साथ एक कथा परंपरा का विकास भी हुआ । रेणु की रचनाओं की सार्थकता का मूर्त पक्ष अगर उस नई परंपरा को ले कर है तो अमूर्त पक्ष मनवीयता की तलाश से संबद्ध है ।

रेणु का रचना संसार एक खास अर्थ में उतना विपुल नहीं है । अर्थात् अपने गाँव के आसपास के जीवन का रेखांकन है । लेकिन यही जीवन अपनी सामान्यता में विशाल भी है । गाँव के नये जीवन परिवेश से ले कर ग्रामीण परिस्थितियों तक का तथा पारंपरिकताओं में "रमी" ग्रामीण मानसिकता से ले कर कुछ ऐसे व्यक्तिचित्रों तक का विपुल आयाम भी इन का है । इस अर्थ में रेणु की रचनायें स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की विस्तृत रंगस्थली है ।

---

1. 24 डिसंबर 1959 को कानपुर में खेले गये भारत - आस्ट्रेलिया क्रिकेट माच के अंतिम दिन का वर्णन है ।

ग्रामीण जीवन का बदलता रूप

स्वातंत्र्योत्तर युग के ग्रामीण जीवन के बदलते हुए संदर्भ के विविध पक्ष रेणु की कहानियों में उभरे हैं । रेणु ने परोक्षत: सामाजिक और आर्थिक स्थितियों की ओर भी इशारा किया है, जिन का विश्लेषण करना अनिवार्य प्रतीत होता है ।

सामाजिक स्थिति

रेणु की कहानियों में गाँव में परिलक्षित सभी प्रकार के परिवर्तन संकेतित हैं । औद्योगिक आधुनिकीकरण और नगरों के क्रमगत विकास के कारण नगर जीवन का आकर्षण बराबर रहता है । शहरों की तरफ़ प्रस्थान करनेवाले गाँववालों के संबंध में रेणु की कहानियों में परामर्श मिलता है । यह बात ध्यनदेने योग्य है कि रेणु ने इस प्रवृत्ति को सहानुभूति के साथ देखा नहीं है । इस का कारण उन का ग्रामीण मोह ही है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद गाँवों से शहरों की तरफ़ जानेवालों की संख्या और बढ़ी है । यह बात आधुनिक ग्रामीण जीवन को एक बदली हुई अवस्था है । इस का प्रभाव ग्रामीण जीवन पर पड़ता है । परन्तु रेणु ने इस प्रवृत्ति के आघात के संबंध में कहानियों में संकेत नहीं दिया है । जब कि गाँव की बदली मानसिकता पर बलपूर्वक संकेत किया है "जहाँ पमन को गमन नाहिं" शीर्षक कहानी में इस अवस्था को रेणु ने भावुक दृष्टि से देखा है । तभी तो उन्हें लिखना पड़ा - मेरे गाँव में जो कोई "दुअछर" लिख लेता है, वह गाँव छोड कर बिदा हो जाता है".[1] । यही बात "विघटन के क्षण" नामक कहानी में शिकायत के रूप में प्रकट हुई है - गाँव के जवान-जहान लडके गाँव छोड कर भाग रहे हैं । पता नहीं शहर के पानी में क्या है कि जो एक बार एक घूँट भी पी लेता है । फिर गाँव का पानी हजम नहीं होता".[2] । इसी कहानी के एक दूसरे संदर्भ में शहर जानेवाले जवानों

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 86
2. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति 1982, पृष्ठ 14.

की मजबूरी की ओर भी रेणु ने संकेत किया है - "पाँच रुपये रोज की कमाई यहाँ किस काम में होगी, भला"?[1] गाँव में जो आर्थिक शोचनीयता है उस का जिक्र इस प्रकार के आनुषंगिक परामर्श के द्वारा हुआ है । पर अन्ततः रेणु की कहानी "विघटन के क्षण" ग्रामीण मोह की भावुक कहानी है । विजया नामक पात्र के माध्यम से इस भावुक मोह को उन्होंने चित्रित किया है । प्रस्तुत कहानी का यह एक अलग स्तर है । एक ओर गाँव से प्रस्थान करनेवालों के विरुद्ध शिकायत प्रकट होती है तो कहानी की विजया सब छोड-छाड कर गाँव वापस आती है । विजयादी शहर के पति के घर से "आँख मूँद कर अपने गाँव-मैके रानीडिह भाग गयी । अब उसे कोई मारे, पीटे या काटे-घंटों अपने गाँव पड़ी रहेगी । वह दूर से दिखाई पड़ता है, गाँव का बूढा इमली का पेड । वह रहा बाबा जीन-पीर का थान । वह रही चुरमुनियाँ ।

रानीडिह की ऊँची जमीन पर   लाल माटी वाले खेत में

अक्षत-सिन्दूर बिखरे हुए हैं । हजारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में कचर-पचर कर रही है । चुरमुनियाँ सचमुच पखेरू हो गयी । उड़ कर आयी है, खंजन की तरह । विजया की तलहथी पर एक नन्ही-सी जानवाली चिडिया आ कर बैठ गयी   चुरमुन रे माँ   । डाक्टर ने सुई गडायी या किसी ने छुरा थोंका दिया ? - कोई मारे या काटे विजया अपने गाँव से नहीं लौटेगी, अभी"[2] । गाँव की चुरमुनिया नामक आठ-नौ साल की लड़की विजया को बहुत प्यार करती है । अपनी प्यारी विजयादी के गाँव में लौट आने केलिए बेचारी चुरमुनिया घर के देवता-पितर, गाँव के देवता-बाबा से मनौती करती है । "गाँव खाली होने का, गाँव टूटने का जितना दुख-दर्द इस छोटी-सी चुरमुनिया को है, उतना और किसी को नहीं"[3]

---

1. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 14-15
2. आदि रात्री की महम, पृष्ठ 23-24
3. वही, पृष्ठ 17

दो वर्ष पटना में रिक्शा डेलिवरी का काम कर के लौटने वाला रामविलास, फिर शहर न लौटने का निर्णय कर लेता है । उस के अनुसार - "............घर की आधी रोटी भली । शहर में क्या है ? जितनी आमदनी होती है उस से चौगुना लहू खर्च होता है । गाँव आखिर गाँव है । मिसर जी ने बाकी करजे का एक पाई भी सूद नहीं लिया । शहर में इस तरह कोई सूद छोड़ होता ? पटना कहो या दिल्ली, जो मज़ा अपने गाँव में है, वह इन्द्रासन में भी न नहीं".[1] । अत: दोनों प्रकार की अवस्थाओं का चित्रण रेणु ने किया है । यह अवश्य है कि रेणु का मन गाँव में ही रमता है । जो भी हो, यह एक प्रकार का संघर्ष है जिसे स्वयं रेणु ने भी झेला हो, जिस की पर्याप्त सूचना इन कहानियों में मिलती है

रेणु ने बहुत कम कहानियों में ही सही, ग्रामजीवन के आर्थिक पक्ष को चित्रित किया है । इस के अन्तर्गत गरीब किसानों पर किये जानेवाले कई प्रकार के शोषण हैं प्राय: गाँवों में इस प्रकार के शोषण के विरुद्ध कुछ हो नहीं पाता है । इसलिए कहीं समझौतावादी रवैया अपनाया जाता है । यह उन के जीवन की बहुत बड़ी त्रासदी है विचित्र बात यह है कि बदले हुए गाँवों में भी शोषण के नये नये रूप उभरने लगे हैं । "सिर पंचमी का सगुन" नामक कहानी में शोषण का संदर्भ हमें प्राप्त होता है । "गाँव के चार-पाँच हल जोतनेवाले किसानों से अच्छी अवस्था है कालू कमार की । बड़े-बड़े किसान भी बेर-बखत पड़ने पर उस से कर्ज ले जाते हैं, कागज़ बना कर".[2] ।

---

1. आदि रात्री की महक, पृष्ठ 103.
2. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 86.

ऐसी हालत में कालु, सिंघाय नामक किसान से पिछले पाँच साल से खैन न मिला था । बदले में "कालू ने जाने कितनी बार बेगार करवायी है । दूध, कबूतर, केले, साग-सबजी का दाम कभी कालू या उस की बीबी ने नहीं दिया । कालू के लड़कों ने कितनी बार उस से पेड कटवाया है, तख्ती चीरते समय घंटों तक उस से आरा खिचवाया"[1] । इतने पर भी आज सिर पंचमी के दिन कालू ने सिंघाय का फाल टेढ़ा कर दिया है, खैन के बाकी के नाम पर । जहाँ थोडा सा अधिकार या संपत्ति पा जाती है वहाँ उस का दुरुपयोग होता है, शोषण शुरू होता है । बडे किसान अपनी हालत सुधरते ही छोटों पर अत्याचार करना शुरू करते हैं ।

कोसी मैया में बाढ़ के आने पर गाँववाले नाचते और वन्दना के गीत अवश्य गाते हैं । लेकिन बाढ़ के सामने उन का जीवन इतना तुच्छा है कि उन्हें जान हथेली पर रख कर भागना पड़ता है । ऐसी ऊँची जगहों की खोज में उन्हें जाना पड़ता था जहाँ बाढ़ का कोप न पड़ जायें । सरकार की ओर से जो रिलीफ़ कार्यक्रम होता है, उस का वर्णन रेणु ने "पुरानी कहानी नया पाठ" नामक कहानी में किया है । "तीस-बत्तीस दिन तक अपनी-अपनी जान केलिए वे आपस में लड़ते रहे । स्वार्थ सिद्धि केलिए उन्होंने एक दूसरे की गरदन पर हाथ रखे, दूसरे का हिस्सा हडपा, चोरी की, झगड़ा किया । सभी के दिल में शैतान का डेरा था"[1]।बाढ़ एक पुरानी कहानी के समान है । हर साल आती है । नये ग्रामीण वातावरण में बाढ़ का एक नया समाजशास्त्र है । शोषण का नया तंत्र गाँव में फैलता है । रिलीफ़ कार्यक्रम के कार्यकर्ता एक नया वर्ग हैं । उन की तरफ से शोषण का नया रूप उभरता है । बाढ़ की नाशोन्मुखता से कई गुना बडा है यह शोषण तंत्र जिस से अब ग्रामीण जन मुक्त नहीं है ।

---

1. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 80

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ विभाजन जो हुआ और कई लोग परिवार सहित या परिवार विहीन हो कर भारत आये और आसपास के गाँवों में बस गये । इन लोगों के आगमन से गाँव के जीवन पर भी नये प्रकार के परिवर्तन होते हैं । इस के कई कारण हैं । सरकार की ओर से इन्हें जो सहायता मिलती है, उस वे असंतृप्त हैं । लेकिन इन विस्थापितों को सहायता देते देख कर स्थानीय लोग ईर्ष्यालू बन जाते हैं । अत: इन लोगों में हमेशा कुछ मन मुटाव होता है । इस का संकेत रेणु ने अपनी कहानी "रोमांस शुन्य प्रेम कथा की भूमिका" में दिया गया है । बंगाल से आये शरणार्थियों को, बिहार के पूर्णिया जिले के गोडियार गाँव के पास, सरकार ने नवीनगर नामक गाँव बसाया । इस गाँव में बंगाल के एक ही गाँव के लोग रहते । जमीन्दार काशीनाथ चाटर्जी की बेटी पवित्रा को छोड कर बाकी सब पिछडी जाति के थे । पवित्रा के परिश्रम से शरणार्थियों केलिए एक स्कूल खोलने की अनुमति मिली । "कॉलोनी" में स्कूल खुलने की खबर गोडियार गाँव के सभी टोलों में तुरन्त पहुँच गयी । तलेवर गोढ़ी के दरबार में मुहलगुए और चापलूसों की भीड लगी हुई है । धनुष कटोले का मोहना दफादार चूँकि सरकारी आदमी है, इसलिए वह गैर कानूनी बातें कभी नहीं करता । उस ने कहा "गाँव के लोग दस साल से चिल्ला रहे हैं ! स्कूल ! स्कूल ! मगर स्कूल के नाम पर एक चटसाल भी नहीं खुला, अब तक । उधर देखिए पारिवस्थानियाँ सब को आये छ: महीने भी नहीं हुए मिडिल स्कूल खोलने का ऑडर पास हो गया । सभी ने एक ही साथ आवाज़ से कहा - क्या-आ-आ-आ-आ ? स्कू-ऊ-ऊ-ऊ-ल ? पारिवस्थानियाँ टोला में?"[1] इसी बात पर ईर्ष्यालू पं.रामचन्दर चौधरी बंगाली शरणार्थियों को केवल निठल्ले और कामचोर बता देते - "खैनी थूकते हुए बोले-यदि स्कूल का रुपया हजम कर के पारिवस्थानियाँ लोग नहीं भागे तो;

---

1. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 78

मेरा नाम रामचन्द्र चौधरी नहीं - कुकुरचंद चौधरी कहना । जितना निठल्ले और कामचोर लोग थे, सभी रिफ्यूजी हो गये"[1] । वस्तुत: विभाजन भारतीय इतिहास की घटना है । पूर्वी पाकिस्तान से आये शरणार्थियों और उन के आगमन के कारण पूर्णिया जिले के गाँवों में हुए किंचित परिवर्तनों की ओर ही तो रेणु हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं । गाँव पुराने गाँव नहीं रह गए हैं । समय के बदलने के साथ गाँवों की समस्यायें भी बदलती है । रेणु का चितेरा नए ग्रामीण जीवन को देख रहा है, पर वह कितना गहरा है, कितना सूक्ष्म है, इस का पता, ऐसी रचनाओं से होता है ।

गाँवों का बदलना, चाहे वह जिस किसी स्तर का हो, स्वाभाविक है । पुरानी मान्यताएँ बदल रही हैं । पुरानी आस्थायें टूट रही हैं । जहाँ तक गाँव छोड कर लोग चले जा रहे हैं, इस से संबंधित कहानियाँ भी रेणु ने लिखी हैं, जिस का परामर्श हो चुका है । पुरानी आस्थाओं के टूटने की बात रेणु ने कुछ कहानियों में की है । पुराने जमाने में समाज में कला एवं कलाकारों का अच्छा खासा स्थान था । लेकिन आज हालत बदल गयी है, नृत्त मंडलियों और गीत-गानों की परवाह कोई नहीं करता । यह भी एक नया ग्रामीण यथार्थ है । यद्यपि "रसप्रिया" नामक कहानी इस यथार्थ की कहानी नहीं है, फिर भी इस के पंचकौडी मृदंगिया के शब्दों में पुरानी आस्था के टूटने से जो वेदना उमड़ती है, उस का संकेत हमें मिलता है । मिरदंगिया कहता है - जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं । कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायेगी क्या ? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है । पाँच साल पहले तक लोगों

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 79

के दिल में हुलास बाकी था ।   पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरेभरे पौधों से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है । तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी - रस की डाली । वे गाने गाते थे विरहा, चाँचर, लगनी । खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का खयाल कर के गाये जाते थे । रिमझिम वर्षा में बारह-मासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी...".[1] । ये सब आजकल किसान भूल गये हैं । "पन्द्रह बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोडी पूछ हो जाती थी । शादीव्याह, यज्ञ-उपनैन, मुण्डन-छेदन आदि शुभ कार्यों में विद्यपतिया मण्डली की बुलाहट होती थी । पंचकौडी मिरदंगिया की मंडली ने, सहरसा और पूर्णिया जिले में काफी यश कमाया था".[2] । यह सूचित किया जा चुका है, "रसप्रिया" कहानी की मूल दृष्टि ग्रामीण आस्था के टूटने से संबद्ध नहीं है । लेकिन उस में रेणु ग्रामीण जीवन तथा उस के सामाजिक संदर्भ को रेखांकित करते चलते हैं ।

आर्थिक स्थिति

जैसे कि ऊपर बताया गया सामाजिक परिवर्तन की बुनियाद में आर्थिक स्थिति ही मुख्य है । परिवर्तन के दो पक्ष होते हैं । समय के बदलने के साथ गाँववालों की स्थिति कहीं सुधरी है और कहीं जैसी की तैसी रह गई है । उदाहरणार्थ "लाल पान की बेगम" नामक कहानी पर विचार किया जा सकता है । बिरजू की माँ लालपान की बेगम - को गाँव की साधारण औरतें ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं । क्योंकि उस

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 11
2. ठुमरी, पृष्ठ 10

की हालत आज कल बहुत सुधर गयी है - "दस मन पाट काँटा पर तौल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहाँ । उस को अपनी ज़मीन है । है किसी के पास एक धूर-जमीन भी अपनी इस गाँव में । जलेगें नहीं, तीन बीधे में धान लगा हुआ है, अगहनी । लोगों की दिखदीठ से बचे तब तो"[1] । बिरजू के बाप ने यह जमीन अपनी होशियारी से ही कमा ली थी । गाँव में सर्वे सेट्लमेण्ट होने लगा तो उस के हाकिम को प्रसन्न कर के दो-तीन बीधा ज़मीन अपनाने की कोशिश करने लगा । "बिरजू के बाप ने तो पहले ही कुर्मीटोली के एक-एक आदमी को समझा के कहा, "जिन्दगी भर मजूरी करते रह जाओगे । सर्वे का समय आ रहा है, लाठी कड़ी करों तो दो-चार बीघे जमीन हासिल कर सकते हो"[2] । गाँव के किसी ने उस का उपदेश नहीं सुना । अपने प्रयत्न से बिरजू के बाप को कुछ ज़मीन मिल गयी । उस की आँदनी से इस वर्ष दो बैल खरीदे । अब उस की हालत बेहतर है ।

इस का एक दूसरा पक्ष है, गरीबी के सामना करने की समस्या । जब गाँव में काम करते रहने भर से कुछ मिलता नहीं है तो ग्रामीण कामगर शहर की ओर प्रस्थान कर जाते हैं । "लालपान की बेगम" नामक कहानी में जिस सामाजिक परिवर्तन की सूचना मिलती है वह मामूली घटना नहीं है । दरअसल गाँव के लोग कई प्रकार की सुविधाओं से वंचित ही रह जाते हैं । शहर की तरफ उन का प्रस्थान अधिक यथार्थग्राही है, क्यों कि उस में उन की मज़बूरी है ।

सूखा और बाढ़ का विस्तार से वर्णन रेणु ने किया है । क्यों ? मौसम की इन दो प्रतिक्रियाओं का भार गरीब लोगों को ढोना पड़ता है । रेणु उस का सूक्ष्म वर्णन करते चलते हैं । मगर यह सहज वर्णन नहीं । इस में तकलीफों का सिलसिला स्पष्ट है । एक वर्णन यों है - "दूर दूर तक गेरूआ पानी-पानी-पानी । बीच बीच में टापुओं

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 148
2. वही

जैसे गाँव-घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग । वह वहाँ एक भैंस की लाश । डूबे हुए पाट और मकई के पौधों की फुनगियों के उस पार.......!"[1] । बिना किसी अतिरंजना के साथ रेणु ने बाढ़ की उस स्थिति का वर्णन किया है जो अपनी सामान्यता के बावजूद जीवन में गहन आर्थिक संकट से भी संबंधित है । "दो दिन से छप्परों, पेड़ों और टीलों पर बैठे पानी से घिरे भूखे-प्यासे और असहाय लोगों ने देखा-नावें आ रही हैं."[2] । सहायता देने के लिए राजनीतिक दलों के लोग आ रहे हैं, फिर सरकारी सहायता में छीना-झपटी होती है । कितना ज़रूरतमन्दों केलिए मिल जाता है, यह अलग बात है । बाढ़ बढ़ते समय निस्सहाय हो कर गाँववालों को कुछ दिन कहीं "कैंप" में शरणार्थियों के रूप में रहना पड़ता है । लौटने पर - "धरती पर भरे हुए पशुओं की लाशें - कंकाल । हरी-भरी फसलों के सड़ते हुए पौधे । दुर्गंध-दुर्गंध-गन्ध । कीचड-केंचुएँ-कीडे-धरती की सड़ी हुई लाश"[3] के बीच से गुज़रते हुए आना पड़ते हैं । शरणार्थियों के कैंप से "..... सिर झुकाये बचे-खुचे पशुओं को हाँकते, बाल-बच्चों, मुर्गे-मुर्गियों, बकरे-बकरियों को गाडियों, बँहगियों और पीठ पर लाद कर अपने-अपने गाँव की ओर जा रहे है, जहाँ न उन की मड़ैया साबित है और न खेतों में एक चुटकी फसल । किन्तु उन के पैर तेज़ी से बढ़ रहे हैं । तीस-बत्तीस दिन के रोखवास के बाद उन के दिलों में अपने बेघर गाँव और कीचड से भरे खेतों केलिए प्यार की बाढ़ आ गयी है."[4] । फिर वही सिलसिला शुरू होता है । महाजनों या ज़मीन्दारों से कर्ज लेने की नौबत और बाद में कर्ज न चुका जाने की विवशता ।

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 71.
2. वही पृष्ठ 76.
3. वही पृष्ठ 79.
4. वही

कुछ रचनाओं में रेणु ने लोगों की सुधरी हुई अवस्था का जिक्र किया है, जो कि समय के परिवर्तन के कारण संभव हुआ है । "भित्तिचित्र की मयूरी" नामक कहानी में पन्नादेवी - फुलपतिया की माँ - नामक ग्रामीण कलाकार की सुधरी हुई हालत का चित्रण किया गया है । पहले वह "जिनगी" भर शुभलाभ और "परब-पाबन" के समय गाँव के लोगों की "भित" पर "फूल-पत्ती" के बीच देवी-देवता लोगों की "मूरती" बनाती"[1] थी । उस के पति की मृत्यु के बाद "........ गाँव भर के किसानों के घर में कूट-पीस कर गोदी की इकलौती संतान को पालती रही"[2] । पाटना से आनेवाले एक व्यापारी के कारण उस की कला का प्रचार हो गया और ग्रामीण कलाकारों को सरकारी सहायता के तहत प्राप्त होने वाला अनुदान उसे प्राप्त होने लगा । अब "पाटना और दिल्ली और कलकत्ता से चुनी हुई लडकियाँ तीन महीने की ट्रेनिंग लेने"[3] आने लगी हैं । तब उसे पाँच सौ से हजार रुपये तक मिलने लगे । यह भी परिवर्तन का एक पक्ष है ।

भूमि समस्या

छोटे-बड़े किसानों के बीच खेती को ले कर हमेशा टकराहट होती रहती है । लेकिन जो छोटे हैं उन पर ही आखिरकार आघात पड़ता है । यह सदियों से चली आने वाली पद्धति है । ऐसी एक घटना का चित्रण रेणु ने अपनी कहानी "ताबे एकला चले रे" में यों प्रस्तुत किया है - "परसों ही बेचारे अजबलाल दास क मवेशी की कुरकी करवायी है, तनुकसाह ने । बेईमानी से तीन सौ रुपये का चिट्ठा बनाया । फिर नालिश कर के चुपचाप "डगरी" करवा ली थी"[4] । भूमि से

---

1. अग्निखोर पृष्ठ 43
2. वही पृष्ठ 45
3. वही पृष्ठ 51
4. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति, पृष्ठ 32

संबंधित नया नियम आता है, सुन कर जमीन्दार और छोटे-बड़े किसान, बटैदारों को दूर करने का परिश्रम करते हैं - "बिहार विधान सभा में, ज़मीन-हदबन्दी के सवाल पर विचार होना अभी बाकी है । लेकिन, जिस दिन यह प्रस्ताव सदन में पेश हुआ उस से दो माह पहले से ही छोटे-बड़े किसानों के मन में पाप समा गया । जिले के किसान और गरीब बंटाईदारों में कई जगह गुत्थागुत्थी भी हो गयी - यह तो किसी से छिपा नहीं हैं"[1] । और अंत में जमीन्दार और बड़े किसानों ने निर्णय किया - "इस बार बंटाई करनेवाले फसल काट कर नहीं ले जायें ....[2] । इस निर्णय से "गाँव के सभी बंटाईदार अवाक हो गये - यह क्या है ? अचानक कौन नया कानून पास हो गया ? अंधेरा है । जुलुम है । ।"[3] किसान " हरबे-हथियार, लुटेरे जन-मज़दूरों और लठैतों के साथ जमीन पर आ धमके" । तो "बंटाईदारों के टोले में कुहराम शुरू हुआ । औरतें छाती पीटने लगी । बच्चे बिलखने लगे । कुत्ते रोने लगे । उधर खेत में लुटेरे जन-मज़दूर और लठैतों की सम्मिलित जय ध्वनि हुई - हो हो हो हो - हो हो हो हो"[4] । रेणु ने कहानी में घटित घटना का वर्णन चित्रात्मक ढ़ंग से किया है जिस की यथास्थिति अनुल्लंघनीय है और वही उस की सच्चाई की सबूत भी है ।

ग्रामीण व्यक्ति चित्र

ग्रामांचल का बृहद् एवं लहरिल अंकन रेणु की कहानियों में हुआ है । उस में गाँव के प्रवाहमान जीवन का वर्णन भी उन्होंने किया है । बदलाव के हर स्पन्दन का

---

1. आदिम रात्री की महक; नवीन आवृत्ति, पृष्ठ 33
2. वही पृष्ठ 34
3. वही पृष्ठ 35
4. वही पृष्ठ 35-36

उन्होंने संकेत किया है । इस के साथ उन की बहुतेरी रचनायें व्यक्ति चरित्रों पर आधारित हैं । लेकिन ये व्यक्ति चरित्र ग्रामीण अस्मिता के अभिन्न अंग हैं । इन चरित्रों से इसलिए हम घुलमिल जाते हैं कि इन में ग्रामीण एहसास का तीखा बोध है । ये ग्रामीण व्यक्ति सरल, सीधे-सादे हैं । एक ओर उन का अपना अलग व्यक्तित्व हैं तो कभी ये एक वर्गीय गृहातुरता के संवाहक होते हैं । रेणु ने ऐसे पात्रों की इसलिए परिकल्पना की है कि जिन के माध्यम से ग्रामांचलीयता की सूक्ष्म पृष्ठभूमि खुल जाएँ।उदाहरणार्थ तीसरी कसम" के हिरामन और हीराबाई, "एक आदिम रात्री की महक" का करमा, "दिल बहादुर द्वा ' य " का दिलबहादुर, "विघटन के क्षण का विजया, "लाल पान की बेगम" की बिरजू की माँ, "आत्मसाक्षी" का गणपत आदि । रेणु की ऐसी कहानियों के बारे में राजेन्द्र यादव ने सही लिखा है -
कभी लगता है रेणु मूलत: करुणा का कथाकार हैं, और कभी लगता है वह कठोर वास्तविकता का निष्करुण, तटस्थ चितेरा हैं । बहरहाल यह सच है कि अन्य ग्रामीण अंचल पर लिखनेवालों की तरह न तो उस का यथार्थ जीवन-शून्य स्मृतियों का लेखा है और न शैली का दयनीय उलझाव अंचल की हर सिकुडन और जटिलता को उस ने बडी सुलझी निगाहों और महीन कलम से आँका है"[1] ।

"तीसरी कसम" रेणु की बहुचर्चित कहानी है । आँचलिक कहानी की मानक रचना के रूप में ही यह कहानी पढ़ी जाती है । इस कहानी में जिस प्रकार रेणु ने हिरामन को चित्रित किया है वही मुख्य है । हिरामन के व्यक्तिचित्र के साथ-साथ एक पूरा गाँव कहानी में जीवंत हो उठा है । अत: यह एक पूर्ण आँचलिक रचना है । "तीसरी कसम" का गाडीवान हिरामन चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा युवक है । यद्यपि उस की शादी बचपन में ही हो गयी तो भी गौने के पहले ही दुलहिन मर गयी ।

---

1. नये कहानीकार - फणीश्वरनाथ रेणु - श्रेष्ठ कहानियाँ, सं. राजेन्द्र यादव, संपादकीय - प्रमुख स्वर, द्वितीय संस्करण 1966, पृष्ठ 6.

अब वह गाड़ीवान है । अपनी गाड़ी में माल लाद कर कई दिनों तक इधर उधर जाना पड़ता है । मेले में भाग लेने केलिए जायें तो हफ्तों तक घर से दूर रहना पड़ता है । हिरामन इस बार फारबिसगंज शहर के मेले में भाग लेने केलिए "मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बननेवाली हीराबाई"[1] को अपनी गाड़ी में ले जाता है । दोनों परिचित होता है । परिचय बढ़ता भी है । हीराबाई को लगा कि हिरामन सचमुच हीरा है । हिरामन भी हीराबाई के अपरूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । लेकिन सच्चेप्रेम के "विषय में दोनों का जीवन रेगिस्तान है । जीवन में प्रेम का कैसा स्रोत दबा पड़ा है और थोड़ा-सा अवसर पाते ही वह कितने वेग से एक दूसरे की ओर दौड़ पड़ता है - यह इस कहानी की मार्मिक भूमि है । यह कथा किताबी प्रेमकथाओं से कितनी भिन्न और अनोखी है । जितनी अनोखी है, उतनी ही वास्तविक"[2] । हिन्दी कथा साहित्य में बहुत कम ही, हिरामन और हीराबाई जैसे पात्रों का चित्रण उपलब्ध है । दोनों सब तरफ़ से उपेक्षित है । इसलिए दोनों आपस में आकृष्ट होते हैं, आपस में पहचान लेते हैं - "सब तरफ से उपेक्षित हिरामन जैसा व्यक्ति हृदय से और आचरण से कितना सुन्दर है, इसके पहचान की निगाह हीराबाई के पास ही हो सकती है जो खुद बेपहचानी, अनात्मीय समाज तंत्र में फालतू और निरर्थक है"[3] । इतनी सुन्दरी और कलानिपुणा होने पर भी हीराबाई को अपना कहने केलिए कोई नहीं था । लेकिन

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 109.
2. आलोचना, जनवरी-मार्च 1984, पृष्ठ 21.
3. आलोचना, जनवरी-मार्च 1984, पृष्ठ 21.

हीरामन को मिलने पर वह नौटंकी कंपनी के बहादुर से कहती है - "देखो बहादुर ! इस को पहचान लो । यह मेरा हीरामन है । समझे"[1] ! इस प्रकार रेणु ने इस कहानी के द्वारा दो निरीह ग्रामीण पात्रों को प्रस्तुत किया है । डा.मानेजर पाण्डेय ने रेणु के ग्रामीण व्यक्ति चरित्रों के बारे में यों लिखा है - "रेणु की सभी महत्वपूर्ण कहानियों में एक या दो अविस्मरणीय चरित्र हैं । ....."तीसरी कसम" के हिरामन, "रसप्रिया" के पंचकौडी, "संवदिया" के हरगोविंद और "ठेस" के सिरचन के व्यक्तित्व में विभिन्न जीवन संदर्भों में मानवीयता के अलग-अलग रूप और पक्ष व्यक्त हुए हैं."[2] । डा.धनंजयवर्मा ने भी इस कहानी के बारे में यों लिखा है - "अपने परिवेश के भीतर चरित्रों की छोटी से छोटी प्रतिक्रिया को एक संपृक्त आत्मीयता और रागात्मक तल्लीनता से रेणु ने व्यंजना प्रदान की है"[3] ।"तीसरी कसम" की केंद्रिय स्थिति गाँव की सामाजिक या आर्थिक कठिनाई नहीं है । इस में ग्रामीणता का विकास हुआ है । ग्रामीणता में रमा हुआ एक मन इस कहानी में है । "तीसरी कसम" की रचनात्मक खूबी यही है ।

"आदिम रात्री की महक" का करमा रेणु की श्रेष्ठ परिकल्पना है । रेलवे के गोपाल बाबू को असाम की कुलीगाडी से "बिना" "बिल्टी-रसीद" का लावारिस माल"[4] के जैसे करमा मिला था । उन्होंने रेलवे आस्पताल से उसे छुडा कर अपने साथ

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण 1981, पृष्ठ 131.
2. मूल्यांकन - 1, 1985, रेणु की कहानियाँ मानवीयता की तलाश का कलात्मक प्रयास, पृष्ठ 17.
3. नयी कहानी दशा, दिशा, संभावना - धनंजयवर्मा, पृष्ठ 94.
4. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति 1982, पृष्ठ 43.

रखा । वे जहाँ जाते करमा को भी साथ ले जाते, जो खाते करमा भी खाता । इसी प्रकार पाँच वर्ष तक गोपाल बाबू के साथ रहा । बाद में कई रेलवे बाबुओं के साथ वह रहा ! वह किसी से मजूरी नहीं लेता । एक बार कटिहार स्टेशन के रिलिफिया बाबू के साथ रहते समय करमा पास के गाँव गया । संयोगवश वहाँ के एक परिवार से उस का परिचय हो गया । प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा "एक दिन फिर आना", "अपना ही घर समझना"[1] आदि शब्दों से प्रभावित करमा कटिहार स्टेशन को छोड़ने को तैयार नहीं हो जाता है । करमा में जीवन की कामना पहलीबार फूट पड़ी है । उसे पारिवारिक स्नेह मिला था, उसे अनाथत्व का एहसास भी नहीं हुआ था । लेकिन फिर भी करमा को वह स्नेही परिवार को नहीं मिला, जिस का उस के जीवन में एकदम अभाव था । करमा रेणु की स्नेहोष्मल परिकल्पना है ।

"आत्मसाक्षी" नामक कहानी का गणपत पैंतीस साल से अपने तन-मन-धन से पार्टी की सेवा कर रहा था । "परिवार, जाति, धर्म, समाज, सरकार और हर अन्याय, अत्याचार से हमेशा लड़नेवाला लड़ाकू गणपत", "पैंतीस साल तक साधु-सन्यासियों की तरह लंगोट बंद रह कर, जीभ-मुँह और मन में लगाम लगा कर उस ने पब्लिक का काम किया । किसी का एक तिनका न चुराया, न पार्टी का एक पैसा गोलमाल किया । माँ-बाप, भाई-बहन, गाँव-समाज और परबतिया से भी बढ़ कर पार्टी और पार्टी के झंडे को प्यार किया"[2] । गणपत के अथक परिश्रम से बिसनपुर में एक शहीद-किसान आश्रम खोल दिया गया । वहाँ उस ने दिनरात जन-सेवा की । जिलेभर में बस यही एक क्षेत्र है, जहाँ से पार्टी का उम्मीदवार विधान सभा के लिए विजयी हुआ - सिर्फ इसी आश्रम की

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति 1982, पृष्ठ 54.
2. वही पृष्ठ 159.

महिमा है"[1] गणपत अपने पार्टी केलिए मर रहा था और पार्टी के लोग एक दम विपरीत दिशा में बढ़ रहे थे। पार्टी के लोग आदर्श के शब्द गुंजायमान करेंगे - जैसे जाति और धर्म आदि अफीम जैसा है। लेकिन करते क्या है ? लीडर लोग अपने बच्चे-बच्चियों की शादी किसी दूसरी जाति में नहीं करते ? लडके की शादी में कॉमरेड रामलगन सरमा ने पच्चीस हज़ार रूपये तिलक में गिनवा लिया। तुम्हारे लीडरों के बच्चे दार्जिलिंग और देहरादून में पढ़ते हैं। तुम्हारे सेक्रटरी की बीबी काँग्रेसी-मिनिस्टर होने केलिए जाति की गुटबन्दी करती है। तुम्हारे तूफानजी ने मिल-मालिक से मिल कर मज़दूरों के गर्दन पर छुरी ...."[2]। इस प्रकार बडे नेताओं ने पार्टी से लाभ उठाया तो प्रांतीय नेताओं ने भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार लाभ उठाया था। लेकिन पिछले पैंतीस वर्षों से, जमीन्दारों के मार-पीट सह कर किसान-मज़दूरों की सेवा करनेवाला गनपत अब भी एक झोंपडी में ही रहता है। पार्टी की अवनति और दुस्थिति को देख कर गनपत को लगता है कि "चाँद सूरज में भी दरार पड़ गयी है। दुनिया की हर चीज़ आज दो भागों में बँटी हुई-सी लगती है। हर आदमी के दो टुकड़े, दो मुखड़े और दरका हुआ दिल"[3]। इस से बढ़ कर उस पर झूठा आरोप भी लगाया जाता है - "आखिर आप को किस काम केलिए रखा गया ? चंदा वसूल कर पेट पालने केलिए सिर्फ"[4] । तथा "....... सुधीर महतो बोला "गनपतजी, आप डूब कर पानी पीते हैं, और समझते हैं कि बात छिपी हुई है। पार्टी आफीस दिन-रात बेवा मुसम्मात के साथ इश्कबाजी

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 155.
2. वही पृष्ठ 160.
3. वही पृष्ठ 159.
4. वही पृष्ठ 156.

करने केलिए नहीं बना है"[1] । एक सच्चे देशसेवक केलिए यही बहुत था । बेचारा गनपत बीमारी के कारण बेहोश होकर सात दिनों तक आसपताल में पड़ा रहता है । तब "सात दिन में गाँव का बच्चा-बच्चा आ कर देख गया, कुशल पूछ गया । मगर कोई "साथी कामरेड" झाँको मारकर देखने केलिए भी नहीं आया । कल बलराम बाबू आकर कह गये हैं कि गनपत को अपने घर ले जाओं । पार्टी आफीस खाली कर दो । उस को बरखास्त कर दिया गया है"[2] । राजनीतिक दलबन्दियों में जो नैतिक पतन दृष्टिगत होता है और जिस प्रकार आदर्शवादी व्यक्ति उस पतन का शिकार बनता है, उस का चित्रण प्रस्तुत कहानी में हुआ है । ऐसे अनेकों संदर्भ कहानी में दिए गये हैं । अब "सभी "नये कामरेड" गनपत को तीन कौडी का आदमी भी नहीं समझते हैं"[3] । कहानी के अंत में गनपत को अपनी धरती से भी बाहर जाना पड़ता है । वह बिलकुल थक जाता है और हताश एवं निरालंब-सा हो जाता है । "आत्मसाक्षी" में रेणु इस सत्य को रेखांकित करते हैं कि जनआन्दोलन की बागडोर गलत हाथों में है, गनपत जैसे समर्पित कार्यकर्ता अपमानित होते हैं, नेता जब चाहे पार्टी में दरार डाल देते हैं"[4] । "राजनीति के विषय को ले कर हिन्दी में लिखी गयी कतिपय श्रेष्ठ कहानियों में से हैं, जो राजनीति और व्यक्ति के परस्पर संघर्षों को सही परिप्रेक्ष्य में रख कर देखने का प्रयास करती है । राजनीतिक पार्टियाँ दरअसल ऊपरी सिद्धान्तों के खोल के भीतर नंगे निजी स्वार्थों के ताश फेंटती रही है और जो व्यक्ति सिद्धान्त

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 157.
2. वही पृष्ठ 159.
3. वही पृष्ठ 152.
4. हिन्दी कहानी एक अन्तर्यात्रा, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 101.

केलिए पार्टियों के आगे अपने जीवन को समर्पित कर देता है वह अकेला पड़ जाता है, उसे कोई नहीं पूछता । इसी पीड़ा को "आत्मसाक्षी" में शब्द दिया गया है"[1] । डा.मानेजर पाँड़िय ने इस कहानी के बारे में यों लिखा है - इस में कम्युनिस्ट पार्टी की कार्य-पद्धति, 1964 के विभाजन, नेताओं के चरित्र और इन सब के बीच एक सामान्य कार्य कर्ता की दुर्गति दिखाई गयी है"[2] ।

"दिलबहादुर दा'य" में एक पहाड़ी आदमी का चित्र प्रस्तुत किया गया है । वह भोला-भाला है । अपने भोलेपन के कारण उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । दिलबहादुर नेपाली युवक है । वह अकेले ही नौकरी की खोज में कटिहार आया । रात में वहाँ के धर्मशाला के ओसारे के पास सोया था । बड़े सवेरे ही दारोग ने उस से पूछा - "रेल लैन काटा" ? दिलबहादुर ने जवाब दिया - "हाँ, जो गबनी में भी काटा, यहाँ भी काटेगा"[3] । बेचारे दिलबहादूर ने पैसे दे कर टिकट काटने की बात कही । लेकिन पुलीसवालों ने समझा कि उस ने रेलवे लैन काटा है । भोलापन के कारण जेल में उसे जाना पड़ा । पुलीस कैदियों को व्यर्थ ही मारने लगी तो दिलबहादुर सहने को तैयार नहीं होता । निरपराध होने के कारण उस में पुलीस के खिलाफ़ लड़ने की शक्ति आती है - "दिलबहादुर एक सिपाही को दबोच कर छाती पर बैठा मुँह से "फियों-फियों छियों-छियों" आवाज़ कर रहा है । महाभारत में दुशासन की छाती पर बैठ कर खून पीते हुए भीम की तस्वीर की तरह"[4] । सच कहने से उसे जेल की सजा भुगतनी पड़ी तो भी वह सत्य के खिलाफ लड़ता है । अपनी रक्षा करने की बात उसे रोकती नहीं है । रेणु के व्यक्तिचित्रों में

---

1. प्रतिमान, अक्तूबर 1972, सुवास कुमार, पृष्ठ 84.
2. मूल्यांकन-1, 1985, पृष्ठ 13-14.
3. अच्छे आदमी, पृष्ठ 105-6.
4. अच्छे आदमी, पृष्ठ 104.

दिलबहादुर का प्रमुख स्थान इसलिए है कि अन्य प्रमुख पात्रों के समान उस के चरित्र में निरीहता और सीधापन है ।

"जलवा" नामक कहानी का फातिमादि भी अपने वर्ग का प्रतिनिधि है । सन् 1930 से ले कर 1947 तक फातिमादि ने देश की स्वाधीनता केलिए अपना तन-मन भूल कर लड़ाई लड़ी थी । लेकिन देश के स्वतंत्र हो जाने पर राजनीतिक यंत्रणा इसे मरोड़ती है । सच्चे देशसेवकों का कोई स्थान नहीं । देश आज कल अवसर वादी राजनीतिज्ञों के हाथ में है । देश की भलाई केलिए प्रयत्न करने के कारण "मुस्लिम लीग वाले उन (फातिमादि) के कट्टर विरोधी हो गये । उन लोगों ने उन्हें काफ़ी बेइज्ज़त किया तथा एसिड़ की शीशी भी उन पर उँड़ेल दी, क्योंकि वह एक कर्तव्यनिष्ठ महिला थी".[1] । "इस में सांप्रदायिक और अवसरवादी राजनीतिक महौले में देशभक्त और ईमानदार राजनीतिक व्यक्ति की बिडंबनापूर्ण स्थिति दिखाई गई है जो स्वतंत्रता के बाद की राजनीति की एक आम बात बन गई है".[2] । आज के देश की हालत "फातिमादि जैसी अंधविश्वासों और रूढियों से लोहा लेती हुई तमतमायी हुई पवित्र औरत को भी काला बुर्का ओढ़ने को मजबूर करती है".[3] । इस प्रकार रेणु ने अपनी कहानियों में अनेकों ग्रामीण व्यक्तियों को प्रस्तुत किया है, जिन्हें हम कभी भी भूल न सकते हैं ।

<u>ग्रामीण महिलाएँ</u>

जिन रचनाओं में रेणु ने ग्रामीण महिलाओं का चित्रण किया है, वह विशेष उल्लेखनीय है । उन्होंने स्त्री पात्रों को उनकी सभी अच्छाइयों और बुराइयों सहित चित्रित किया है । सामान्य रीति से इसे यथार्थवादी दृष्टि का परिणाम कहा

---

1. हिन्दी कहानी के विकास में बिहार का योगदान - चन्द्रभूषण मिश्र, प्रथम संस्करण 1985, पृष्ठ 205.
2. मूल्यांकन-1, 1985, पृष्ठ 14.
3. प्रतिमान, अक्तूबर 1972, पृष्ठ 83-84.

जा सकता है । लेकिन यथास्थिति से ओत-प्रोत उन की प्रस्तुतियों में जीवन की आद्रता छलक जाती है । अनपढ़ महिलाओं की उस "विशिष्ट" संसार को रेणु ने चित्रित किया, भले ही वह पूर्णिया और आसपास के इलाके से संबंधित हो, लेकिन रेणु ने उसे सार्वजनीन प्रासंगिकता प्रदान की है। उन की ग्रामीण स्त्री पात्रों में "तीसरी कसम" की ही हीराबाई, "तीर्थोदक" की लल्लू की माँ, "विघटन के क्षण" की विजया और चुरमुनिया, "लालपान की बेगम" की बिरजू की माँ", "नैना जोगिन" की रतनी आदि प्रमुख हैं ।

"तीसरी कसम" की हीराबाई रेणु के सब से अविस्मरणीय पात्रों में एक है । वह देखने में सुन्दर है और कुशल नर्तकी भी है। लेकिन समाज की व्यवस्था के कारण उसे अपमान और अनात्मीयता ही मिली है । आत्मीयता की भूख उस में बनी रहती है । अभी तक उसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जिसे वह अपना कह सके । लेकिन इस बार के बैलगाडी की यात्रा के अवसर पर सब तरफ़ से हिरामन के हृदय को, आचरण को वह पहचान सकी । हीराबाई हिरामन को "मीता" कह कर पुकारती है । हिरामन को उस्ताद के रूप में भी स्वीकार करती है - "तुम तो उस्ताद हो मीता", "पीजिए गुरूजी", "तुम मेरे उस्ताद हो । हमारे शास्त्र में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरू और एक राग सिखाने वाला भी उस्ताद"[1] । फारबिसगंज पहुँचने पर नौटंकी कंपनी में "मेरा हिरामन" कह कर हीराबाई, हिरामन का पहचान देती है । हिरामन और साथियों को नाच देखने केलिए पाँच पास तैयार करा के दिलाती है । इस के अलावा पाकिटकाट लोगों से बचने केलिए हीराबाई ने "हिरामन के कपड़े की काली थैली को उस ने अपने चमड़े के बक्स में बन्द कर दिया"[2] ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 123-24.

2. वही पृष्ठ 132.

इस प्रकार अपने नाच से दर्शकों की सेवा तथा हिरामन को पहचानने पर उस केलिए भी थोड़ी सेवा करने में हीराबाई तत्पर है । इन सब के बावजूद वह आत्मीय संबंध टूट जाता है । लेकिन हीराबाई-हिरामन के संबंध को जिस आर्द्रता और सहजता से दिखाया गया है, वही मुख्य है ।

रेणु ने अन्य कुछ रचनाओं में लल्लू की माँ जैसी सेवारत नारियों का चित्रण किया है । वह गंगा-स्नान करने को, अपने जीवन की सब से बड़ी अभिलाषा की पूर्ति केलिए, गाँव से तीर्थ यात्रियों के साथ बनारस पहुँच जाती है । वह अचानक बीमार पड़ जाती है । अतः वह दुखी है । काशी के ब्राह्मण भोला जी पंडे की बेटी अन्नू दिन-रात्र उस की सेवा करती है । उस के साथ आये लोग बीमारी की छूत से डर कर दूर रहते हैं । तो भी उन की आवश्यकता की पूर्ति केलिए सौ रुपये का नोट डोमन को दे कर कह देती है - "कागज़ पर सभी का नाम लिख कर अस्सी रुपये बाँट दो, बाकी बीस वापस कर देना, मुझे" । लेकिन डोमन ...." अब तो एक बार झाँक कर पूछ जाता है, बस ...."[1] । आदर्श नारी चित्रण की भावना से प्रेरित हो कर रेणु ने ऐसे पात्रों की सृष्टि नहीं की है । "तीर्थोदक" ऐसी एक कहानी है जिस में ग्रामीणों की तीर्थयात्रा का विशद वर्णन कर के रेणु ने ग्रामीणों की रंग-ढंग का इतना सूक्ष्म चित्र भी प्रस्तुत किया है । उन के बीच यह लल्लू की माँ भी है । आदर्श स्थापना की इच्छित भावना से प्रेरित न होने के कारण लल्लू की माँ की हरकत को, उसके विशाल मन को ग्रामीण परिवेश में समझने तथा आत्मसात करने में हमें दिक्कत होती नहीं है ।

पवित्रा एक सेवारत, कार्यकुशल युवती है । वह अपने गाँव और गाँववालों को बेहद प्रेम करती है । पवित्रा बंगाल की थी । उस का पिता काशीनाथ चाटर्जी एक ज़मीन्दार था । स्वतंत्रता के बाद के सांप्रदायिक झगडे में उस के पिता की हत्या हो

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण, 1981, पृष्ठ 46.

गई थी, सारी संपत्ति लूटी गयी थी। गाँव के अन्य पिछड़े जातिवालों के साथ युवति पवित्रा भी भाग कर बिहार के शरणार्थियों के कैंप में आ गयी है। भारत सरकार ने जमापुर गाँव के विस्थापितों केलिए पूर्णिया जिले के गोड़ियार गाँव के पास नवीनगर नामक गाँव बसाया। पवित्रा कॉलनी वासियों की सुख-सुविधा जुटाने में व्यस्त होती है। वहाँ एक नयी पाठशाला शुरू करने में लगी रहती है। कुछ लोग उसे बुरी नज़र से देखते हैं। फिर भी उस तरफ़ वह बिलकुल ध्यान नहीं देती। कॉलनी वासियों केलिए कई प्रकार के लघु-उद्योग भी पवित्रा ने शुरू किये। वह नवीनगर के लोगों को यह समझाने की चेष्टा में लगी है कि "जमानपुर और नवीनगर एक ही है ....".[1] अपने दुख और दर्द को भूल कर वह बहुत कुछ करती है और काफ़ी सफल भी होती है। पवित्रा के चित्रण में आदर्श स्थापन की भावना काम कर रही है। लेकिन शरणार्थी कैंपों का जीवन, विस्थापितों की कठिनाइयों एवं उन की समस्याओं एवं स्थानीय लोगों की समस्याओं से युक्त इस कहानी का परिवेश इतना जीवन्त है कि पवित्रा के चरित्र में दर्शाया गया आदर्श उतना आरोपित नहीं लगता है।

आदर्श पात्रों के समान ही यथार्थ पात्रों की परिकल्पना भी रेणु ने की है। ऐसे पात्र एकदम ग्रामीण नज़र आते हैं। ऐसी रचनाओं में रेणु उन पात्रों को बेबाक वास्तविकता के साथ चित्रित करते हैं। यह तो सही है कि ऐसी कहानियों में पात्र ही प्रमुख होते हैं। लेकिन इन पात्रों के माध्यम से पूरे गाँव को, गाँव की जीवन्तता को भी वे चित्रित करते जाते हैं। बिरजू की माँ भी बहुत ही कार्यकुशल औरत है। ज़मीन अपनाने केलिए क्या किया जाना चाहिए, वह अच्छी तरह जानती है - "सर्वे का समय आ रहा है, लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीघे ज़मीन हासिल कर सकते हैं".[2] अपने पति को दिन-रात प्रेरणा देती रही। इस कार्यकुशलता के कारण ही

---

1. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 83.
2. ठुमरी, छठा संस्करण 1981, पृष्ठ 148.

अब वे तीन बीघा ज़मीन अपना सके, जहाँ उस गाँव में किसी के पास एक धूर ज़मीन भी नहीं। वह दो बच्चों की माँ हो कर भी जस-की-तस है। उस का घरवाला उस की बात में रहता है। इस वर्ष उस के तीन बीघे ज़मीन में धान लगा हुआ है। इस बार बहुत अच्छे फसल का लक्षण भी है। इन सब से बिरजू की माँ को गाँव की दूसरी औरतें ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं। बिरजू की माँ उस का भी बड़ी कुशलता से तथा अपने जीभ के बल पर सामना करती है। इस वर्ष उस के पति ने दो बैल खरीदे। तब बिरजू की माँ ने बैलगाडी पर चढ़ कर बलरामपुर की नाच देखने जाने की बात सभी से कही। आज नाच का दिन है। गाड़ी पर चढ़ कर नाच देखने जाने केलिए वह तैयार बैठी। पर शाम तक पति गाड़ी ले कर नहीं आया। पानी भरने केलिए आयी पडोसिन मखनी फुआ, जंगी की पुतोहू आदियों ने उस की हँसी उड़ाती है। तब बिरजू की माँ उन से लडती है। बाद में पति से क्रुद्ध हो कर वह लेट जाती है। थोडी ही देर में पति गाडी लेकर आया। साथ ही अपने खेत के धान की पंचसीस भी तोड लाया था। "डिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मैल टूट हो गया"[1]। जल्दी ही जिस मखनी फुआ से शाम को झगडा हुआ था, उस की खुशामद कर के, उसे तमाखू दे कर अपने घर में लिटा दिया। गाडी में बिरजू के बाप, बिरजू, बेटी चम्पिया तथा बिरजू की माँ निकल पडे। जाते वक्त, रास्ते पर जंगी की पुतोहू, जिस से शाम को झगडे-लडाई हो गयी थी, उसे भी अपने साथ ले जाने को तैयार होती है - "ज़रा जंगी से पूछो न, उस की पुतोहू नाच देखने चली गयी क्या"[2]? जंगी की पुतोहू, लरेना की बीवी, राधे की बेटी सुनरी आदियों को अपने साथ गाडी में ले जाने को बिरजू की माँ आतुर होती है। बिरजू की माँ पर केन्द्रित यह कहानी एक ग्रामीण महिला के भोलेपन की भी कहानी है। वह कार्यकुशल और व्यावहारिक भी है। वह लडाकू है, पर स्नेहशील भी। रेणु ने इन कुछ पात्रों के माध्यम से स्थानीय संदर्भ को उभारा है।

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण 1981, पृष्ठ 151.
2. ठुमरी, पृष्ठ 154.

"अच्छे आदमी" नामक कहानी की सीता इतनी कार्य कुशल है कि चाय की दूकान चला कर वह आर्थिक उन्नति कर लेती है । इस कहानी में बहुतों का वर्णन कहानीकार ने किया है, जिस से कहानी में ग्राम प्रान्तर सजीव हो उठा है । रिटयार्ड दफादार सन्तोखी सिंध का वर्णन यों है -"सन्तोखी सिंघ को इस इलाके के सभी नामी-गरामी लोग जानते हैं । जाति-वालों ने मिल कर बूढ़े सन्तोखी सिंघ को बहिष्कृत कर दिया है । जाति का हुक्का-पानी छूटे, मगर सन्तोखी सिंघ उजागिर की दूकान की चाय और पकौडे को नहीं छोड़ सकता । और अब तो पकौडे चाय खा-पीकर ही वह सारा दिन रहता है । न आगे नाथ न पीछे पगहा"[1] । नये दारोगा साहब तथा जोगबनी के लाला का बेटा यों प्रस्तुत है - "यह नये दारोगा साहब भी हीरा आदमी है । कह रहे थे, इसपी साहब तुम्हारे पकौडे की खूब तारीफ करते हैं । और, जोगबनी के लाला के बेटे के जीभ तो पकौडे के नाम से ही "पनिया" जाती है । बारह बजे रात में, गाडी पर दारोगा साहेब के साथ आता है और चुराकर पकौडे खाता है । वैष्णव लाला, जिस के चौके में व्याज नहीं चढ़ता है कभी, वह उजागिर की दूकान में बैठ कर कैसे खा सकता है व्याजवाले पकौडे"[2] ? इस प्रकार इस कहानी में गाँव के भिन्न भिन्न वर्ग के कई पात्रों को रेणु ने प्रस्तुत किया है ।

"नैना जोगिन" कहानी की रतनी, माधोबाबू के भैंसवार की बेटी है । अश्लील और घिनौने अफवाहों के कारण रतनी की बदनामी बचपन से ही फैल गयी थी । इसलिए उसे कोई दूल्हा नहीं मिला । एक दिन शाम को उस के घर आये युवक को उस की माता ने धमकी दे कर रतनी से शादी करा दी । महीनों के बाद भी रतनी

---

1. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 57.
2. वही पृष्ठ 66.

गाभिन न होने पर एक रात को वह "...... घर से निकल कर चिल्लाने लगी, "पूछो कोई इस से कि इतना दूध, मलाई, दही, मांस-मछली, कबूतर तिसपर "धात-पुष्टाई" दवा, तो अलान-टेकान खा कर भी जिस "मर्द" को आधी पहर रात को हँफनी शुरू हो, उस को क्या कहा जाय ? लोग "दोख" देते हैं, मेरे कोख को, कि रतनी बाँझ है। निमकहराम और किस को कहते हैं"[1] ? अपनी इच्छा पूर्ति केलिए रतनी अपने पति के साथ माधोबाबू के आदेशानुसार शहर जा कर जाँच-पडताल कराती है। पाँच दिनों के बाद उस का घरवाला गाँव लौटने की बात कहता है तो रतनी कहती है - "हाँ, जब आ गयी हूँम तो यहाँ हो चाहे लेहेरिया सराय, चाहे कलकत्ता...... जहाँ से हो, कोख तो भर के लौटूँगी, गाँव तुम को जाना हो तो माधोबाबू टिकस काट कर गाडी में बैठा देंगे। मैं किस मुँह से लौटूँगी खाली ...."[2]। एक साधारण औरत को ही इस कहानी में रेणु ने चित्रित किया है।

ग्रामीण कलाकारों से संबंधित कहानियाँ

रेणु में जो कलाकार है वह संवेदनशील है। अपने आस पास की दुनिया को देखता है, परखता है। यह कलाकार निपट ग्रामीण है, आँचलिक है। रेणु में निहित इस कलाकार ने अपने ग्रामीण सहजातीय कलाकारों को भी खोज निकाला है। गाँव में भटकते मृदंगिया, कारीगर जैसे कलाकारों के जीवन के भीतरी क्षण को उन्होंने देखा। कभी उन की कसक भरी जिन्दगी को, कभी उन की आत्मीयता को उस कलाकार ने चित्रित किया है। इस श्रेणी में आनेवाली रेणु की रचनायें निम्नांकित है - "रसप्रिया" "ठेस", "तीन बिन्दियाँ", "भित्तिचित्र की मयूरी", "एक रंगबाज गाँव की भूमिका", "कपडघर", "एक लोकगीत की विद्यापति" तथा "टौंटीनयन का खेल" आदि। इन

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति 1982, पृष्ठ 169.
2. वही पृष्ठ 175.

कहानियों के कलाकार अपनी विशिष्टताओं के साथ ही अवतरित हुए हैं ।

"रसप्रिया" रेणु की बहुत प्रसिद्ध कहानी है । पंचकौड़ी मिरदंगिया इस का प्रमुख पात्र है । पहले वह विद्यापति का पद गा कर नाचा करता तथा मृदंग-बजाता था । उस की एक प्रसिद्ध विद्यापति नाच की मंड़ली थी । ज़माना बदलने पर मंड़ली टूट गयी । मिरदंगिया की ऊँगली भी टेढ़ी हो गयी । अब वह अधपागल सा हो गया है । इधर उधर के बाबुओं के घरों में घूम-फिर कर मृदंग बजाता गाता है । उस की बुरी हालत का चित्र रेणु के यों किया है - "एक युग से वह गले में मृदंग लटका कर भीख माँग रहा है - धा-तिंग, धा-तिंग"[1] । रसप्रिया गानेवाले मोहना नामक चरवाहे को देखने पर मिरदंगिया बहुत खुश होता है । क्यों कि वह कई वर्षों से "विदापत नाच में नाचनेवाले "नटुआ" का अनुसंधान"[2] कर रहा था । उस केलिए सब प्रकार से योग्य लड़के को पा कर मिरदंगिया का कला-हृदय बहुत प्रसन्न होता है । लड़के की बीमारी की इलाज केलिए, अपनी वर्षों की कमायी उसे दे देता है । मोहना रमपतिया का लड़का है । अपने गुरु की बेटी रमपतिया के साथ पंचकौडी ने प्रेम किया था । लेकिन उस ने बाद में रमपतिया को धोखा भी दिया । कहानी में ऐसा एक मोड उपस्थित होता है जब पंच कौडी की उँगली टेढी होती है और उस की मंडली टूट जाती है और वह अधपागल-सा होता है । मोहना ने बाँसुरी में सुरीला संगीत उसे गाके सुनाया था । पंचकौडी अब मृदंग बजाने में असमर्थ है । वह पहले मृदंग पर उँगलियाँ थिरक-थिरक करके रसप्रिया का राग उतार सकता था ।

रमपतिया की स्मृतियाँ, मोहना का सुन्दर सुडौल रूप आदि मिला कर पंचकौडी के सामने जीवन का एक घनीभूत क्षण साकार हो उठता है । लेकिन वह घनीभूत क्षण इच्छा के स्तर पर ही साकार हो सकता है । वह वस्तुत: प्राप्त नहीं हो सकता । जीवन के अज्ञात क्षण ने उस के जीवन को नष्ट किया । लेकिन वह अपने कलाकार व्यक्तित्व को नष्ट नहीं करने देता है । मोहना को सब कुछ देते समय

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण, पृष्ठ 17.
2. वही पृष्ठ 12.

रसप्रिया के आलापन की मधुर स्मृतियाँ उस के मन में मंडराती हैं । श्रीकान्त वर्मा इस कहानी को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रेमकहानी के रूप में देखना चाहते हैं - "हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रेमकहानियाँ भी, यह अजीब बात है, रेणु ने ही लिखी है । क्लासिकल ऊँचाइयों तक पहुँचने वाली महान प्रेम कथा, "रसप्रिया" जैसी समूची लोककथा, लोक कविता, लोक संगीत का निचोड है, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि इस एक कहानी में "प्रेमानुभव" को व्यक्त करने केलिए लोक कलाएँ संगठित और जीवित हो उठी हैं"[1] । इस प्रकार इस कहानी के द्वारा "बिहार के ग्रामांचलों के जन जीवन में बसी लोक संस्कृति की विविधता और उदात्त मानवीयता का बोध हो जाता है"[2] । इन्हीं कारणों से ही "रसप्रिया" एक ठोस आँचलिक रचना बन जाती है ।

"ठेस" कहानी का सिरचन भी एक ग्रामीण कारीगर है । केवल पेट भर भोजन मिलने पर ही वह रंगीन शीतलपाटी, चिक, कुश की आसनी आदि बनाता है । भोजन में कुछ कमी होने पर वह क्षमा कर सकता है । लेकिन "बात में ज़रा भी झाल वह नहीं बरदाश्त कर सकता"[3] । एक बार छोटी बहन मानू के पति के घर ले जाने केलिए सिरचन चिक बना रहा था । चाची की जीभसे जो दो-चार शब्द निकले, जिस से सिरचन के आत्मसम्मान को ठेस लगी । जल्दी ही वह अपना सामान बटोर कर वहाँ से निकल जाता है । बेचारी मानू इस पर दुखी होती है । ठेस उस के हृदय को लगी थी । पर वह सरल चित्तवाला है । वह मानु को बहुत प्यार करता था । आत्मसम्मान की भावना उस के हृदय से दूर हो जाती है । कोमल भावना जाग उठती है । आत्मसम्मान और स्नेह के बीच में संघर्ष होता है और स्नेह जीत जाता है । वह मानू केलिए सभी चीज़ें एक दम तैयार कर लेता है । मानु पति के घर जाने को

---

1. प्रसंग - श्रीकान्त वर्मा, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 275.
2. मूल्यांकन-1, 1985, मानेजर पाँड़ेय, पृष्ठ 12.
3. ठुमरी, पृष्ठ 52.

तैयार हो कर रेलगाड़ी में बैठी है । तब रेलगाड़ी की खिड़की के पास खड़े हो कर सिरचन ने मानू से कहा, "यह मेरी ओर से है । सब चीज़ है दीदी । शीतल पाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी, कुश की"[1] । सिरचन का कारुणिक चित्र ही रेणु ने उक्त कहानी के अंत में चित्रित किया है । सिरचन का परिवेश उस के कलाकार व्यक्तित्व को महत्व देनेवाला नहीं है । सिरचन स्नेह का भूखा है । वह स्नेह को महत्व देनेवाला भी है । इसलिए वह अपने व्यक्तित्व की परवाह किये बिना ही स्नेह केलिए जीता है ।

गरीबी के बावजूद रुपये-पैसे के लोभ-मोह में पड़ कर गाँव छोड़ने को "भित्ति चित्र की मयूरी" नामक कहानी की पन्नादेवी नामक ग्रामीण कलाकार तथा उन की बेटी फुलपतिया तैयार नहीं होती हैं । इस कारण उस कला को सीखने केलिए दूर-दूर के शहरों से भी लड़कियाँ आ कर उस गाँव में रहने को तैयार हो जाती हैं । इस कला के व्यापार तथा उस से लाभ उठाने केलिए आनेवालों को भी माँ-बेटी पराजित कर देती है । अपनी कला को पुनः जीवित रखने में वे समर्थ निकलती हैं ।

"एक लोकगीत की विद्यापति" नामक कहानी में कनचीर गाँव के विद्यापति नाच-संघ की कोइला नामक विधवा युवती की कथा है । "टौंटीनायन का खेल" में कीर्तन करने वाले सुमरचंद और आरती देवी की कथा है । मूर्तियाँ बनानेवाला दुर्गालाल तथा मूर्तियों को आँख देनेवाली बसू की बहन तथा उस से संबंधित अंधविश्वासों की कहानी "कपडघर" में है । "तीन बिन्दियाँ" नामक कहानी में कला के सच्चे उपासक हराधन मिश्री का चित्र है । वह गरीबी में भी अपने आत्मसम्मान को महत्व देता है । उस के आदेशानुसार गीताली ठुमरी गायन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लेती है ।

उपरोक्त सूचित कहानियों में ग्रामीण कलाकारों की जीवन-गाथा अंकित है। इन ग्रामीण कलाकारों के जीवन चित्रण से जिस लोक चेतना का आभास प्राप्त होता है, वही मुख्य है। लोकचेतना की सूक्ष्मधारा ही रेणु की कहानियों को सर्वोच्च बना देती है। पंचकौडी मिरदंगिया या सिरचन सिर्फ व्यक्ति नहीं बल्कि व्यापक लोक चेतना के एहसास के प्रतिनिधि हैं। इन कलाकारों के माध्यम से रेणु ने आंचलिक वातावरण सुदृढ़ बना दिया है। जातीय स्मृतियों और उन की आस्थाओं में ही वातावरण का सृजन किया गया है। अतः वह आरोपित नहीं है।

राजनीतिक संदर्भ और व्यंग्यात्मकता

रेणु की कहानियों में गाँववालों का जीवन ही आलेखित मिलता है। लेकिन उन्होंने ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को समेट लिया है। उन में से एक पहलू के रूप में उन के राजनीतिक संदर्भों से युक्त कहानियों को देखना उचित लगता है। बिना किसी घुमाव-फिराव के साथ उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता के आतंककारी रूप को व्यक्त किया है। स्वार्थ और लोभ ने मनुष्य को क्या बना दिया है, ये ही उन की इस श्रेणी के अन्तर्गत आनेयोग्य कहानी की विषयवस्तु है। परन्तु एक प्रमुख बात इन कहानियों की यह भी है कि उन में उन्होंने ग्रामीण परिप्रेक्ष्य को ही प्रमुखता दी है। तथाकथित राजनीतिज्ञों के अत्याचार के शिकार ये ही निरीह ग्रामीण लोग हैं।

"पुरानी कहानी नया पाठ" नामक कहानी का पात्र जन सेवक शर्मा पिछले चुनाव में पराजित उम्मीदवार है। कोसी नदी में बाढ़ हो जाने के कारण रामपुर कस्बे तथा आस-पास के कई गाँव पानी में डूब गये। शर्मा यही चाहता है कि निस्सहाय, असहाय लोगों की दर्दनाक हालत का लाभ उठाएँ। बाढ़ की खबर तक को अपने नाम पर अखबारों में छपवाने का परिश्रम करता है। अखबार के स्थानीय संवाददाता

से शर्मा कहता है - आज ही यह "स्टेटमेंट" चला जाये । वक्तव्य सब से पहले मेरा छपना चाहिए"[1] । संवाददाता को अपने वश में कर के वह यही चाहता है कि अधिकारी वर्ग यह समझें कि बहुत सारे गाँव बाढ़-ग्रस्त हैं । वह इसलिए ऐसी खबर देना चाहता है । क्योंकि "ज्यादा गाँव बाढ़ग्रस्त होगा तो रिलीफ़ भी ज्यादा-ज्यादा मिलेगा, इस इलाके को । अपने क्षेत्र की भलाई केलिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ । और झूठ क्यों ? भगवान ने चाहा तो कल तक दो सौ गाँव जलमग्न हो जा सकते हैं"[2] । जनसेवक, लोगों के सेवार्थ निकला हुआ है । "दो दिन से छप्परों, पेड़ों और टीलों पर बैठे पानी से घिरे भूखे-प्यासे और असहाय लोगों"[3] को सहायता पहुँचाने केलिए सरकार से नावें मिलीं । तो जनसेवकजी क्या सेवा करता है - "अगली नाव पर जनसेवकजी स्वयं सवार है । उन की नाव पर "माइक फिट" है । वे दूर से ही अपनी भूमिका बाँध रहे हैं - "भाइयो, हालाँकि पिछले चुनाव में आप लोग मुझे वोट नहीं दिया । फिर भी आप लोगों के संकट की सूचना पाते ही मैं ने मुख्य मंत्री, सिंचाई मंत्री, खाद्यमंत्री........"। पिछली नाव पर विरोधी दल के कार्यकर्ता थे । उन्होंने एक स्वर से विरोध-किया - "यह अन्याय है । आप सरकारी नाव और सरकारी सहायता का इस्तेमाल गलत तरीके से पार्टी के प्रचार में ...."[4] । लोगों को बाँटने केलिए दी गयी चीज़ों को भी वह हज़म कर लेता है - "पचास टिन किरोसन, दस बोरे आटा और चावल के साथ रिलीफ की नाव पनार नदी के बीच धारा में डूब गयी । लापता हो गयी"[5] । गरीबों की

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन आवृत्ति 1982, पृष्ठ 72.
2. वही पृष्ठ 73.
3. वही पृष्ठ 76.
4. वही पृष्ठ 76.
5. वही पृष्ठ 79.

मजबूरी का लाभ उठाने में भी वह तैयार होता है । गाँव भर में उस का जयजयाकार हो रहा है । यह एक यथार्थवादी रचना है और इस का सृजनगत लक्ष्य भी साफ़ है । राजनीति के क्षेत्र में मूल्यों का जो विघटन हो गया है वह इस हद तक बढ़ गया है कि मनुष्य के मन में पाशविकता बैठ गई है । निश्चित ढ़ंग से कुछ कहा नहीं जा सकता है । यही आज की हमारी राजनीति की दुखदायी स्थिति है । रेणु ने इसे अपने गाँव के परिवेश में प्रस्तुत किया है । गाँव के लोग बाढ़ और सूखा जैसे प्राकृतिक कोप के शिकार बनते हैं । प्राकृतिक कोप से उन की मुक्ति नहीं है । लेकिन उस से बढ़ कर अपने ही सहजातीय व्यक्तियों की लूट के भी उन्हें शिकार होना पड़ता है । शर्मा एक ऐसा राजनीतिज्ञ है कि जो लोगों की आँखों में धूल झोंककर सिर्फ अपना पथ ठीक कर लेना चाहता है । प्रस्तुत कहानी में अमानुषिकता के साकार व्यक्ति के रूप में शर्मा को प्रस्तुत किया गया है । उस की अमानुषिक व्यक्तित्व की छाया तले तडपते ग्रामीण लोग हैं और वे ही रेणु की रचना का प्रेरणा बिन्दु हैं ।

"प्रतिनिधि चिट्ठियाँ" राजनीतिक जीवन के बढ़ते आतंक के रूप को स्पष्ट करने वाली कहानी है । रामपुर तथा मदारगंज के लोगों ने चुनाव में छोटनबाबू का विरोध किया और वोट नहीं दिया । उस का बदला लेने केलिए उन गाँवों के "अगुआ" लोगों के लिस्ट बनाने का वह आदेश देता है । साथ ही साथ उन से बदला लेने केलिए इन "गावों में फिर से "खटपटी" लगा देने"[1] को भी वह तैयार हो जाता है । उसके गुप्त आदेश के अनुसार वहाँ सांप्रदायिक दंग शुरू होता है । दंगाग्रस्त क्षेत्र से लौट कर प्रेस प्रतिनिधियों को वह वक्तव्य देता है कि "ऐसे दंगे के पीछे मुट्ठी-भर स्वार्थी व्यक्तियों के हाथ होते हैं ....".[2] । छोटन बाबू का आतंक

---

1. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 138.
2. वही पृष्ठ 144.

यहाँ भी समाप्त होता नहीं है । वह घूसखोरी, रिश्वत आदि का साकार रूप है । व्यक्तिगत संबंधों तक की लापरवाही कर के अपने स्वार्थ केलिए वह सब कुछ करता है । राजनीति में जिस प्रकार मानवीय मूल्यों को अनदेखा किया जाता है, उस का एक ज्वलंत उदाहरण है प्रस्तुत कहानी ।

"आत्मसाक्षी" नामक कहानी के गणपत के बारे में विचार किया जा चुका है । यह कहानी राजनीतिक व्यंग्य के अन्तर्गत चर्चा करने योग्य भी है । आज की व्यावहारिक राजनीति में स्वार्थहीन व्यक्तियों केलिए, कोई स्थान नहीं है । "आत्मसाक्षी" इसी सच्चाई की कहानी है ।

"जलवा" कहानी में राजनीतिक यंत्रणाओं की कहानी है । दलबंदियों से अलग होने पर व्यक्ति को क्या कुछ नहीं सहना पड़ता है, प्रस्तुत कहानी यही चित्र उभारती है । राजनीतिक यंत्रणा व्यक्ति को कितना अधिक मरोड देती है, "जलवा" नामक कहानी एक अच्छा उदाहरण है ।

"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" नामक कहानी में भी एम.एल.ए. चन्द्रनकुमार के बुरे करतूतों का चित्रण है । एक बार बिसनपुर गाँव में स्वतंत्रता की लडाई में भाग लेने वालों की खोज के नाम पर रेड हो गया था । जमीन्दार पारस चौधरी की सूचना के अनुसार ही रेड हुआ था । रेड में गाँव के कई घरों को जला दिया । मिलटरी वालों ने माताओं, बहनों और पत्नियों को बेइज्ज़त कर दिया था । कईयों को बहुत अधिक पीडायें सहनी पड़ी थी । क्रांग्रेस का नेता चंदनकुमार को कोई हानि नहीं पहुँची । इसलिए वह इस अन्याय के खिलाफ़ कुछ नहीं करता है । लेकिन क्रान्तिकारियों ने रेड के बाद लौटते मिलटरी वालों में से कइयों को मार डाला । रेड केलिए मिलटरी को सूचना देने के कारण से क्रान्तिकारियों ने राधेपुर के जमीन्दार के ".......रुपये, गहना-जेवर लूटने के बाद पारस चौधरी को गोली से उडा दिया"[1] । भारत को स्वतंत्रता के बाद चंदनकुमार एम.एल.ए. बन गया । वह अब उस धोखेबाज़ पारस

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 135.

चौधरी को "प्रमुख कांग्रेस भक्त"[1] बता देता है । अपने भाई-बंधुओं, माताओं-बहनों पर अत्याचार करानेवाला पारस चौधरी कांग्रेस का भक्त बन जाता है । उस ने ही स्वतंत्रता की लडाई में लगे हुए लोगों के खिलाफ रेड के लिए मिलटरी को सूचना भी दी थी । लेकिन आज वह देशभक्त है । हमारी राजनीति की तह में जो दरारें पड़ी है, उसे ठीक नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत कहानी में इस विरोधाभास का भरपूर संकेत है ।

आत्म कथात्मक पक्ष से संबंधित कहानियाँ

रेणु की "रेखायें वृत्तचक्र", "अपनी कथा", "पुरानी याद", "पार्टी का भूत", "बीमारों की दुनिया में", "एक रात", "स्टिल लाइफ" आदि सात कहानियाँ आत्मकथात्मक पक्ष की विवृतियाँ हैं ।

"रेखायें वृत्तचक्र" कहानी के पात्र शिबू और उमा है । शिबू बीमार है और आस्पताल में पडा है । वह अपने मित्रों के संबंध में सोचता है, जिन की मृत्यु हो चुकी है । वे हैं सिनेमा के गीतकार जलधर और मृत्यु पर कविता लिखनेवाला पुष्पलाल । दवा की प्रक्रिया के कारण शिबू बेहोश हो जाता है । उसे लगता है कि दूर से कोई उसे पुकारता है । उस के बाद गंगा में अनगिन बतखों का पुल भी दिखाई पडता है । बाद में मलयाली नर्स नीलम्मा से प्यार होने लगता है और सोचता है कि "प्रेम में पड़ जाने का एक मात्र स्थान आज भी आस्पताल है"[2] । क्योंकि पन्द्रह वर्ष पहले इसी प्रकार आस्पताल में रहते वक्त उमा से उसे प्रेम हो गया था । पटना रेडियोस्टेशन में नौकरी करने की बात भी शिबू याद करता है । रेणु को लतिका "शिबू" पुकारती और लतिका को रेणु "उमा" । इस कहानी के पात्र तथा घटनायें रेणु के जीवन से संबंधित हैं ।

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 136.
2. अग्निखोर, पृष्ठ 33.

नेपाली क्रांति में भाग ले कर रेणु वापस आते हैं । एकदम हताश और थका हारा । बीमार हो कर आस्पताल में दाखिल होता है । वहाँ उन का परिचय लतिका से होता है । "एक रात" नामक कहानी में उक्त घटनाओं का ही वर्णन रेणु ने किया है । लतिका की सेवा शुश्रूषा से रेणु की बीमारी कम हो जाती है । इन्हीं घटनाओं के आधार पर कहानी रचित है ।

"स्टिल लाइफ" तथा "बीमारों की दुनिया में" आदि कहानियों में भी रेणु ने आस्पताल को परिवेश के रूप में स्वीकार किया है । इन में वहाँ के जीवन की कठिनाइयों एवं बेबसियों का इतना खुला और नंगा वर्णन उन्होंने किया है कि जीवन का एक अलग रूप प्राप्त होता है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है - "आस्पताल की रात बड़ी भयानक होती है । रोगियों की दर्द-भरी कराह, कलेजे में चुभनेवाली चीख और बीच-बीच में मृत व्यक्तियों के संबंधियों का सम्मलित करुण रोदन । सब मिल कर रात को बड़ी भयानक बना देते हैं । अंधेरी रात और भी क्रूर हो जाती है । चाँदनी रात, कफन जैसी सफेद और बेजानदार मालूम होती है"[1] । आस्पताल में प्रवेश पा जाने पर क्या हो जाता है-"आस्पताल में दाखिल होते ही आप का नाम बदल जाता है । आप अपना नाम खो कर किसी नम्बर के नाम से मशहूर हो जाते हैं । मां-बाप का दिया हुआ, राशिचक्र और भृगुसंहिता द्वारा प्रमाणित आप का नाम अथवा आप का प्यारा साहित्यिक नाम यहाँ नहीं चलेगा"[2] । इन दोनों कहानियों में आस्पताल के कई मज़ेदार तथा खट्ठे-मीठे अनुभवों का चित्रण है । इन कहानियों में उन की अपनी ज़िंदगी के कई पक्ष उभर आते हैं । यही कहा जा सकता है कि रेणु ने अपनी "कथा" के कई बातों को रचनात्मक रूप दे दिया है ।

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 148.
2. वही पृष्ठ 158.

"पुरानी याद" रेणु के बचपन की कहानी है । अपने बचपन की कुछ स्मृतियाँ ही इस कहानी में पिरोई गई है । अपनी पुरानी एक किताब हाथ आने पर अचानक ये स्मृतियाँ उन के सामने घूमने लगती हैं ।

"अपनी कथा" रेणु के कारावास जीवन से संबंधित है । जेल के गब्बे हाउस में रेणु ने एक प्रेत कथा, उन के विचार के अनुसार - हर कथा को लेखक की आत्मकथा होनी चाहिए । वरना, कथा असफल है । मेरे सामने समस्या है, अपनी कथा से अपने को कैसे बहिष्कृत करूँ ? कैसे निकाल दूं "मैं" को ? क्यों निकाल दूं ? असफल कथाकार कौन कहलाना चाहेगा, भला"[1] - कह कर एक सफल कथा बनाने का वर्णन है ।

पार्टी की सदस्यता से अलग होने पर रेणु को लगता है कि वे मुक्त हो गये हैं । "पार्टी का भूत" नामक कहानी की विषयवस्तु इसी पर आधारित है । इस कहानी में आज के भारत की हालत - "यहाँ तो सैकडों पार्टियाँ हैं । अपने को किसी पार्टी से अलग रख कर एक कदम भी चलना मुश्किल है"[2] - का वर्णन किया है । वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि "..... मेरे सिर पर "पार्टी का भूत" सवार है । इस ने मुझे कहीं का न रखा । बहुत कम उम्र से ही इस ने मुझे शिकार बना लिया है"[3] । किसी दिन गाँव जा कर अपने चाचा से झाड़-फूंक कर इस भूत से बचना भी वे चाहते हैं । इस कहानी के द्वारा, साधारण लोगों की भलाई से बढ़ कर अपनी पार्टी को महत्ता देनेवालों की हँसी उठायी गयी है ।

---

1. एक श्रावणी दो पहरी का धूप, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 33.
2. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 128.
3. अच्छे आदमी, प्रथम संस्करण 1986, पृष्ठ 117.

शहरी जीवन की कहानियाँ

रेणु की करीब पन्द्रह कहानियाँ शहरी जीवन पर आधारित हैं । इन कहानियों में रेणु ने शहर के मध्यवर्गीय जीवन को प्रस्तुत किया है । "आज़ाद परिन्दे", "प्रजा-सत्ता", "अग्निखोर", "लफड़ा", "शीर्षकहीन", "एक कहानी का सुपात्र", "जैव", "नमिटनेवली भूख", "वंडरफुल स्टुडियो", "एक श्रावणी दोपहरी की धूप", "संकट", "विकट संकट", "अभिनय", "टेबुल" आदि रेणु की शहरी जीवन पर आधारित कहानियाँ हैं । "टेबुल", "काक चरित", "आज़ाद परिन्दे", "विकट संकट" जैसी अनेकों रचनाएँ इस बात का प्रमाण है कि ग्रामीण कथाक्षेत्र से अलग शहरी मन और जीवन के शिल्पी के रूप में भी रेणु ने सक्षमता का परिचय दिया है । किसी भी समसामयिक कथाकार की तुलना में रेणु कम आधुनिक नहीं है"[1] ।

"अग्निखोर" कहानी का सूतपुत्र शहर के आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है । वह अपने बाप की खोज में साहित्यकार सूर्यनाथ के पास आया है । अंत में वह व्यक्त कर देता है कि वह भी सूर्यनाथ का बेटा है । मेटेर्निटी सेंटर में ट्रेनिंग केलिए आयी बंगालिन विधवा आभारानी राय के साथ, सूर्यनाथ का जो अवैध संबंध हो गया, उस से वह पैदा हो गया है । इस के सबूत केलिए उस के साथ अपनी माँ की डयरी थी । आधुनिक युग की युवा पीढ़ी की अशान्ति और कुंठा को व्यक्त करने में यह कहानी सफल बन गयी है । "शीर्षक हीन" कहानी औरतों के विचित्र व्यवहार से संबंधित कहानी है । माथुर नामक प्रोफसर को, पिछले पन्द्रह वर्षों के अन्दर रेणुका, कमला तथा लीला नामक तीन पत्नियों ने एक-एक कर के छोड दिया । इन बातों को पूरी तरह

---

1. प्रतिमान - अक्तूबर 1972, संपूर्ण जीवन की ग्रामगंधी कहानियाँ - सुवास कुमार, पृष्ठ 80.

से जाननेवाली तथा पास वाले फ्लाट में रहनेवाली, अच्छे घर की लड़की रूपा, स्वयं प्रोफसर की चौथी पत्नी बनने केलिए तैयार हो जाती है । "एक कहानी का सुपात्र" का छोटालाल गाँववाला है । शहर के निवासियों की तुलना में अपने इस ग्रामीण पात्र को अच्छा बनाने का उपक्रम इस कहानी में रेणु ने किया है ।

"कभी न मिटनेवाली भूख" कहानी का पात्र विधवा उषादेवी नगर के गर्ल्स स्कूल की प्रधान अध्यापिका है । वह अपनी नौकरी के द्वारा, यौवन में कभी न मिटनेवाली भूख को दूर करने का प्रयत्न करती है । लेकिन उस में पराजित हो कर पागल बन जाती है । इस कहानी के द्वारा रेणु ने यह समझा दिया है कि "प्रेम और सेक्स जीवन के ऐसे तत्व हैं जिन में से किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती है - एक मन की भूख है और दूसरा शरीर की । मन और शरीर की संयुक्त स्वस्थता से ही मनुष्य स्वस्थ बन सकता है"[1] । "एक श्रावणी दोपहरी की धूप" महानगरीय परिवेश में दाँपत्य जीवन के एक विशिष्ट पक्ष से संबद्ध कहानी है । विवाह के बाद पंकज-झरना के संबंधों में ठंडापन आ गया है । लेकिन एक दिन झरना केलिए भुट्टा खरीदता हुआ पंकज बहुत प्रिय लगने लगता है और अनुभव होता है कि एक दूसरे के स्पर्श में पहले जैसा सुख अब भी है । "यह सुख श्रावणी दोपहरी की धूप यानी बदीरेटी धाम के बीच शीतल छाया, की तरह अब तक महसूस होता है"[2] । "कुंआरी" मनोविज्ञान से संबंधित कहानी है । मिस दुर्गादास पिछले आठ वर्षों से कॉण्टिनेण्टल कॉस्मेटिक्स एण्ड ड्रग्स कंपनी में नौकरी करती है । अब उसे असिस्टेंट ब्रैंच मैनेजर का पद मिल गया है । इस पदोन्नति से खुश होने पर भी वह उस मेज़ को छोडने को तैयार नहीं, जिस

---

1. दस्तावेज - जुलाई 1984, एक श्रावणी दोपहरी की धूप - समीक्षा, कृष्णचन्द्रलाल, पृष्ठ 66.
2. समीक्षा, अक्तूबर-दिसंबर 1985, वेदप्रकाश अमिताभ, पृष्ठ 10.

पर वह पिछले आठ वर्षों से नौकरी कर रही थी । "टेबुल" एक शुद्ध मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसे लेखक ने बड़ी कुशलतता से, "केसहिस्ट्री" बनने से बच लिया है । मिस दुर्गा दास को जिद का सेंटीमेंट एकदम आधुनिक बुद्धिजीवी नारी की मानसिक उलझन का परिणाम है, जो हृदय और मस्तिष्क के कशमकश में बुरी तरह खींची जा रही है । मुर्दा संबंधों वाले उस के जीवन को नीरसता इतनी बिडम्बनापूर्ण है कि उसे टेबुल-जैसी निर्जीव वस्तु से लगाव पैदा करने को मज़बूत होना पडता है, क्योंकि सारे मानवीय और आत्मीय संबंध जड और काठ हो गये हैं"[1] । "वंडरफुल स्टुडियो" नामक कहानी में मनुष्य के मन में सोई हुई महत्वाकांक्षा से लाभ उठाने वाले, एक स्टुडियो वाले की कहानी है । अरुण बाबू दुबले-पतले तथा अकाल परिपक्व बाल वाला है । पडोस के भारी भरकम देह तथा बिना दांत वाली विधवा दादी से प्रेम का अभिनय, "अभिनय" नामक कहानी की विषयवस्तु है । "विकट संकट" और "लफ़ड़ा" आदि कहानियाँ भी शहरी जीवन के प्रसंगों पर आधारित है । जिस आत्मीयता से, पूरी सहजता के साथ रेणु ने ग्रामीण जीवन प्रसंगों को उठाया है, उतनी आत्मीयता उन की इन तथा कथित शहरी कहानियों में प्राप्त होती नहीं है । शहरी जीवन की जटिलताओं की पकड इन कहानियों में नहीं है । जीवन की संश्लिष्टता का गहरा रूप भी इन में उपलब्ध होता नहीं है ।

आंचलिकता

रेणु की कहानियों की मौलिकता आंचलिकता को ले कर है । उन की प्राय: सभी रचनाएँ यथार्थवादी हैं । ग्रामीण जीवन का यथार्थ और उस के विविध पहेलू ही

---

1. प्रतिमान - अक्तूबर 1972, सुवासकुमार, पृष्ठ 78.

उन की आत्म सत्ता है । आर्थिक कठिनाइयों से जूझनेवाले किसानों, गाँव के घुमक्कड कलाकार, बातूनी औरतें, सेवारत नारियाँ आदि उन की रचनाओं में सुलभ हैं । लेकिन इन सब को एक विशेष परिवेश के भीतर रेणु ने चित्रित किया है । रेणु की रचनाओं में यह परिवेश कृत्रिम रंग से परिकल्पित न हो कर अंचल की मूल संरचना से जुड कर अकृत्रिम सौन्दर्य के साथ परिपुष्ट हुआ है ।

आँचलिक कहानियों में प्रमुख रूप से ग्रामांकन मिलता है । गाँव की प्रकृति, वहाँ की पर्वत-घाटियाँ, परती, खेत-खलिहान आदि स्थानों का वर्णन ग्रामांकन के अन्तर्गत होता है । दूसरी विशेषता ग्रामीण जीवनरीतियों का वर्णन है । इस के अन्तर्गत, गाँवों के लोगों की संस्कृति का चित्रण, उन के उत्सव-पर्व आदि आते हैं । तीसरी विशेषता गाँववालों के आचार विचारों का अंकन, ग्रामीणों के रस्मोरिवाज़, उन की आस्थायें, विश्वास एवं अंधविश्वास, लोकगीत आदि का चित्रण मिलता है । इन सब से बढ़ कर अंचल की एक खास जीवन्तता होती है, गाँवों की चहल-पहल जो होती है । रेणु की कहानियों में आँचलिकता की ये प्रवृत्तियाँ प्रभूत मात्रा में प्राप्त होती हैं ।

ग्रामांकन

ग्रामांकन के अन्तर्गत गाँव का विवरण या तो सामान्य के रूप में या कभी खंडचित्र के रूप में या एक गत्यात्मक चित्र की भाँति होता है । इस से अंचल का वातावरण अपना रूप प्राप्त कर लेता है । रेणु की कई कहानियों में ऐसे चित्र हमें प्राप्त होते हैं । "रसप्रिया" का एक चित्र इस प्रकार है । मृदंगिया गाँव की बदली हुई अवस्था के बारे में सोच रहा है । कहानी में इस का एक अलग संदर्भ है । उस अलग संदर्भ को प्रस्तुत करने केलिए सब से पहले रेणु को अंचलीय वातावरण का सृजन करना पडता है । यह प्रकरण मृदंगिया के स्मृतिपथ में उमडते विचारों के रूप में विवृत हुआ है - "जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं ।

कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूक भूल जायेगी क्या ? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है ? पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था। ....पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरेभरे पौधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती है - रस की डोरी। वे गाने लगते थे- बिरह, चाँचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-समय का ख्याल कर के गाये जाते हैं। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी - "हाँ....रे, हल होते हलवाला भैया रे......, खुरपी रे चलावे....... म....ज....दू....र! एहि पन्थे, मारा है रूसकि। खेत में काम करते हलवाहों और मजूदूरों से कोई विरही पूछ रहा है, कातर स्वर में - उस की रूठी हुई धनी को इस राह जाते देखा है किसी ने ? .....। अब तो दोपहरी नीरस कटती है, मानों किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है। आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिंहकारी भरी- टिं..... ई टिं..... कि..... क"[1]! पंचकौडी की स्मृति में यह भूभाग उभरता-सिमटता रहता है। लेकिन यह मात्र एक भूभाग का अंकन नहीं है। अंकन का एक भीतरी पक्ष है। उस भीतरी भाग में विद्यापति के गीतों, उस के आलापनों का एक संसार है। वह खुलने लगता है। अलावा इस के लोकसंस्कृति का एक विशिष्ट संसार भी खुलता है। लोक संस्कृति की चेतना को जिस अनुपात में रेणु ने अपनी कहानियों में मिलाया है वह उन की कहानियों को अधिक आस्वादनीय बनाती है और यही आँचलिक लोकचेतना रचनाओं को ज्यादा निजी बना डालती है।

"तीसरी कसम" नामक कहानी में भी हिरामन के लडकपन के छोकरा नाच के वर्णन के साथ गाँव का चित्रण प्रस्तुत हुआ है - "हिरामन का मन आज हल्के सुर में बाँधा है। उस को तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पच्चीस साल पहले, बिदेशिया, बलवाही, छोकरा-नाचवाले एक-से-एक गजल-खेमटा गाते थे।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 11-12.

अब तो भोंपा में भोंपू-भोंपू कर के कौन गीत गाते हैं लोग ! जा ज़माना ! गाड़ी की बल्ली पर ऊँगलियों से ताल दे कर गीत को काट दिया हिरामन ने । छोकरा-नाच के मनुवाँ नटुवा का मुँह हीराबाई जैसा ही था । कजरी नदी दुबली-पतली धारा तेगछिया के पास आ कर पूरब की ओर मुड़ गयी है । हीराबाई पानी में बैठी हुई भैंसों और उन की पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही"[1] हिरामन की मानसिक अवस्था संगीतमय हो जाती है । इस का कारण हीराबाई की उप-स्थिति ही है । वह याद करता है । लेकिन वह सिर्फ याद ही नहीं है । गाँव की उन पुरानी बातों का व्योरेवार स्मरण भर नहीं है । वह प्रमुख पात्र को उस आँचलिक स्थिति से महसूस करने का उपक्रम भी है । इसलिए रेणु ने यहाँ अंचल के उस पुरानी बातों को दोहराया है । "तीसरी कसम" में और भी अनेक गतिशील चित्र मिल जाते हैं । अत: एक करुणार्द्र प्रेमकहानी लोकचेतना से युक्त एक श्रेष्ठ रचना बन जाती है ।

"विघटन के क्षण" नामक कहानी में भी रानीडिह की कुमारियों के "श्यामा चकेवा" मनाने का एक प्रसंग है । तब भी प्रकृति का अंकन उन्होंने किया है - तारे झरे, पायल झनके । हुस्तहिना के गुच्छों ने लंबी साँस ली । रात भीग गयी ......। धरती पर बिखरे अक्षत-सिन्दूर । दूबों पर बिखरे मोती के दाने ।...... छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों के टुकडे । अचानक एक चील ने डैना फड़फड़ाया । सभी चिरैयाँ एक साथ भड़क कर उड़ी । गैरैयों की विशाल टोली सरसों के खेत में जा बैठी । । एक चादरी अब हलकी लाली दौड़ गयी है अर्थात् अब दानों में दूध सूख रहा है"[2] ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 115-16.

2. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 9-10.

कभी कभी ऐसे ग्रामोल्लेख उल्लेखभर रह जाता है । इस से वातावरण भर का निर्वाह होता है । उदाहरणार्थ "तीन बिन्दियाँ" नामक कहानी का यह प्रकरण देखा जा सकता है । यह एक जंगली स्थान का वर्णन है । उस सूनसान का वर्णन है - "चांदनी जहाँ लंबे-लंबे शालवृक्षों की फुनगियों पर टँगती नहीं रहती, श्यामल-मसृण घास पर बिछ जाती है । पास ही बहती हुई पहाडी नदी, जो कलकल-कुलकुल नहीं करती । हवा फुसफुसा कर बात करती है । चाँदनी, चैत की । प्रकाश में एक ठूँठ विस्मित सा खडा है"[1] ।

"आदिम रात्री की महम" नामक कहानी का पात्र करमा अपने बाबुओं के साथ कई स्टेशन घूम आया है । विभिन्न अंचलों के साथ आत्मीय संबंध जो हुआ उस रूप में अंचल की प्रस्तुति हुई है । मनिहारीघाट, लखपतिया, कदंमपुर, वारिशगंज, ब्रथनाहा आदि आदि स्टेशनों में करमा अपने बाबुओं के साथ घूमा था । उन स्थानों का उल्लेख रेणु ने आकर्षक ढंग से किया है । आज करमा उन स्थानों की सुन्दरता का स्मरण कर रहा है - "वह "डिसटन-सिंगल" के उस पार दूर तक खेत फैला है । वह काला जंगल ताड़ का वह अकेला पेड़ । मगर टिसन के पूरब जो दो पोखरे हैं, उन्हें कैसे भूल सकता है करमा ? आईना की तरह झलमलाता हुआ पानी ।

मुदा, कदमपुरा - सचमुच कदमपुरा है । टिसन में शुरू कर के गाँव तक हज़ारों कदम के पेड हैं । एक तरफ धरती, दूसरी ओर पानी । इधर रेलगाडी, उधर जहाज़ । इस पार साहेबगंज-कजरोरिया का नीला पहाड । नीला पानी - सादा बालू"[2] । इस के बाद वह धान के खेतों की तरफ़ बढ़ता है - "धन खेतों से गुज़रने वाली पगडंडी पकड़ कर करमा चल रहा है । धान की बालियाँ अभी फूट कर निकली नहीं है । खेतों में अभी भी पानी लगा हुआ है । मछली ?

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 164.
2. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 47-48.

पानी में माँगुर-मछली देख कर करमा की देह अपने - आप बँध गयी ।
ताड़ का पेड़ तो पीछे की ओर ही "घसकता" जाता है । करमा ने देखा, गाँव आ गया । गाँव में कोई तमाशा वाला आया है । बच्चे दौड़ रहे हैं । हाँ, भालू वाला है । डमरू की बोली सुनकर करमा ने समझ लिया । गाँव की पहली गन्ध । गंन्ध का पहला झोंका"[1] । करमा खेतों के पानी की मछलियों को देखकर उन्हें पकड़ता है । गाँव में मिले बूढ़े आदमी के निमंत्रण पर उस का घर जाता है और मछली उसे दे देता है । यहाँ निपट वर्णन है । लेकिन यह वर्णन आकर्षण की उपज है । करमा का आकर्षण इतना आत्मीय है, इसलिए ऐसे आँचलोल्लेख में भी आत्मीयता झलकती है ।

"दस गज्जा के इसपार और उस पार" नामक कहानी में नेपाल और भारत की सीमा के पास के चक्करघट्टी "टापू" के भूभाग-दृश्य का वर्णन भी दिया है - "जिस के एक ओर, यानी उत्तर की ओर नेपाल की घनी तराई, धरान-धनकुट्टा पहाड़ी इलाके तक फैली हुई, पश्चिम की ओर कल-कल करती बहती-हुई कोसी नदी । पूरब और दक्षिण का हिस्सा, कई कोसों तक - आठ महीने अथाह पानी में डूबा रहता है और बाकी चार महीने नरकट-सरकट, झाउ-झलास, खर-पतवार, जंगली बाँसों से ढ़का रहता है"[2] ।

ग्रामीण व्यक्तियों या गाँवों के विस्तृत परिदृश्य को चित्रित कर के आँचलिक वातावरण का सृजन किया जाता है । जैसे "तीसरी कसम" में हिरामन की कसम खाने की बात और उस गाड़ीवान की विशिष्टताओं का विस्तृत वर्णन किया है - चालीस

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 51-52.
2. अग्नि खोर -(संस्करण नहीं, वर्ष नहीं) पृष्ठ 98.

साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल बच्चेवाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़ कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही। गौने के पहले ही दुलहिन मर गयी। हिरामान को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं। दूसरी शादी ? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद्द, कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवायेगी। कुमारी का मतलब हुआ पाँच-सात साल की लडकी। कौन मानता है सरधा-कानून ? कोई लडकी वाला दोव्याहू को अपनी लडकी गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उस की तीन-सत्त कर के बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती। अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाये। व्याह कर के फिर गाडीवानी क्या करेगा कोई। और सबकुछ छूट जाये, गाडीवानी नहीं छोड सकता हिरामन"[1]। अपनी गाडी में बाँस न लादने के हिरामन के दूसरे प्रण के बारे में यों वर्णन किया है - "बाँस लदी हुई गाडी। गाडी से चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ। काबू के बाहर रहती है गाडी हमेशा। बेकाबूवाली लदनी और खरैहिया। शहरवाली बात। तिस पर बाँस का अगुआ पकड कर चलनेवाला भाडेदार का महाभकुआ नौकर, लडके-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड पर घोडा गाडी से टक्कर हो गयी। जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, जब तक घोडागाडी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गयी। घोड़ागाड़ी वाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दे दी।

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण, पृष्ठ 111-12.

बाँस की लादनी ही नहीं, हिरामन ने खैर किया शहर की लादनी भी छोड़ दी । और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढ़ोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार ! कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधीदारी पर जोता । आधा भाड़ा गाड़ी वाले का और आधा बैलवाले का हिस्सा ! गाड़ीवानी करो मुफ्त । आधीदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते । पिछले साल ही उस ने अपनी गाड़ी बनवायी है"[1] । ऐसे विस्तृत वर्णन से व्यक्त चित्रण भर ही होता नहीं बल्कि एक आँचलिक परिवेश भी सृजित होता है ।

"तीन बिन्दियाँ" नामक कहानी में प्रसिद्ध गायिका गीताली दास तथा हराधन यंत्रकार के व्यक्तिचित्र इस प्रकार है - "गीतालीदास अपने को सुरजीवी कहती हैं । नाद-सुर-ताल आदि के सहारे ही वह इस मंजिल तक पहुँच सकी है । सभी कहते हैं, उस की साधना सफल हुई है । कितने भोले और बेचारे होते हैं लोग ! साधना के सफल असफल होने की घोषणा करनेवालों से यह पूछना चाहती है, सफल साधना का कोई सीधा-सा अर्थ । यह ठीक है कि अनेक असांगीतिक वातावरणों को गीताली ने अपने सुनहले सुर और सुगम गीतों से संगीतमय कर दिया है, कि किसी भी संगीत-समारोह या सांस्कृतिक प्रतिष्ठान के संयोजक आज भी गीताली के नाम पर गीत-प्रेमियों को बटोर लेते हैं । किन्तु, और कितने दिन ?
गीताली को हठात् हराधन यन्त्रकार की याद आयी । कई मुखड़ों के उभरने और बिलाने के बाद डाँट-डाँट-डाँट ! फिर मिस्त्री हराधन यन्त्रकार का एक तैलचित्र लटक गया उस के मन की दीवार पर । न जाने यंत्रकारजी कहाँ है ! गीताली अपने दोनों हाथों को जोड़ कर शून्य में एक नमस्कार करती है ।

जिन्दगी के इर्द-गिर्द झंकृत होनेवाले सहायक नादों से प्रथम साक्षात् परिचय मिस्त्री हराधन यन्त्रकार ने दिया था । मिस्त्री नहीं, गुरु मानती है हराधन यंत्रकार को ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 107-108.

यंत्रकार जी के मन्त्र-बल से ही गीत-पा[illegible] ।   जानती है खुकी, सफल शिकारी होने केलिए आदमी को सभी किस्म के शिकारियों से दीक्षा लेनी होती है, शेर-भालू के शिकारियों से ले कर व्याध-लुब्धक और सँपेरे को भी संगीत करनी होती है । यन्त्रकार कहो, मिस्त्री कहो या कारीगर, तुम मेरी नातिन की उम्र की हो । नाना की बात सुनोगी ? यन्त्र के सहारे ही सहायक नादों को पाँच हज़ार आन्दोलन युक्त ध्वनियों की बारीकियों का उपभोग कर सकोगी । सदा ध्वनित होनेवाले जाने-अनजाने सुर में तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण मुखरित हो उठेगा । ...." अलख-मुखर-जगत् में दस वर्ष पूर्व की बातें मुखरित हो रही है । ....."[1] ।

"आत्मसाक्षी" में पार्टी की निस्वार्थ सेवा में निरत गणपत के जीवन के बारे में विस्तृत वर्णन यों किया है - "पैंतीस साल पहले वह सब से पहले आर्यसमाजी सभा-मंच पर खँजड़ी बजा कर "अछूतोद्धार वाला गीत" गाने केलिए खड़ा हुआ था ।

उस सभा की याद आते ही परबतिया की याद आ जाती है, जिस के हाथ का पानी पीने से जाति मारी जाय, प्रेम में पड़ कर गनपत ने "नीचे कुल की उसी परबतिया के मुँह का "चुम्मा" जाये, परबतिया को वह कभी नहीं छोड़ेगा । जाति-समाज के अलावा घर के लोगों ने गनपत को तरह-तरह की यातनायें दीं । गनपत ने हार कर आर्यसमाज के मंत्री के पास अरजी दी । लेकिन तब तक परबतिया का बाप परिवार सहित गाँव छोड़ कर भाग गया था ।

गनपत फिर लौट कर घर नहीं गया, गाँव नहीं गया । माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुम्ब-परिवार, गाँव-समाज - सब से "नेह-छोह" तोड़कर "देश" और "दस" के काम में लग गया । जहाँ कहीं भी सभा होती, गनपत सब से पहले हाथ में खँजड़ी ले कर गीत शुरू कर देता - "हिन्दुओ ! दिल में सोचो विचारो ज़रा - अपने भाई से नफरत   ।

---

1. ठुमरी, छठा संस्करण, पृष्ठ 159-60.

और सन् तीस में इसी गीत को गाने के अपराध में वह पकड़ा गया, जेल गया, सजा भोगी । उसी बार जेल में ही सरमा जी की कृपा से वह कॉमरेड़ हो गया

सरमाजी ने उस की "टिक्की" को दाढ़ी बनाने वाली "पत्ती" कतर दिया था, और जनेऊ को उतारकर पैजामा में फँसा दिया था । और बोले थे, "आज से तुम कॉमरेड गनपत । सिंघ-उंघ कुछ नहीं । सिर्फ कामरेड ।

याद है, बावनदास और चुन्नीदास ने मिल कर "गनपत को कितना "धिक्कारा" था । मगर वह टस-से-मस नहीं हुआ । उस ने बावनदास को चिढ़ाने केलिए सरमाजी से सिखा हुआ सवाल पेश कर दिया था - बावन दास जी, चर्खा चलाने और बकरी का दूध पीने से सुराज कैसे मिलेगा, समझा दीजिए ज़रा" ।

जेल से निकलने के बाद सारे जिले में गनपत ही अकेला "पार्टी कॉरेड" रहा कई वर्षों तक । एक ही साल में बिहार प्रांत के कई "किसान फ्रंट" और "मज़दूर-मोर्चों पर पहुँच कर गनपत ने मेहनतकशों की लडाई में साथ दिया, नारा लगाया, धरना दिया, खँजडी बजा कर गीत गाये, अच्छूत्तोद्धार के बदले सरमाजी का सिखाया हुआ "अंतर्राष्ट्रीय गीत" गाया - "उग रहा है आफ़्ताब लाल-लाल आफ़्ताब जाग रे किसान भाई, जाग । जाग रे मज़दूर भाई जाग [1] । व्यक्तिचित्रों को प्रस्तुत करते समय भी आंचलिक महौल को सुरक्षित रखने की चेष्ठा बराबर होती रहती है ।

---

1. आदिम रात्री की महक, नवीन संस्करण 1982, पृष्ठ 153-54.

ग्रामीण जीवन रीति

आँचलिकता को बनाए रखने केलिए ग्रामीण संस्कृति और जीवनरीतियों का परामर्श भी आवश्यक है । गाँवों में विद्यापति मंडल के द्वारा शुभावसरों पर विद्यापति - नाच हुआ करती थी । उस का संकेत "रसप्रिया" कहानी में यों दिया गया है :- "पन्द्रह बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-व्याह, यज्ञ-उपनैन, मुंडन-छेदन आदि शुभकार्यों में विद्यापति मंडली की बुलाहट होती थी"[1] । गाँवों के मेलों में खेले जाते नाटकों का जिक्र "एक अकहानी का सुपात्र" नामक कहानी में मिलता है - "यह मत समझिये कि देहात में एकदम देहाती ड्रामा करता होगा । जी नहीं, एकदम नहीं । स्टेज पर बजते "फौकसिंग" के खेल होता था - "बागदाद का सौदागर" तो "सुलताना डाकू" तो "भगतसिंह" और खेल ऐसा कि गुलाब बाग मेले में आनेवाली "दि ग्रेट ठेठरिकल कंपनी आफ इंडिया" भी मात"[2] ।

"लाल पान की बेगम" की बिरजू की माँ का अवतरण अपने आप में आँचलिक प्रवृत्तियों से युक्त है । लड़ाई-झगडे के बाद वही अपनी पडोसिनों को बुलाने को तैयार होती है । एक ओर उस का भोलापन, सीधापन व्यक्त होता है । दूसरी तरफ ग्रामीण महिलाओं का रंगीन चित्र भी उपस्थित होता है - "फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी-न-किसी बहाने उस ने अठारह बार बैलगाडी पर नाच देखने की चर्चा छेडी है । लो खूब देखो नाच ! वाह रे नाच ! कथरी के नीचे दुशाले का सपना । कल भोरे पानी भरने केलिए जब जायेगी, पतली जीभवाली पतुरिया सब हँसती आयेंगी,

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 10.
2. अग्निखोर, पृष्ठ 57.

हँसती जायेंगी ।   सभी जलते हैं उस से, हाँ भगवन दाढ़ीजार भी"[1] । नाच-गानों के प्रति, मेले-पर्वों के प्रति, उत्सव-त्योहारों के प्रति गाँव वालों में सहज प्रीति होती है । वे उन के जीवन के अंग हुआ करते हैं । उस में घुल-मिलकर जीना भी चाहते हैं । उस   वे बाहरी निरीक्षक मात्र नहीं है ।

सरपंचमी के दिन कालू कमार ने, पाँच साल के सैंने की बाकी के नाम पर, सिंघाय के फाल को टेढ़ा कर दिया था । निराशा और अपमान से दुखी सिंघाय का फाल रेलवे मिस्तिरियों ने ठीक कर दिया । इस से सिंघाय सरपंचमी के सगुन में भाग ले सकता था । सिंघाय की पत्नी के अनुरोध पर ही रेलवे मिस्तिरियों ने फाल ठीक किया था । किसानों के जीवन के अंतरंग चित्रण सगुन के संकेत से प्राप्त होता है । यह अंधविश्वास की बात नहीं बल्कि आस्था की बात है - "नई खुरपी से सवा हाथ ज़मीन छील कर केले के पत्ते पर अक्षत-दूध और केले का मोती-प्रसाद चढ़ाया जाता है । धूप-दीप देने के बाद, हल में बैलों को जोत कर पूजा के स्थान से जुताई का श्रीगणेश किया जाता है । फाल की रेफ पूजा के बीच में पड़, इस का खयाल सभी किसान रखते हैं । अपने-अपने हलवाहों को सचेत कर देते हैं - बायें बायें, ज़रा दाहिने ! पाँच चक्कर दक्षिण से उत्तर और पाँच पूर्व से पश्चिम ! जुताई के समय जिस का बैल मल-मूत्र त्याग करे, उस को खाद पानी की कमी नहीं होगी इस साल की खेती में । आज जिस का बैल बैठ गया या जुए से खुल गया - उस की खेती के मालिक सीताराम"[2]।

ग्रामीण जीवन रीतियों का चित्रण करते समय रेणु ने अपनी कहानियों में ग्रामीणों के उत्सव मेले आदियों का चित्र प्रस्तुत किया है । "विघटन के क्षण" नामक

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 154.
2. ठुमरी, पृष्ठ 86.

कहानी में रेणु ने रानीड़िह गाँव के "शाम चकवा" पर्व का विस्तृत वर्णन किया है। वह यों है - "बीती हुई रात के तीसरे पहर तक, जहाँ सारे रानीड़िह गाँव की कुमारी-कन्यायें कचर-पचर नृत्य-गीत-अभिनय कर चुकी है। रात में शामा-चकवा "भैसाया" गया है। प्रतिमा विसर्जन ! श्यामा, चकवा, खंजन, बटेर, चाहा, पनकौआ, हाँस, बनहाँस, अधँगा, लालसर, परकौडी, जलपरेवा से ले कर कीडा पतंगों में भुनगा, भेगृहा, आँख-फोडवा, गंधी, गोबरैला तक की मिट्टी की छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही मूर्तियाँ गढ़ी गयी थीं, हाँगी गयी थीं। दो रात तक उन्हें ढ़ेलवाले खेतों में चराया गया। अर्थात् उन की पूजा की गयी। रात को विसर्जन ! सैकडों लडकियों की खिलखिलाहट ! तालियाँ ! तारे झरे, पायल झनके ! हुस्नहिना के गुच्छों ने लंबी साँस ली। रात भीग गयी। बहुत दिनों के बाद-कोई पाँच बरस के बाद धूम-धाम से "शामा-चकवा" पर्व मनाया है रानीडिह की कुमारियों ने"[1]।

"तीसरी कसम" में फारबिसगंज में नौटंगी देखने केलिए आनेवाले लोगों और उस पूरे मेले का चित्रण रेणु ने किया है -

"भा-इ-या, आज रात ! दि रौता संगीत नौटंकी कम्पनी के स्टेज पर ! गुलबदन देखिए, गुलबदन ! आप को यह जान कर ख़ुशी होगी कि मथुरामोहन कंपनी की मशहूर एक्ट्रस मिस हीरादेवी, जिस की एक-एक अदा पर हज़ार जान फिदा है, इस बार हमारी कम्पनी में आ गयी हैं। याद रखिए आज की रात ! मिस हीरादेवी गुलबदन !"

नौटंकी वालों के इस एलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है। हीराबाई ? मिस हीरादेवी ? लैला ? गुलबदन ? फिलिम एक्ट्रस को मात करती है तेरी बाँकी अदा पर मैं ख़ुद हूँ फिदा,

---

1. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 9-10

तेरी चाहत को दिलबर बयाँ क्या करे !
यही ख्वाहिश है कि इ-इ-इ- तू मुझ को देखा करे
और दिलोजान मैं तुम को देखा करूँ ।
किई....ई....ई....ई....कड़ ड़ ड़ ड़ - ई-रं-धन-धन धडाम ।
हर आदमी का दिल नगाडा हो गया है"[1] ।

यह उत्सव जन्य प्रतीति प्राय: रेणु की सभी कहानियों में है । इस का कारण रेणु के व्यक्तित्व का वह विशिष्ट अंश है जो इन सब में अपने को डुबो कर कुछ प्राप्त कर लेता है । यद्यपि आँचलिक पक्ष पर विचार करते समय इनका उल्लेख और विश्लेषण आवश्यक है । लेकिन कहानी की रचना धर्मी वृत्ति के समय इन प्रकरणों का गहरा संबंध भी है ।

आचार विचार

अब भी ग्रामीणों के बीच कई प्रकार के अंधविश्वास-अनाचार प्रचलित हैं । उन का जीवन इन्हीं कुछ विश्वासों के आस-पास घटित होता है । बदलते हुए जीवन से परिचित होते हुए भी वे उसे छोड नहीं पाते । यह उन के जीवन की त्रासदी है और उन की अपनी विशिष्टता भी है । रेणु इन विशिष्टताओं को भी अपना लेते हैं ताकि आँचलिकता की सूक्ष्मता आ जाए । "पंचलैट" नामक कहानी में पंचलाइट को जलाने का उपाय न सूझ कर उन के बीच कई प्रकार के वाद-विवाद होते हैं - "किसी ने दबी हुई आवाज़ में कहा - "कल-कब्जेवाली चीज़ का नखरा बहुत बडा होता है" ।

एक नौजवान ने आकर सूचना दी - राजपूत टोली के लोग हँसते-हँसते-हँसते पागल हो रहे हैं । कहते हैं, कान पकड कर पंचलैट के सामने पाँच बार उठो-बैठो,

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 129-30

तुरन्त जलने लगेगा ।   "गोधन जानता है पंचलाइट जलाना" कनेली बोली । "कौन गोधन ? जानता है जलना लेकिन   । सरदार ने दीवान की ओर देखा और दीवान ने पंचों की ओर । पंचों ने एकमत हो कर हुक्का-पानी बन्द किया है । सलीमा का गीत गाकर आँख का इशारा मारनेवाले गोधन से गाँव - भर के लोग नाराज़ थे । सरदार ने कहा, "जाति की बन्दिश क्या, जब कि जाति की इज्जत ही पानी में बही जा रही है"[1] । एक सामान्य सी बात भी ग्रामीणों के बीच जिस प्रकार शोर-शराबे की बात बन जाती है । पंचलैट वस्तुत: एक सीधी सी यथार्थवादी रचना है । पर रेणु ने उसे एक अंचल की कहानी बना डाली ।

"रसप्रिया" में पंचकौड़ी की ऊँगलियों के टेढ़े होने की बात को ले कर जो विश्वास स्वयं पंचकौडी और रमपतिया के हृदय में जम जाता है, जो पूरी कहानी को गहन बनाने में एक रचनात्मक दिशा देने में सहायक होता है । यथार्थ और मिथक के बीच कहानी उपस्थिति है । एक आँचलिक मिथक का रचनात्मक प्रयोग रेणु ने इस कहानी में किया है ।

जहाँ ऐसे संदर्भ आते हैं वहाँ रेणु ने ऐसे अन्धविश्वासों का संकेत दिया है जिन को ये पात्र ओढ़ते नहीं बल्कि अपनाते हैं । नदी में बाढ़ आने पर, उसे प्रसन्न करने केलिए लोग झाँझ-मृदंग बजा कर, नदी का वंदन गीत करते हैं - "निरुपाय, असहाय लोगों ने झाँझ-मृदंग बजा कर कोसी मैया का वन्दना गीत शुरू किया"[2] । कौए को सारे अशुभ और असगुन का वाहक मानते हैं - "क्या यह कौआ ही सारे अशुभ और असगुन का वाहक है ?   जिस दिन वह फिसल कर गिरा था उस दिन भी क्या सुबह को यह इसी तरह काँव-काँव कर गया था । आठ महीने पहले की बात याद आयी"[3] । मेले आदियों केलिए तैयार की जानेवाली मूर्तियों को आँख देने पर, आँख

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 80-81.
2. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 70.
3. वही, पृष्ठ 108.

देनेवाला कलाकार अंधा हो जायेगा - ऐसा विश्वास ग्रामीणों के बीच मे प्रचलित है । मूर्ति बनानेवाला दुर्गालाल कहता है - "लेकिन मेरे खानदान में देवी को नैन देने का रिवाज नहीं है । नैन देते ही मैं अंधा हो जाउँगा"[1] । इस विश्वास का चित्रण रेणु ने अपनी "कपड घर" नामक कहानी में किया है । ये संदर्भ कभी कभी सामान्य चित्रण भर भी है । लेकिन उस से आँचलिकता का गुणात्मक अन्तर आता है ।

लोकगीत

अपनी कई कहानियों में रेणु ने लोकगीतों को प्रस्तुत किया है । कभी कभी ये गीत कहानी को प्राण लगते हैं तथा कहानी की मूल संवेदना की परिवृत्ति के सूचक भी । इस केलिए उदाहरण है "तीसरी कसम" के महुआ घरवारिन का गीत -

"हूँ - ऊँ - ऊँ - रे डाइनियाँ मैयो मोरी - ई - ई,
नोनवा चटाई कोह नाहिं मरलि सौरी - घर - आ आ
एहि दिनवाँ खातिंर छिनरो धिया
तेहुँ पोसलि कि नेनू - दूध उटगन........"[2] ।

"दिल बहादुर दा॰ य" नामक कहानी में भी रेणु ने लोकगीतों का प्रयोग किया है -

"भयाल मा बसे के साच्छै नानी ?
जो के राब भूटे को ? (खिडकी पर बैठ कर क्या खाती हो-जौ और मटर का भूँजा है क्या ?)

"क इले मा पनि बिरसने छैन
न ली ले कूटे को" । (मुझ से बातें मत करो - मुझे जो मार लगी है वह मैं कभी नहीं भूल सकती)।"[3] यहाँ गीत सवाल जवाब के रूप में, नेपाली भाषा में ही रेणु ने गीत प्रस्तुत किया है ।

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 34.
2. ठुमरी, पृष्ठ 121-22.
3. अच्छे आदमी, पृष्ठ 105-6.

जान-बूझ कर लोकगीतों का प्रयोग कर के आँचलिकता का कृत्रिम सौन्दर्य लादने का प्रयास रेणु ने नहीं किया है । उन केलिए ऐसे लोकगीत उन के पात्रों के जीवन्त परिवेश का ऐसा हिस्सा है जिस से वे अपना संबंध तुड़वा नहीं सकते । उचित प्रसंगों पर प्रयुक्त लोकगीत कहानी के पूरे रचना परक को बदल डालते हैं । क्योंकि अकृत्रिमता ही उस का आधार है ।

<u>भाषा</u>

यह तो स्वीकृत तथ्य है कि आँचलिक कहानी केलिए ग्रामीण भाषा का प्रयोग आवश्यक है । रेणु ने मात्र पात्रगत सन्दर्भ केलिए ही नहीं बल्कि अपनी तमाम कहानियों केलिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो ग्रामीण भाषा ही है । अतः वह सृजनात्मक आयाम से युक्त है । रेणु का परिचय अपने इलाके के साथ इतने निकट का था कि उन्होंने उस में रची बसी वास्तविकताओं को, उस की मूल संवेदना को पूरी भाषिक-क्षमता के साथ अवतरित भी किया ।

रेणु एक सफल कहानीकार हैं, निष्कर्षतः यही बताया जा सकता है । उन्होंने एक सीमित अंचल (रौतिहट) को ही लिया । कहना यह बेहतर होगा, उन्होंने अपने परिचित वृत्त को अपनाया । सामान्य जीवन की घटनाओं को उन्होंने कहानी केलिए चुन लिया है । उदाहरणार्थ "ठेस" का सिरचन की कथा को लें या "तीसरी कसम" के हिरामन को लें या "पंचलैट" करे ग्रामीणों को लें । सभी कहानियों में जीवन के लघुतम प्रसंग ही उभरे हैं । यह भी रेणु के सन्दर्भ में संकेतित करना आवश्यक है कि उन्होंने अपनी कहानियों में ग्रामीणों की आर्थिक कठिनाइयों पर अधिक लिखा नहीं है । इन सब के उपरान्त उन की कहानियाँ आधुनिक युग में क्यों विशिष्ट हुई । उस का एक सरल उत्तर यह हो सकता है कि रेणु ने पहली बार ग्रामीण संस्कृति को व्यापक वर्णन

प्रस्तुत किया जो कि कहानी की नई रचना-दिशा थी । लेकिन बाहरी परिवेश का उतना मूल्य नहीं होता । वास्तविकता यह है कि उन्होंने गाँवों एवं अंचलों की बाह्य स्थितियों का ही नहीं अभ्यन्तर स्थितियों का अंकन किया है । उन की कहानियों की अभ्यन्तर स्थिति लोकचेतना की अन्तर्धारा से गतिशील भी रही । इन कारणों से रेणु की कहानियाँ आधुनिक युग में प्रासंगिक रही हैं ।

अध्याय चार

शिवप्रसाद सिंह का कृतित्व्यक्तित्व

अध्याय:चार

शिवप्रसाद सिंह का कृति व्यक्तित्व

प्रथम ग्रामीण कहानीकार

शिवप्रसाद सिंह ग्रामीण कथाकार हैं । "ग्रामीण कहानी", "आँचलिक कहानी" आदि की चर्चाओं में शिवप्रसाद सिंह का नाम प्राय: आता है । कहानी में ग्राम संवेदना को प्रश्रय देनेवाले कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह का महत्वपूर्ण स्थान है । यही नहीं, नई कहानी की प्रारंभिक चर्चाओं के अवसर पर शिवप्रसाद सिंह ग्रामीण कहानी के प्रवक्ता भी बन गये थे । इसलिए ग्रामीण कहानी के पुरोधा के स्थान के भी वे अधिकारी हैं ।

यद्यपि साहित्यिक आंदोलनों के प्रसंग में किसी एक रचना का महत्व उतना गणनीय नहीं माना जाता है; लेकिन कभी-कभी कुछ रचनाएँ एकदम महत्वपूर्ण साबित भी होती हैं । ऐसी एक रचना है शिवप्रसाद सिंह की "दादी माँ" नामक कहानी । डा.नामवर सिंह, डा.बच्चन सिंह, डा.इन्द्रनाथ मदान आदियों ने, इस से नयी कहानी की शुरूआत मानी है[1] । अत: "दादी माँ" नामक कहानी का महत्व दुगुना है ।

---

1. क नयी कहानी की शुरूआत शिवप्रसाद सिंह की कहानी "दादी माँ" से हुई है । माया-जनवरी, 1965, पृष्ठ 38.

ख यों कहानियों की नई प्रवृत्तियों केलिए मोटे तौर पर सन् 50 के आसपास का समय निर्धारित किया जा सकता है । इस सिलसिले में शिवप्रसाद सिंह की कहानी "दादी माँ" जो 51 के प्रतीक में छपी, द्रष्टव्य है" । आलोचना, जुलाई 1965, पृष्ठ 59.

ग शिवप्रसाद सिंह ग्राम कथाकार तथा आँचलिक कथा के अंतर को स्पष्ट करते हुए, आँचलिक कहानी के सूत्रपात का श्रेय स्वयं लेना चाहते हैं । जब 1951 के प्रतीक अंक में इस "दादी माँ" का प्रकाशन हुआ था । आलोचना और साहित्य - इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 143.

आँचलिक कहानी के संदर्भ में भी यह चर्चित होती है । भले ही यह आँचलिक कहानियों की सभी प्रवृत्तियों से युक्त नहीं ।

शिवप्रसाद सिंह "अपनी कहानियों को आँचलिक कहानी कहना पसंद नहीं करते"[1] बल्कि उन की "कहानियों को ग्राम-कथा कहना पसंद करते"[2] हैं । वे ग्राम कथाकार के रूप में जानना चाहते हैं । उन्होंने ग्रामीण कहानी को महत्ता दी है । शिवप्रसाद सिंह के अनुसार उन की रचनाओं के "पचहत्तर प्रतिशत कहीं न कहीं गाँव से संबंधित हैं"[3] । उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि उन्हें ग्रामीण वातावरण पर लिखते समय अधिक सायुज्य मिलता है और वे गाँवों में हो रहे परिवर्तनों और संघर्षों को सामने लाना ज्यादा उचित समझते हैं[4] । लेकिन मूलत: उन का दृष्टिकोण सामाजिक ही है ।

---

1. सारिका, 1 फरवरी 1980, पृष्ठ 11.
2. नई कहानी - संदर्भ और प्रकृति - सं. देवी शंकर अवस्थी, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ 144.
3. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 71.
4. "....मुझे अधिक सहजता और अपनी अभिव्यक्ति का सायुज्य ग्रामीण परिवेश में ज्यादा दिखाई पड़ता है । मैं ग्रामीण अनुभूतियों, वहाँ हो रहे परिवर्तनों और संघर्षों को सामने लाना ज्यादा उचित समझता हूँ" ।

   ज्ञानोदन, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 70-71.

स्वातंत्र्योत्तर रचनाकारों के इस उद्देश्य की भी अपनी महत्ता और वांछनीयता है। क्योंकि स्वाधीनता प्राप्ति के साथ भारतीय ग्राम जीवन में बहुत बडा परिवर्तन हो गया कि ग्रामीण संस्कार का स्वरूप ही बदलने लगा है। ग्रामीण जीवन की अपनी अपनी समस्यायें भी हैं। संस्कार और मूल्य के बदलने के कारण ग्रामीण जीवन का अपना संघर्षात्मक महौल भी बना है। स्वाधीनता के बाद जो परिवर्तन लक्षित हुए हैं उन के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण जीवन के बदलाव को भी देखा जाना चाहिए। इस बदलते हुए ग्रामीण प्रसंग को रचनाकारों ने विषय के रूप में ग्रहण किया। अपनी रचनाओं के माध्यम से इस बदलाव को अभिव्यक्त करने का कार्य जो उन्होंने किया वह उन के सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक ही है। शिवप्रसाद सिंह का यह कथन भी इसी बात की ओर संकेत कर रहा है - "अधिकांश भारतीय जीवन का जो सर्वोत्तम है वह ग्रामीण संस्कृति या उस से संबद्ध जीवन के माध्यम से ही उभरता रहा है और आगे भी उभरेगा".[1] इस के साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि "ग्रामकथाओं के द्वारा कबीले या उपेक्षित जनसमूह के जीवन का चित्रण तथा उस से हरक्षण उन्मुक्त प्रकृति और सहज जीवन का स्पंदन सुन सकते हैं".[2] अतः शिवप्रसाद सिंह के जीवन का मूललक्ष्य सामाजिक होने के कारण नई ग्रामीण परिस्थितियों से संबद्ध है। नई ग्रामीण जीवन-स्थितियों के अन्तर्गत भारतीय जीवन की प्रगति और परंपरा भी निहित है तथा उस के बीच अभिव्यक्त होनेवाली नई समस्या भी है।

<u>जीवनवृत्त</u>

शिवप्रसाद सिंह का जन्म उन्नीस अगस्त सन् 1928 को उत्तर प्रदेश के जलालपुर गाँव के एक भूतपूर्व जमीन्दार परिवार में हुआ था। पिता श्री चन्द्रिका प्रसाद सिंह

---

1. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 70.
2. आज की कहानी: प्रगति और परिमिति - शिवप्रसाद सिंह का लेख, पृष्ठ 145-46.

तथा माता कुमारीदेवी के साथ शिवप्रसाद सिंह का बचपन, परंपरागत संस्कार-शील संयुक्त, हिन्दू परिवार में बीता । गाँव में ही उन को प्रारंभिक शिक्षा हुई । सत्रह अठारह वर्ष तक गाँव की उन्मुक्त प्रकृति की गोद में पलने का अवसर उन्हें मिला । गाँव के भोले-भाले साधारण किसानों और मज़दूरों के साथ निकट का संबंध प्राप्त हुआ । हिन्दू कालेज जमानियाँ, उदयप्रताप कालेज, वाराणसी तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की । संयुक्त परिवार के टूटने के साथ ही शिक्षा में निरन्तर आर्थिक बाधायें आती रहीं, कई बार पढ़ाई छूटते-छूटते बची । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् 1957 में "सूरपूर्व ब्रज भाषा और उस का साहित्य" विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त कर ली । सन् 1956 से वे इसी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापक बने थे। संप्रति वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आचार्य हैं । लेखक, अध्यापक तथा शोध निर्देशक के रूप में भी आप पर्याप्त सफल रहे हैं । उन की पत्नी श्रीमती धर्मा है जो सहज और सौम्य प्रकृति की है ।

कहानीकार के रूप में शिवप्रसाद सिंह ने अपने लिए एक विशिष्ट क्षेत्र चुन लिया है । इस में वे कहाँ तक सफल रहे, यह अलग बात है । लेकिन इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि अपने विशिष्ट रचना संसार को विशिष्टता का आवरण प्रदान करने का कार्य भी उन्होंने किया है । अपने को किसी भी लेखक की परंपरा के नाम पर गिरवी रखना भी नहीं चाहते । उन्होंने लिखा है - मैं किसी भी लेखक की परंपरा, के नाम अपने को गिरवी नहीं रखना चाहता । मैं लेखकीय स्वतंत्र्य को इन्तहा तक स्वीकार नहीं करता, अमल में लाना चाहता हूँ । मैं शिवप्रसाद परंपरा का आरंभिक और अंतिम लेखक हूँ।[1] । यह लेखकीय स्वतंत्रता की उद्घोषणा मात्र है । युगीन परिस्थितियों या युगीन प्रवृत्तियों से अपने को काटने का कोई उपक्रम नहीं है ।

---

1. प्रश्नों के घेरे, सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 196-97.

बाह्याकार का लेखन के साथ कोई संबंध नहीं है । पर आकार के साथ जुड़े हुए विशिष्ट रंग-ढंग का विशेष महत्व है । स्वानुशासित स्वभाव उन का रहा है । पक्का गेहुआ रंग, भरा हुआ "क्लीन शेव्ड" चेहरा, तीखी नाक, काफी बड़ी-बड़ी आँखें तथा औसत से ज्यादा ऊँचे कद के शिवप्रसाद सिंह को देख कर कोई कह उठेगा कि "प्रसाद जी के नायक की परिकल्पना साकार हो गयी है"[1] । उन के व्यक्तित्व से गंभीरता, उदात्तता और लालित्य का मेल स्पष्ट झलकता है । वे गंभीर स्वभाव वाले तथा कम शब्दों के आदी हैं । इसलिए कुछों को शिकायत है कि वे अन्तर्मुखी हैं और मिलना-जुलना भी बहुत कम है । शिवप्रसाद सिंह स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि "मैं अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ । यह मेरा स्वभाव है । जब तक कोई खुद बातचीत शुरू नहीं करता, मैं चुप ही रहता हूँ । शायद इसलिए लोग मुझे गैर मिलनसार मानते हैं"[2] । निकट संबंध हो जाने पर वे साहित्य पर घंटों बातें करते रहते हैं । वे एकांत प्रिय व्यक्ति हैं । इतने पर भी जीवन को सहजता के साथ उन्होंने आत्मसात किया है । इसलिए सरलता के वे कायल दीखते हैं जो उन के रहन-सहन का आधार है । घर में पढ़ने-लिखने, उठने-बैठने का एक ही कमरा है, जिस में नाश्तर-पानी, गपशप सब चलता है । "कभी न फूलों के गुलदस्ते सजाए, न चिकने कागज की खोज की, न खुशबू के लिए कोई सरंजाम किया । हाँ, खालिस गरमी, स्वाभाविक बरसात और तेज सर्दी केलिए कमरा हमेशा "स्वागतम्" का बोर्ड लगाये प्रतीक्षा करता रहता है । इसी कमरे में छात्र, अतिथि, मिलने केलिए बाहर से पधारे प्रेमी पाठक सभी आते हैं ...."[3] । मोटी-मोटी पुस्तकें, फाइलें, पाँडुलिपियाँ, पत्रों के बंडल सब कुछ इसी कमरे में दिखाई पड़ते हैं । यहीं बैठ कर साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष,

---

1. सारिका, 1 फरवरी 1980, पृष्ठ 10.
2. वही पृष्ठ 15.
3. प्रश्नों के घेरे, सं: राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 196.

गणित आदि विषयों का गंभीर अध्ययन भी करते हैं । यहीं बैठ कर वे रचना में भी रत हो जाते हैं । लिखने के वातावरण के संबंध में उन को प्रतिक्रिया यही है - "आप का मतलब अगर बाहरी वातावरण से है, यानी झील, पहाड़, नदी, समुद्र के निकट होना आदि, तो वह कभी हुआ नहीं । यदि वातावरण का मतलब कोई ऐसी चीज़ का होना है जो सामान्य आदमी के पास नहीं होती तो कहना होगा कि वह वातावरण मुझे नहीं मिला । बस, एक वातावरण है - फूल की तरह खिल खिलाते, लड़ते-झगड़ते, उदास और गीत गाते हज़ारों विद्यार्थियों के बीच रहने का सुख । लिखने केलिए सन्नाटा चाहिए, चाहे रात में मिले या चिलचिलाती लू-भरी दोपहर में"[1] । लेखन कार्य को नियमों और अनुशासनों के कटघरे में रखना वे पसंद करते ही नहीं हैं । उन के लिखने-पढ़ने का कोई निश्चित समय नहीं है । जब "मूड" आता तब लिखने लगता । कहानी दो-तीन "सिटिंग" में लिख लेता तो उपन्यास केलिए दो-तीन वर्ष । कथा कहने के प्रति बचपन में ही उन में लगाव रहा है । बचपन की कहानियों का असर उन पर पड़ा खूब है । बचपन में दादी और माँ से सुनी बहुत ही जागृत कहानियाँ हैं । इन की पहली कहानी "दादी माँ" में अपनी दादी की छवी उभर आयी है । माँ कहानियों के सिवा गाथायें भी गाकर सुना देती थी । इसलिए ही उन्होंने लिखा है -"मैंने साहित्यिक जीवन का आरंभ कविताओं से किया, किन्तु उस समय भी मेरे ऊपर लोक कथाओं की एक अजीब मोहिनी छायी हुई थी"[2] । लोककथाओं के बृहत् संसार से उन्होंने अपनी कथा शुरू की।

प्रभाव ग्रहण को वे एक अलग स्तर पर लेते हैं । रचनाओं और चिंतन के प्रभाव से बढ़ कर व्यक्ति संबंध को वे महत्व दे देते हैं । उसी प्रकार रचनाकारों के प्रभाव से बढ़ कर उन के व्यक्तित्व के किंचित अंशों से जुड़ने के आग्रह को उन्होंने व्यक्त किया है ।

---

1. प्रश्नों के घेरे, सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 196.
2. अब, अप्रैल 1973, पृष्ठ 5.

कई व्यक्तियों के व्यवहारों से तथा उत्साह वर्धक स्नेह के कारण प्रभावित हो गये हैं । हाई-स्कूल में पढ़ते समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से, इन्टर में पढ़ते समय प्रिंसिपल जगदीश प्रसाद सिंह से, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में आने पर हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव उन पर पड़ा है । लेखकों में चेखाव और गोर्की का प्रभाव है ।

अरविन्द दर्शन से शिवप्रसाद सिंह प्रभावित हुए । एक अरसे तक अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव भी उन पर रहा था । इस के संबंध में उन्होंने लिखा है - "मैं विश्वास करता हूँ कि मानव की यात्रा निरन्तर ऊर्ध्वगामी रही है । अरविन्द ने मुझे एक ऐसे नये लोक का दर्शन कराया जिस में एकान्तवास को सार्थक बनाने का उपाय मालूम हुआ । मेरे लिए वे (अरविन्द) एक चिन्तक के रूप में संग्रहणीय है"[1] उन्होंने अस्तित्ववाद का गहन अध्ययन किया । अपनी कहानी "मुरदासराय" के संदर्भ में अस्तित्व वादी सिद्धान्त को जोड़ते हुए उन्होंने कहा है - "अस्तित्ववाद वहाँ कहानी में सिर्फ इतना है कि मुरदा सराय में उस को शान्ति मिले । यह भारतीय मन का चिन्तन है कि जीवन अदम्य होता है । मृत्यु से वह डरता नहीं । वह पुन: जीवन के संघर्ष में लौट जाता है । अस्तित्ववाद पर मैं लिख रहा था । उस दरम्यान मेरा चिंतन अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित था । उस में आकर कहानी की वस्तु अपने आप अस्तित्ववादी प्रभाव ले कर उभरी । अस्तित्ववाद तो था ही मन में, लेकिन मैं ने गौर किया कि जब मैं अस्तित्ववाद के संपर्क में नहीं आया था तब भी अनेक कहानियाँ ऐसी थी जो अस्तित्ववाद के बहुत करीब थीं, जैसे "अंधकूप", "नन्हो" आदि । "नन्हो" में अस्तित्ववाद आत्मनिर्वासन के रूप में आया है"[2] । यहाँ ध्यान देने की

---

1. सारिका, 1 फरवरी 1980, पृष्ठ 11.
2. सारिका, 1 फरवरी 1980, पृष्ठ 12.

बात यह है कि उन्होंने अस्तित्ववाद को उस ढंग से स्वीकार नहीं किया जैसे वस्तुत: स्वीकार किया जाता है । उन्होंने जीवन के कुछ विशेष पहलुओं के साथ अस्तित्ववाद की प्रासंगिकता देखी । अरविन्द दर्शन तथा महर्षि अरविन्द की जीवनी "उत्तरयोगी श्री अरविन्द" नामक ग्रन्थ का विषय है ।

शिवप्रसाद सिंह किसी विशेष राजनीतिक दल पर विश्वास रखने वाले नहीं । अगर उन से पूछे कि "डाक्टर साहब, आप कौनसी पार्टी "बिलोंग" करते हैं" ? तो बहुत संभव है वे उत्तर दें - "मैं उस पार्टी का सदस्य हूँ जिस के सामने मनुष्य से बडी कोई ईकाई नहीं है, मनुष्यता से बडा कोई मज़हब नहीं है मैं उसी मनुष्य की अबाध विजय यात्रा का ध्वजवाहक हूँ उसी की आत्मा के अपूर्व सौन्दर्य का चितेरा हूँ और इसी सत्य की विजय केलिए सचेष्ट हूँ । जो भी इस के पक्ष में है, इस के साथ है, मैं उन के साथ दिखाई पड़ता हूँ । जो इस का नाम ले कर अपना स्वार्थ साधते हैं मैं उन का पर्दाफाश करता हूँ"[1] । राजनीतिक स्थितियाँ जिस प्रकार अपनी अनैतिक उपस्थिति से हर एक को आतंकित कर रही है उसी से शिवप्रसाद सिंह को यह कहने केलिए बाध्य होना पड़ा है - "मैं ने अपनी बुद्धि के अनुसार जो भी थोड़ी-बहुत मयस्सर हुई, मुखौटों के उतारने में अपनी सार्थकता मानी है, अब तक कहानी, निबंध और उपन्यासों में राजनीति के गलित कुष्ट उघाडने की कोशिश की, पर जकडबन्दी ऐसी कसती जा रही है कि भविष्य में कोई भी साहित्यकार दमघोंट राजनीति पर कुछ कहने केलिए "खुल्ला" छोड़ दिया जायेगा, संभव नहीं लगता । अपनी रोज़ी-रोटी केलिए हर सुविधा-जीवी बौद्धिक को कहीं-न-कहीं प्रतिबद्ध बनाने की कोशिशें जारी है । अन्तरात्मा लडेगी, यह विश्वास दिला सकता हूँ, पर नतीजा पता नहीं"[2] । यद्यपि प्रकटत: किसी राजनीतिक दल के साथ संबद्ध न होने पर भी उन का दृष्टिकोण प्रगतिगामी है, मनुष्योन्मुखी है । एक रचनाकार को अन्तत: मनुष्योन्मुखी दृष्टिकोण अपनाना है ।

---

1. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 68.
2. प्रश्नों के घेरे, सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 198.

समकालीन आस्थाओं के प्रति प्रतिकूल होने की बात वे करते नहीं हैं । एक सचेत रचनाकार की हैसियत से उन्होंने समसामयिक विषयों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । इस का एक उदाहरण यही है कि हिन्दी के प्रचार और प्रसार के विरोध में तमिलनाड में जो आंदोलन हुआ उस अवसर पर उन्होंने जो बातें लिखीं वे वस्तुत: आज भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं । इस विषय में उन का विचार है हिन्दी वाले तमिल दिवस मनायें । मेरा निवेदन है कि जनमत जाग्रत करने के लिए अंग्रेज़ी हटाओं सम्मेलन का एक वार्षिक क्रम चलाया जाये और ये सम्मेलन बहरहाल हिन्दी क्षेत्र में ही सीमित रहे तथा प्रति वर्ष इस सम्मेलन के अवसर पर हिन्दीतर किसी भाषा का "प्रसारोत्सव" भी मनाया जाया करे । इस तरह हम हिन्दी क्षेत्र में जहाँ अंग्रेजी को हटाने का अभियान तीव्र करें वहीं हिन्दी के अलावा दूसरी भारतीय भाषाओं के प्रति अपनी आत्मीयता का सक्रिय प्रमाण भी उपस्थित कर सकेंगे"[1] । भारत की भाषा समस्या के बारे में कईयों ने विचार किया है । शिवप्रसाद सिंह के विचार का यही वैशिष्ट्य है कि वे सब से पहले भारतीयता पर विश्वास करते हैं । जब तक भारतीय भाषाओं में मेल नहीं होगा, हिन्दी प्रदेश वाले दक्षिणी भाषाओं से परिचित नहीं होंगे तब तक हिन्दी की प्रगति संभव नहीं है । भाषाओं के बीच की दूरी तभी मिट सकती है जब उस की वास्तविक अस्मिता बन जाएँ ।

अस्तित्ववादी दर्शन तथा अरविन्द दर्शन के प्रभाव को स्वीकार करने के पश्चात जब वे स्पष्टता के साथ सामाजिकता की बात कहते हैं तो विरोधाभास-सा लग सकता है । लेकिन यह भी देखना ठीक रहेगा कि उपरोक्त सूचित दर्शनों में से किन किन पक्षों को उन्होंने अपनाया है । दर्शन को उन्होंने मानवसापेक्ष बना कर स्वीकार किया था ।

---

1. आधुनि परिवेश और नवलेखन, पृष्ठ 62.

यह सूचित किया जा चुका है कि शिवप्रसाद सिंह ग्रामीण कहानी के प्रथम प्रवक्ता रह चुके हैं । कथासाहित्य के बारे में भी उन्होंने सुचिंतित एवं सुव्यवस्थित मत प्रकट किये हैं । उन्होंने अपनी कहानियों के संबंध में यों लिखा है - "आँसू और हँसी के ये धूपछाही अम्बर इन कहानियों के परिधान है । ज़िन्दगी यहाँ रोती ही नहीं मुस्कुराती भी है"[1] । इस के साथ-साथ ग्रामीण मो को भी संवारता है । यह मोह उन केलिए एक अपरिहार्य अंग-सा है जिस को उन्होंने सिर्फ ओढ़ा नहीं है, बल्कि उन्होंने आत्मसात किया है, अपने लेखन की पूरी अस्मिता इसी मोह के साथ जोड़ते हैं - "मेरी ज़िन्दगी में एक ऐसी हकीकत है जिसे मैं चाह कर भी काट नहीं सकता । गाँव की अछोर हरियाली में डूबे सीमाँत, फसलों के रंगबिरंगे गलीचे बिछाकर किसी अनागत की प्रतीक्षा में डूबी धरती, सरसों, जलकुंभी और झरबेरी के जंगली फूलों से मदहोश वातावरण के बीच अपनी सामान्य ज़िन्दगी केलिए संघर्षरत किसान मेरी कहानियों के अविभाज्य अंग हैं.[2] । इस के साथ ही साथ गाँव के जीवन की धडकनें, अब भी सडी गली परंपरा और कूटस्थ रूढ़ियों का कूडा-कचरा ढ़ोती हुई कराह रही है, मेरे कहानीकार केलिए सदा एक चुनौती रही है"[3] । इस चुनौती को उन्होंने स्वीकार किया है । रचनात्मकता के संदर्भ में इस दृष्टिकोण की अपनी प्रासंगिकता है । यह एक प्रकार की लोकचेतना का अन्वेषण है । उन्होंने कहा है कि हमारी अपनी ज़मीन की उर्वरता और सही शक्ति ग्रामीण धरती के पास ही है । एक सच्ची भारतीय जीवन-पद्धति है वह हमें प्रकृति या अन्य माध्यमों से ज्यादा साफ और जीवन्त रूप में गाँवों में मिलती है.[4] । यह आग्रह एक कलाकार

---

1. आर-पार की माला - कहानी संग्रह, एक मिनिट ।
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - भूमिका ।
3. वही
4. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 70.

केलिए अवांछित नहीं है । क्योंकि यह सिर्फ ग्रामीण कहानीकार का वक्तव्य ही नहीं है । यह एक स्वस्थ दृष्टिकोण है जिस में लेखक की अपनी वास्तविक परंपरा की खोज निहित है । इस का यह अर्थ नहीं है कि यही एकमात्र सच्चाई है । यह ऐसी एक सच्चाई है, जिस को कहीं हम ने छोड दिया था । शिवप्रसाद सिंह जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इसे खोज निकाला । शिवप्रसाद सिंह के कथन का परिप्रेक्ष्य हिन्दी कहानी की इस धारा को एक प्रीतिप्रद स्थिति है । लोकोन्मुखता की प्रवृत्ति के उन्मेष से ये रचनाकार हमें जीवन के वास्तविक धरातल तक ले चलते हैं । शिवप्रसाद भी यही चाहते हैं ।

साहित्यिक विचार

आंचलिक कहानीकार होने के साथ-साथ वे हिन्दी के एक प्रतिष्ठित आलोचक भी हैं । समय-समय पर उन्होंने सामाजिक एवं साहित्य के बारे में भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । साहित्यकार की अपनी मान्यताओं के उपलक्ष्य में भी उन की रचनाओं का अध्ययन विश्लेषण किया जा सकता है । कलाकार के स्वत्व के बारे में शिवप्रसाद सिंह का मत इस प्रकार है - "कलाकार का मन, सृजन की शक्ति और प्रक्रिया के बारे में सचेत होने के कारण कुछ भिन्न हो जाता है । क्रिया की समस्यायें, वस्तुओं के स्वभाव और समय का छंद, मन की जागरूकता के अलग-अलग पहलू हैं"[1] । साहित्यकार की भोगी हुई स्थिति को भी उन्होंने पहचानी है - "लेखक केलिए भोगी हुई ज़िन्दगी का एहसास अधिक ज़रूरी है और उतना ही ज़रूरी लेखक को कुछ काल केलिए तटस्थ हो जाना है, ..."[2] । कलाकार भी सामाजिक सदस्य है । इसलिए समाज से कच्चा माल स्वीकार करता ही है । लेकिन इस को कलात्मक ढंग से परिवर्तित करता है । अतः अनुभव की प्रखरता उस में प्राप्त होती रहती है ।

---

1. लहर, नवंबर-दिसंबर 1965, पृष्ठ 111 या मुरदासराय कहानी संग्रह - कुछ न होने का कुछ, पृष्ठ 9.

2. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, पृष्ठ 72.

रचनाप्रक्रिया

साहित्यकार की रचनाप्रक्रिया की वास्तविक स्थिति प्राय: आवृत रहती है । लेकिन उन की रचनाओं को सूक्ष्मता के साथ देखा जाय तो रचना प्रक्रिया की कुछ निजी अवस्थायें मिल भी जाती हैं । साहित्यकार पर पड़ा हुआ बाहरी प्रभाव, उन के चिन्तन-क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने की अवस्था इत्यादि से भी उन के व्यक्तित्व के कुछ पहलू स्पष्ट होते हैं । लेकिन रचनाप्रक्रिया रचनाओं तथा रचनाकार की वास्तविक अवस्था का परिचायक है । लेखन केलिए स्वीकृत संकेत आदि इस के पक्ष हैं ।

अपनी कहानियों के वैचारिक स्तर के संबंध में उन्होंने बहुत कुछ सूचित किया है । धरती और प्रकृति के मिलन की बात वैचारिकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । लेकिन जब कहानी की रचना के दौरान पहले चरित्र ही एकत्र होते हैं ; फिर उन के इर्द-गिर्द घटनायें सिमटती हैं । इस रीति में कथानक के बिखर जाने की संभावना है । लेकिन आधुनिक कहानी केलिए यही पद्धति अनुकूल पड़ती है । शिवप्रसाद सिंह स्वीकार करते हैं कि "सृजन प्रक्रिया की दृष्टि से उन्हें परिस्थितियों से संवलित-आश्लेषित चरित्र पहले आकृष्ट करते हैं"[1] । इस कारण से इन की अनेकानेक कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं" और इन की "पचास प्रतिशत से अधिक कहानियों की प्रेरणा में चरित्रों का योग है ...."[2] । उन्होंने स्वयं स्वीकारा भी है - "मेरे लेखन की प्रेरणा मेरे आस-पास के जीवन को जीनेवाला सामान्य आदमी हैं । मैं लिखता तो उसी केलिए हूँ, ..."[3] दृष्टि की यह चरित्रबद्धता उन की रचना यात्रा का प्रथम पड़ाव है । उन्होंने व्यक्तियों पर जीवनानुभव को केन्द्रित किया । कभी ये चरित्र अपनी निजता के साथ अवतरित

---

3. प्रश्नों के घेरे, सं. राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 195.

1. मुरदा सराय, कुछ न होने का कुछ, पृष्ठ 12.

2. लहर, नवंबर-दिसंबर 1965, पृष्ठ 113.

होते हैं, कभी अपने वर्ग की अस्मिता को ले कर । लेकिन यह व्यक्तिवादी दृष्टिकोण नहीं है । आस-पास बिखरी आस्थाओं को उन्होंने व्यक्तिसत्ता में अनुभव किया है । स्वयं उन्होंने अपनी एक कहानी "धारा" का विश्लेषण करते हुए यह व्यक्त किया है - "कहानी है "धारा", जो पिछले वर्ष "नयी कहानियाँ" में छपी थी । इस में एक प्रमुख चरित्र है तिउरा । गाँव से दूर एक जंगली परती के छोर पर झोंपड़ियों में रहने वाले एक आदिम संस्कृति के भग्नावशेष परिवार की लड़की । मुसहर, कंजड़ या ऐसी ही कुछ ।

इस कहानी को "मैं" कहता है, जो लेखकीय ईकाई है, थोड़ी छद्म, थोड़ी खुली । पहली बार इस लड़की को देखते समय "मैं" एक पेड़ के नीचे बैठा है, जिस की बारिश खुली जड़ों का स्तूप उघड़ा हुआ दीख रहा है "जमीन भी जाने कैसे कैसे भेद छिपाए रहती है । इसे देख कर पहली बार यह ज्ञात हुआ कि पेड़ों की शाखें, जितनी लंबी, चौड़ी, छितनार ऊपर होती है, उन की जड़ें भी उतनी लम्बी-चौड़ी फैली नीचे होती हैं । यह पंक्ति उस पेड़ के बारे में जितनी मौजूँ है, उस से कहीं अधिक आदमी के जीवन के बारे में, जिस की परंपरा और आधुनिकता की जड़ें और शाखें प्रतिकूल दिशाओं में छाई हैं, फिर भी दोनों ही एक ही पेड़ का हिस्सा हैं । तभी "मैं" उस परती को देखता है, उस के छोर पर स्थित झोंपड़ी को, और लगता है "आबादी जैसे हल-फाल के साथ हमेशा इस परती को तोड़ने की कोशिश कर रही है, फिर भी पूरी तरह इसे अपने जोत में मिला न सकी" आबादी और जोत, मानी आधुनिक संस्कृति की धारा के बीच कुछ ऐसे द्वीप हैं, जो उस में पूरी तरह घुल-मिल न सके । यह संघर्ष जारी है । आदिम जीवन के संस्कारों को हमारी आधुनिक सभ्यता तोड़ रही है, पर ऐसे चरित्र हैं, जो पूरी तरह उस धारा में नहीं आए । ये धारा में आयें, मैं इस का पूरा समर्थक हूँ । मैं आधुनिक जीवन की प्रगति और भविष्योन्मुखी महायात्रा में आस्था रखता हूँ । धारा में आस्था रखता हूँ । पर धारा में कूदने या बहा लिये जाने का दर्द भी समझना चाहता हूँ । "तिउरा" पास के कस्बे की एक आढ़त

में काम करती है । साड़ियाँ, भाउजें, आधुनिक जीवन के आकर्षण दिखा कर मुनीम उसे एक दूसरी दिशा में मोड़ता । तिउरा ने ईमानदारी के साथ आधुनिक सभ्यता की दिशा में मुड़ने की कोशिश की । उसे गर्भवती होने पर मुनीम छोड़ देता है, और उस के माँ-बाप, उसे घर से नहीं निकाले बल्कि परती की उस झोंपड़ी को छोड़कर, और तिउस को भी, चले जाते हैं । इसी बीच "मैं" जो एक पढ़ा-लिखा बेकार और उपेक्षित प्राणी था, नौकरी पा जाता है । माँ-बाप खुश हैं । आधुनिक सभ्यता की इस नई उपलब्धी, यानी शहर में नौकरी पाने की खबर पर । पर "मैं" सोचता है "नई ज़िन्दगी कौन-सी है, वह, जो मैं अभी अभी खतम कर चुका हूँ, जहाँ मेरे लिए कोई सहारा न था" । स्पष्ट ही यह प्रश्न उन सब केलिए है, जो धारा में उत्साह से कूदे, पर न तो उस किनारे पहूँचे, कहाँ कोई सहारा मिले न इस किनारे, जहाँ उन को 'पुराने' का ठिकाना था । धारा में कूदने वाला हर कोई पार ही तो नहीं लगता, और जो नहीं लगे, क्या उन की ज़िन्दगी कम आधुनिक है ? कहानी चरित्र प्रधान है । तिउरा का चरित्र ही मुख्य है, मगर यह चरित्र एक "अइडिया" में बदल जाता है"[1] । निजी अनुभव और भोगे हुए सत्य की परछाइयाँ इस चरित्रबद्ध दृष्टि को प्रासंगिक बनाती है ।

शिवप्रसाद सिंह की "रचना प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु, वस्तुओं के स्वाभव से संबद्ध है । अपने बाहर, और मानवीय अस्तित्व को छोड़ कर, दूसरा जो कुछ भी है, सभी पदार्थ हैं, वस्तुएँ हैं"[2] । कथाकार व्यक्तियों और पदार्थों के बीच आन्तरिक स्तर पर बनते-बिगड़ते संबंधों के प्रति सतत् जागरूक हैं । अनजाने स्थापित संबंध, असामान्य मनस्थिति में या अबोध अचेतनता में टूट या बदल जाता है । व्यक्ति-पात्रों से अनुभव के विस्तार की ओर उन की रचना-दृष्टि का यह एक विकास है ।

---

1. लहर - नवंबर-दिसंबर 1965, शिवप्रसाद सिंह का लेख - मेरी रचना प्रक्रिया - से उद्धृत, पृष्ठ 114-116.
2. वही पृष्ठ 116.

वस्तुत: आँचलिक कहानीकार के लिए यह आवश्यक भी है ! क्योंकि उस का वातावरण इतना व्यापक होता है उस में रचे-बसे आदमी को, उस आदमी के पूरे परिवेष को, प्रस्तुत करना उस के रचना कर्म का महत्वपूर्ण अंग है ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में प्राय: एक "मैं" मिल जाता है । "मैं" वस्तुत: व्यक्ति सत्य का उत्तम पुरुष ही नहीं, सत्य का साक्षी और भोक्ता पुरुष भी है । उन्होंने लिखा है - "यह "मैं" समय के प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धता का साक्षी है, जिस के माध्यम से जीवन के प्रत्येक अक्स को मैं सही ढंग से देखना चाहता हूँ । दूसरी ओर यह "मैं" इस बात का भी सबूत है कि "मैं" वर्तमान युग में, जो सामूहित और यांत्रिक सत्याभासों से परिचालित होने केलिए विवश है, अपने निजी खून-मांस से उपलब्ध सत्य को कहने का प्रयत्न करता है । यह "मैं" एक प्रकार से सभी प्रकार के अनुभव खंडों, बिम्बों, प्रतीकों, चरित्रांशों तथा सन्देहों को सहज सरलीकृत कर के एक स्वाभाविक अन्तर्निहित एकता के छन्द में ढ़लने का माध्यम बन जाता है"[1] । रचना-प्रक्रिया के प्रसंग में हो तो शिवप्रसाद सिंह के भोगे हुए अनुभव की बात कही है । लेकिन लेखक के नाते उन की समस्या भी यही थी कि आत्मनिष्ठ प्रतीति को वस्तुनिष्ठ कैसे बनाई जाएं । अनुभवों को आत्मीयता के साथ संप्रेषित करने केलिए लेखक प्रथम पुरुष का प्रयोग करता है । लेकिन यह आधुनिक प्रवृत्ति मात्र है । प्रथम पुरुष पात्रों का प्रयोग आधुनिक साहित्य में बराबर मिलता है । शिवप्रसाद सिंह की रचना प्रक्रिया में यह अन्तद्वन्द्व बराबर बना रहता है । व्यक्ति से वातावरण की ओर और वातावरण से व्यक्ति की सत्ता की ओर का संक्रमण उन की रचना प्रक्रिया का प्रमुख अंग है ।

---

1. लहर, नवंबर-दिसंबर 1965, पृष्ठ 121.

कथेतर रचनाओं का सामान्य परिचय

शिवप्रसाद सिंह के पाँच कहानी-संग्रहों के अलावा दो उपन्यास - "अलग-अलग वैतरणी" और "गली आगे मुड़ती है", एक नाटक - "घाटियाँ गूँजती हैं", तीन समीक्षात्मक कृतियाँ- "विद्यापति", "आधुनिक परिवेश और नवलेखन" तथा "आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद", दो शोधग्रन्थ - "कीर्तिलता और अवहट काव्य" तथा "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उस का साहित्य", एक जीवनी - "उत्तरयोगी श्री अरविन्द" तथा तीन ललित निबंध संग्रह - "शिखरों का सेतु", "कस्तूरि मृग" और "चतुर्दिक" आदि प्रकाशित हैं ।

उपन्यास

1. अलग-अलग वैतरणी

1967 अपने प्रथम उपन्यास की रचना के संबंध में उपन्यासकार स्वयं कहते हैं सन् 1960 के बाद मन में आया कि स्फुट कहानियों से बात नहीं बनेगी । किसी सुनिश्चित प्रयास से लिखा हुआ "मेजर वर्क" सामने आना चाहिए । तब मैं ने "अलग-अलग वैतरणी" लिखी । इसे सन् 64 के आस-पास शुरू किया एवं सन् 66 में खत्म हुआ".[1] । इस उपन्यास में लेखक ने उत्तर प्रदेश के करैता गाँव को समस्त भारतीय गाँवों के प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण कर के वहाँ की जीवन-स्थितियों को यथार्थवादी ढंग से चित्रण प्रस्तुत किया है । यह "एक प्रकार से गाँव की जिन्दगी का दस्तावेज है, जिसे ग्रामात्मा की खोज भी कहा गया है"[2] । यह व्यक्ति विशेष की कहानी न

---

1. सारिका, 1 फरवरी 1980, पृष्ठ 12-13.
2. विवेकी राय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथासाहित्य और ग्रामजीवन, पृष्ठ 156.

हो कर संपूर्ण गाँव, उस के लगभग दो दर्जन ग्रामीण परिवारों की कहानी अत्यंत संश्लिष्ट रूप में बनी हुई है । लक्ष्मी कान्त वर्मा ने इस उपन्यास के बारे में यों लिखा है - "मैं समझता हूँ भारतीय मानस के इस उथल-पुथल और संघर्ष का सफल प्रतिनिधित्व इधर प्रकाशित उपन्यासों में सब से अधिक सजीव, सरल, समग्र वैविध्य के साथ डा. शिवप्रसाद सिंह ने इस लंबे उपन्यास में ही हुआ है"[1] । इसे एक आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है ।

2. गली आगे मुड़ती है (1974)

इस उपन्यास का केन्द्र स्थान काशी है । लेखक का मुख्य उद्देश्य, गंगा की कमर पर रखे संस्कृति के इस लबालब भरे कलश को सही ढंग से प्रस्तुत करने का रहा है । इस प्राचीन नगर की बदलती हुई संस्कृति को बाँधने के साथ ही साथ युवकों में फैले असंतोष का भी परिचय मिलता है । शिवप्रसाद सिंह ने अपनी इस रचना के बारे में लिखा है - यह उपन्यास युवा आक्रोश की नाना शक्लों से यदि आप को घनिष्ट रूप से परिचित करा सके तो लेखक का श्रम सार्थक है.[2] । उपन्यासकार ने युवा आक्रोश के वैविध्य केलिए काशी के व्यापक, बहुआयामी नगरी परिवेश को चुना है जो उन की सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत है । विश्वविद्यालय के जीवन के वातावरण को भी उन्होंने इस केलिए चुना है ।

निबंध संग्रह

1. आधुनिक परिवेश और नवलेखन - इस का प्रथम प्रकाशन 1970 में हुआ था । बारह-तेरह वर्षों में शिवप्रसाद सिंह ने "नवलेखन के विषय में जो कुछ सोचा-समझा, जिया-झेला, उस का खाका इन निबंधों में मिलेगा"[3] । यह ग्रन्थ नई कविता और नई

---

1. ज्ञानोदय, फरवरी 1968; पृष्ठ 139.
2. गली आगे मुड़ती है - शिवप्रसाद सिंह, भूमिका पृष्ठ 1.
3. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लेखकीय

कहानी से संबंधित उनतीस लेखों का संग्रह है । लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि नाटक आदि क्षेत्रों में जो परिवर्तन आया है उस का विस्तृत अध्ययन इन निबंधों, में नहीं है । इन निबंधों में नवलेखन के विषय में शिवप्रसाद सिंह के विचारों का, कहीं बीज-बिन्दुवत् और कहीं पल्लवित-प्रसारित अवस्था में देख सकते हैं । हिन्दी साहित्यक्षेत्र में कविता और कहानी में नवलेखन की तीव्रतम प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती थीं । इसलिए इन दोनों को आधार बना कर इस विषय पर अध्ययन करना भी नवलेखन और उस के परिवेश को समझने केलिए अधिक सहायक होगा ।

कथाकार होने पर भी क्यों वे नई कविता की ओर आकृष्ट हुए, इस के बारे में उन्होंने लिखा है - मैं नई कहानी के समानान्तर प्रवाहित इस भगिनी धारा को जानना और जहाँ तक हो सके उस से कुछ पाने की कोशिश करना अपना कर्तव्य मानता हूँ ......"[1] । इस के साथ ही साथ "पिछले बीस वर्षों से नई कविता के प्रति बनती - मिटती अपनी प्रतिक्रियाओं को ताज़ी करने केलिए"[2] भी नई कविता का अध्ययन उन्हें आवश्यक जान पड़ा है । इस कारण नई कविता से संबंधित पाँच-छः निबंध इस संग्रह में हैं ।

वे एक नई कहानीकार हैं । नई कहानी और विशेषकर ग्रामीण कहानी के प्रवक्ता भी हैं । इसलिए नई कहानी के विषय में समय समय पर लिखे दस निबंध भी इस में शामिल हैं ।

2. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद (1973)

दूसरे विश्व युद्ध के बाद बौद्धिक जगत को अस्तित्ववाद ने बहुत अधिक प्रभावित किया है । शिवप्रसाद सिंह भी इस दार्शनिक आन्दोलन के प्रभाव में आ गये तथा उस

---

1. आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृष्ठ 252.
2. वही

के उन्नायकों के संबंध में अध्ययन करना शुरू किया । कीर्केगार्द से लेकर काफ्का तक के दार्शनिकों एवं रचनाकारों के संबंध में उन्होंने लेख लिखे जो "धर्मयुग" में क्रमश: प्रकाशित होते रहे । दस निबंधों के इस संग्रह का प्रथम लेख कीर्केगार्द के अस्तित्ववादी चिंतन पर केन्द्रित है । लेकिन शिवप्रसाद सिंह ने इस चिंतन को अपने ढंग से देखने का कार्य भी किया है कि वह हमारे लिए कितना उपयोगी है और उस के साथ संबद्ध होनेवाले व्यक्ति के लिए वह स्पृहणीय क्यों है । अस्तित्ववाद आज परिवेश में हमें क्या सहायता देगी, उस के बारे में वे लिखते हैं यह इतना अवबोध तो दे ही देती है कि आदमी चारों ओर छाये हुए मकड़े-जाले के बीच झूलती हुई अपनी स्थिति का सही विश्लेषण कर सके । अस्तित्ववाद ने दार्शनिक परिपाटी को तोड़ कर जो सहानुभूतिपरक रास्ता दिखाया, उस के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व कुहेलिका का शिकार होने से बच सकता है, भले ही वह व्यक्तित्व त्रास, भय, कुण्ठा आदि का शिकार होने के कारण सार्थक न लगे"[1] । इस लेख के बाद नीत्शे, दस्तोवस्की, सार्त्र, काफ्का, कामू, बर्दिएफ आदि दार्शनिकों, चिन्तकों तथा साहित्यकारों के बारे में भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

3. विद्यापति (1957)

"विद्यापति" शिवप्रसाद सिंह के आलोचक पक्ष को व्यक्त करनेवाला एक विश्लेषणात्मक ग्रन्थ है । इस में उन्होंने कवि के रूप में विद्यापति के महत्व को रेखांकित करने का कार्य किया है । साथ ही उन्होंने विद्यापति के व्यक्तित्व के अनूठे पक्ष पर भी प्रकाश डाला है । शिवप्रसाद सिंह ने सही लिखा है - "इन पदों में कवि ने राजाओं के विलास को नहीं, जनता के सहज हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति की है"[2] । कृतियों के मूल्यांकन के पश्चात उन्होंने "विद्यापति-गीतिका" नाम से इन

---

1. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 18.
2. विद्यापति - शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 64.

के चुने हुए गीतों का सटिप्पण व्याख्या भी की है । इस ग्रन्थ के लेखन के बारे में उन का कथन है - "यह पुस्तक विद्यापति के उन पाठकों केलिए हैं, जो चौदहवीं शताब्दी के संघर्षपूर्ण वातावरण में उत्पन्न हुए महान कवि के गत्वर व्यक्तित्व को देखना चाहते हैं, उस के व्यक्तित्व का विश्लेषण कर के उन सांस्कृतिक मूल्यों का आकलन करना चाहते हैं, जो ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण में सहायक होते हैं"[1] । इस पुस्तक में विद्यापति के कवि और गीतकार के जीवन्त व्यक्तित्व को पुनर्निर्मित करने में शिवप्रसाद सिंह बहुत अधिक सफल दिखाई पड़ते हैं ।

शोध ग्रन्थ

सूरपूर्व व्रजभाषा और उस का साहित्य

यह शिवप्रसाद सिंह का शोध-प्रबंध है जो 1958 में प्रकाशित है । यह पी.एच.डी. की उपाधि केलिए स्वीकृत ग्रन्थ है । सूरदास के पूर्व ही व्रजभाषा में विशाल साहित्य विद्यामान था । उस पुरानी भाषा का स्वरूप क्या था, उस में किस प्रकार के काव्यरूप प्रचलित थे, अपभ्रंश की प्राप्त रचनाओं से उस प्राचीन भाषा का कैसा संबंध था, इत्यादि का प्रामाणिक तथा व्यवस्थित विवेचन नहीं हो पाया था । इस का मुख्य कारण, इस संबंध में सामग्री की कमी थी । शिवप्रसाद सिंह ने विभिन्न ज्ञात-अज्ञात भंडारों से सूरपूर्व व्रज भाषा की सामग्री ढूँढ़ निकाली । फिर भाषा और साहित्यशास्त्र की दृष्टि से उस का अध्ययन-विवेचन किया । इस प्रसंग में शिवप्रसाद सिंह ने डिंगल और पिंगल भाषाओं के अंतर को भी स्पष्ट किया है । इस प्रकार शिवप्रसाद सिंह का ग्रन्थ "हिन्दी के पुराने साहित्य और भाषा रूप के अध्ययन का अत्यंत मौलिक और नूतन प्रयास है"[2] । इस के अलावा उन्होंने "कीर्तिलता और अवहट काव्य" नामक एक लघु-शोध प्रबंध भी प्रकाशित किया है, जो स्नातकोत्तर परीक्षा केलिए तैयार किया गया था ।

---

1. विद्यापति - शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 64.
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूरपूर्व व्रज भाषा और उस का साहित्य, भूमिका, पृष्ठ 10.

जीवनी

उत्तरयोगी श्री अरविन्द (1972)

यह एक समीक्षात्मक जीवनी है । "आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण का केन्द्र" बंगाल में पैदा हुए महर्षि "श्री अरविन्द उत्तर योगी थे, अर्थात् उत्तर भारत के थे"[1] । शिवप्रसाद सिंह के मतानुसार "हर मनुष्य के मानस में नचिकेताग्नि सुषुप्त है, हर मनुष्य के चिंदाकाश में एक नीला चाँद है, जिसे उस के ही संशय और संदेहों के बदलों ने ढँक दिया है । आदमी केलिए रोटी का गोल टुकड़ा एकान्त सत्य है, इसे इनकार करना असलियत से किनारा काशी करना है ; पर क्या आदमी सिर्फ रोटी ही चाहता है या उसी से जीवित रह सकता है, यह प्रश्न है जो आदिम ज़माने से आज तक मनुष्य के साथ लगा है, और शायद हमेशा लगा रहेगा"[2] । दिव्य चेतना का नीला चाँद, रोटी और मानसिक सीढ़ी के सब से ऊँचे छोर पर है । दोनों को पाना, दोनो को जोड़ना आदमी की आदिमेच्छा है। इस दिशा में श्री अरविन्द ने लेखक को सर्वाधिक प्रभावित किया है । इस का परिणाम है, अठारह अध्यायों तथा 474 पृष्ठों का यह बृहद ग्रन्थ, जो अरविन्द पर लिखी गयी जीवनी में अग्रस्थानीय है ।

नाटक

घाटियाँ गूँजती हैं

यह नाटक चीनी आक्रमण पर आधारित है। इस विषय को लेकर कई साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं । उन में इस नाटक को अधिक श्रेष्ठ स्थान नहीं है । इस की

---

1. उत्तरयोगी श्री अरविन्द - शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 3.
2. वही पुरोवाक् ।

रचना के बारे में लेखक के शब्दों है - "राष्ट्र को अग्निपरीक्षा का साक्षी साहित्यिक प्रयत्न है"[1] । इस में चित्रित घटनाओं का कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं । नाटक केवल घटना-क्रम की एक कड़ी के रूप में ही दिखाई पड़ता है । इस के प्रथम अंक में विषय के परिवेश को प्रस्तुत किया गया है । गोपाल के पहाड़ों संबंधी गीत सहित इस नाटक में बिलकुल सपाट लक्चरबाज़ी है । दूसरे अंक में भी विवेक कुमार के स्वप्न के माध्यम से कुछ लंबे भाषण प्रस्तुत किये गये हैं । फलस्वरूप नाटक में तनाव की सृष्टि नहीं हुई, जिस के कारण तीसरे अंक के नाटकीय तत्व प्रभावशाली हो न सके । विवेक, रोज, फादर पिन्टो आदि पात्रों का पूरा उपयोग भी नहीं कर सके हैं । अंतिम अंक तक गूँगे के समान रहनेवाला शीकू, अंतिम भाग में अपने को प्रकट करता है । यह नाटक शिवप्रसाद सिंह की एक असफल रचना है ।

ललित निबंध

1. शिखरों का सेतु (1962)

यह शिवप्रसाद सिंह का प्रथम लघु निबंध संग्रह है । इस संग्रह के निबंधों में अधिकांश में उन की विद्वत्ता का परिचय मिलता है । इस संग्रह के निबंधों से कई निबंध पहले ही पत्र-पत्रिकाओं में आये हैं । कुछ निबंध अधिक अलंकारिक हैं जो उन की विद्वता का उदाहरण है । "चार चरण" नामक निबंध एक संगठित विचार सूत्र प्रस्तुत करता है । श्रद्धांजली के रूप में निराला पर लिखित लेख महत्वपूर्ण है । क्यों कि इस में निराला के व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण पक्ष को प्रस्तुत किया गया है । "शंकापुत्र बनाम अनास्था के बेटे" भी एक उत्तम निबंध है । डा.प्रभाकर माचवे ने लिखा - "शिखरों का सेतु" पढ़ कर बहुत दिनों बाद लगा कि एक अच्छी और

---

1. धाटियाँ गूँजती है - शिवप्रसाद सिंह, भूमिका ।.

संतोषजनक गद्यकृति पढ़ने को मिला । कहना होगा कि इस ललित निबंध संग्रह के लेखक के पास उत्तम निबंध लेखन केलिए आवश्यक गुण हैं - विद्वत्ता, फक्कड़पन, यायावरी वृत्ति, कथाप्रेम, सूक्ष्म विचार-शक्ति और गद्यकाव्य की शैली ।

शिवप्रसाद ने अपनी विचारधारा साफ़-साफ़ सामने रखी है । मैं शिवप्रसाद सिंह को हिन्दी का एक बहुत बड़ा आशा प्रकाश-स्तंभ मानता हूँ ...."[1] । कमलेश्वर लिखते हैं - "यह उदार दृष्टि है, इस उदार दृष्टि को केन्द्र बना कर नये-पुराने विषयों को अपनी शैली में प्रस्तुत किया गया है ....."[2] । गद्य की विविधोन्मुखी शैली से परिचित लेखक की रचना है ।

2. चतुर्दिक (1972)

इस में चार प्रकार के निबंध संग्रहीत हैं - (1) विधेय: सार्वत्रिक, (2) परस्मैपद: पाँच श्रद्धांजलियाँ, (3) द्विवचन: तीन अन्तर्वार्ताएँ, (4) आत्मनेपद: तीन आत्म-बोधाएँ । इस संग्रह के नामकरण के बारे में शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है - "मैंने जब "चतुर्दिक" नाम की कल्पना की तो मेरे मन में चार प्रकार के निबंधों के मात्र संकलन की बात नहीं थी । यह सही है कि इस संकलन में चार तरह के ललित निबंध संग्रहीत है, ..."[3] । इस निबंध संग्रह के पहले भाग में भिन्न विषयों पर पन्द्रह निबंध हैं । दूसरा और तीसरा भाग अधिक श्रेष्ठ है । दूसरे भाग में पाँच महापुरुषों पर लिखित श्रद्धांजलियाँ हैं - राहुल सांकृत्यायन, शेक्सपीयर, जवाहर लाल नेहरू, मैथिलीशरण गुप्त, डा.संपूर्णानंद आदि । इस भाग का दूसरा निबंध अंग्रेज़ी के महान नाटककार शेक्सपीयर के चतुर्शती उत्सव (सन् 1964 में) के अवसर पर रचित एक परिचयांकन है

---

1. कस्तूरी मृग - शिवप्रसाद सिंह, भूमिका, पृष्ठ 3.
2. वही
3. चतुर्दिक - भूमिका, पृष्ठ 1.

तीसरे भाग का प्रथम निबंध ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रथम विजेता मलयालम कवि शंकर कुरुप से साक्षात्कार का विवरण है । निबंध के अंतिम भाग में शिवप्रसाद सिंह ने शंकरकुरुप के बारे में यों लिखा है - "वे हिन्दी पाठक के दृष्टिकोण से छायावादी कवि ठहरे हैं, किन्तु ऐसे कवि जिन में पंत की सुकुमारता है तो निराला की यथार्थ प्रियता भी । दूसरी ओर भारतीय परंपरा के प्रति उन का अभिज्ञान वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से समन्वित हो कर आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की याद दिलाता है । इस दृष्टि से शंकरकुरुप के वाङ्मय में सौकुमार्य, यथार्थ और मानवतावादी चिंतन की एक अद्भुत त्रिवेणी दिखाई पड़ती है"[1] । दूसरे निबंध में द्विवेदी जी से तथा तीसरे में श्री रामचन्द्र वर्मा से साक्षात्कार का चित्रण है । इस ललित निबंध संग्रह के चौथे भाग में उन्होंने अपने संबंध में ही लिखा है । पहला लेख "मन का दर्पण: बनाम कुछ न होने का कुछ", वर्षों पहले 1965 नवंबर-दिसंबर के "लहर" में "मेरी रचना प्रक्रिया" नाम से प्रकाशित था । बाद में "मुरदा सराय" कहानी संग्रह की भूमिका के रूप में "कुछ न होने का कुछ" शीर्षक से प्रकाशित किया था । यह लेख इस ग्रन्थ में तीसरी बार आ रहा है । यह लेख तथा अगला लेख - "मेरी कहानी रचना की नेपथ्य भूमि" - दोनों खत के रूप में है । इन लेखों में शिवप्रसाद सिंह ने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारंभ का प्रतिपादन किया है । उन की लेखन प्रक्रिया का आनुषंगिक जिक्र भी इस में हुआ है ।

3. कस्तूरी मृग (1972)

इस ललित निबंध संग्रह में कुल उन्नीस निबंध हैं । इन्हें तीन भागों में विभक्त किया गया है - देशकाल, व्यक्तिपरक तथा वैयक्तिक । प्रथम भाग में कई प्रकार के

---

1. चतुर्दिक, पृष्ठ 172.

विषयों पर लिखित निबंध हैं । प्रथम भाग का दूसरा निबंध एक पत्र के रूप में है । पाँचवां निबंध "सर्वत्र" व्याप्त संदेह को ले कर लिखित है । इस ललित निबंध के दूसरे भाग में सात महापुरुषों के संस्मरण हैं । इस भाग का पहला निबंध है "साहस के रेखाचित्र: जॉन केनेडी" । इस में अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसिडेंट जॉन-एफ़ केनेडी का संस्मरण है । दूसरा निबंध फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्यकार समर सेट मॉम के बारे में हैं । विदेशी लेखकों में रूसी साहित्यकार मिखाइल शोलोखाव - 1965 के नोबल पुरस्कार विजेता - के बारे में भी एक निबंध संग्रहीत है । हिन्दी के साहित्यकारों में बालकृष्ण नवीन, शान्तिप्रिय द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी तथा त्रिलोचन के बारे में भी संस्मरण संकलित हैं । तीसरे भाग में शिवप्रसाद सिंह ने उन साहित्यकारों पर लिखा है जिन का प्रभाव उन के जीवन, व्यक्तित्व और दृष्टि में पड़ा हुआ है । वे हैं - शरत्, प्रसाद, निराला आदि । उन से प्राप्त प्रेरणाओं का उल्लेख भी उन्होंने इन संस्मरणों में किया है ।

इन ग्रन्थों के अलावा शिवप्रसाद सिंह ने "शान्ति निकेतन से शिवालिका", "रस-रतन", "कल्पना" का नवलेख विशेषांक, "हिन्दी निबंध" आदि का संपादन भी किया है । इस से स्पष्ट है कि उन की अभिरुचि साहित्य की विविधोन्मुखी शाखाओं की ओर रही है । गद्य की समस्त विधाओं में उन की तूलिका चली है और उनमें अपनी विशिष्टता बनाये रखने में वे सफल रहे, यह अपने में प्रीतिकर तथ्य है ।

निष्कर्ष

शिवप्रसाद सिंह की गंभीर चर्चा उन की कहानियों के आधार पर संभव है । इस का कारण यह नहीं कि उन की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ का नया परिदृश्य खुलता है ; उस सच्चाई को अपनाने के उपरान्त भी उन की कहानियों की अपनी एक

विशिष्टता है - वह है उन की कहानियों में उपलब्ध आँचलिक सहजता के कुछ सृजनात्मक क्षण । एक गहरी आस्था भी उन की कहानियों को वलयित करती है ।

शिवप्रसाद सिंह की रचना दृष्टि एकांगी नहीं है । उस में एक सजग कलाकार की जागरूकता है और मानवीयता के प्रति आत्मीयता का भाव है । चिन्तन पक्ष और कलापक्ष का समन्वय उन के कृतिव्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू है । समय समय पर विभिन्न प्रकार की प्रेरणाओं के बीच में पड़ने के बावजूद उन्होंने अपने व्यक्तित्व को उन सब के अधीन में डाला नहीं है । परिमार्जित अवश्य किया है । इस कारण से प्रबुद्धता और प्रखरता का बोध उन का कृतिव्यक्तित्व निरंतर देता रहता है ।

अध्याय पाँच

शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ

अध्याय पाँच

शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ

वस्तुपरक विश्लेषण

शिवप्रसाद सिंह की प्रथम कहानी "दादी माँ" बहुचर्चित रचना रही है । नई कहानी के प्रारंभिक दौर की एक प्रमुख रचना के रूप में भी उस का स्थान है जो 1951 में "प्रतीक" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी । शुरू से लेकर शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का प्रतिपादन होता रहा है । इसलिए हिन्दी की आँचलिक धारा के वे एक सशक्त हस्ताक्षर हैं ।

अब तक शिवप्रसाद सिंह की चौहत्तर कहानियाँ प्रकाशित हैं जो पाँच संग्रहों में संकलित हैं[1] ।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने शिवप्रसाद सिंह की कहानियों की प्रशंसा यों की है - "क्या कमाल की चित्रकारी तुम ने सीखी है । भाषा पढ़ तो मैं कभी कभी

---

1. क. आर-पार की माला प्रथम संस्करण 1955.
   ख. कर्मनाशा की हार " 1958.
   ग. इन्हें भी इन्तजार है 1961.
   घ. मुरदा सराय 1966.
   ङ. भेड़िये 1977.

   अब उन की समस्त कहानियाँ दो संग्रहों में उपलब्ध हैं -
   अ. अँधेरा हँसता है प्रथम संस्करण 1985.
   आ. एक यात्रा सतह के नीचे 1985.

सोचने लगता कि यह मेरा शिवप्रसाद सिंह लिखा रहा है । इन कहानियों को पढ़ कर देखता हूँ कि इन में वही बात है जिसे बरसों से देखना चाहता था"[1] । शिवदान सिंह चौहान के मतानुसार "आप ने जीवन के जिन मार्मिक प्रसंगों को चुना है, उन से भारतीय अभिशप्त जीवन की यह हकीकत कितनी पीड़ाजनक मालूम होती है"[2] । वस्तुवादिता के भीतर प्रस्फुटित जीवन के प्रतिस्पन्दन की उस विशिष्ट भंगिमा की ओर धनंजय वर्मा ने संकेत किया है - "शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में जीवन, यथार्थ या वस्तु के क्षेत्र से अधिक महत्त्व उन के या उन के दिये गये अर्थों का है, उस के प्रति दृष्टि या भंगिमा का है"[3] । नयी दृष्टि की संपन्नता के कारण उन के चरित्र ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्थापित हुए हैं । इस संदर्भ में नामवर सिंह का कथन द्रष्टव्य है - "शिवप्रसाद सिंह के "कर्मनाशा की हार" वाले भैरो पाँडे जैसे सशक्त व्यक्ति केवल चरित्र नहीं, बल्कि आज की ऐतिहासिक शक्ति के प्रतीक हैं"[4] ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का वस्तु पक्ष ग्रामीण जीवन के वैविध्य को ले कर विन्यसित है । आज के युग में ग्रामजीवन में भी कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं । बदलते हुए ग्रामीण जीवन को केन्द्रस्थान में प्रतिष्ठित कर के ही शिवप्रसाद सिंह ने कहानियाँ लिखी हैं । इन कहानियों का एक प्रमुख पक्ष ग्रामीणों पर होनेवाले विविध प्रकार के शोषण से संबंधित हैं । इस पक्ष के अलग-अलग संदर्भ और परिदृश्य हैं । शिवप्रसाद सिंह की कहानी के विषय के बारे में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं - "मानवीय रागात्मकता की निरन्तर पहचान के लिए उत्सुक शिवप्रसाद सिंह की कहानी का विषय तो जीवन के विस्तार से ही चुनते हैं - जैसे अनमेल विवाह, गरीबी, शोषण,

---

1. एक यात्रा सतह के नीचे प्रथम संस्करण 1985 कहानी संग्रह का प्रशस्ति वाक्य से
2. वही
3. ज्ञानोदय, अक्तूबर 1969, लेख-धनंजयवर्मा, पृष्ठ 29.
4. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति सं: देवीशंकर अवस्थी, लेख - नामवर सिंह, पृष्ठ 42.

बेरोजगारी, पारिवारिक विच्छिन्नता और कभी-कभी उस में सक्रिय आत्मीय लगाव, स्त्री का साहस, पुरुष का द्वन्द्व, अन्धविश्वास, मूल्यों का लोप, नैतिक जीवन की विडंबना - पर उन का निर्वाह या परिणति प्रायः एक रस है"[1] ।
लेकिन रघुवरदयाल वार्ष्णेय की राय में "उन (शिवप्रसाद सिंह) की कहानियाँ सहज मानवीय अन्तर्वैयक्तिक संबंधों की गाथाएँ हैं जिन के माध्यम से वे भारतीयता की तलाश करते हैं । इस मानवीयता की जिजीविषा ही रूढ़ियों के प्रति आक्रोश करती है । उन का यह आक्रोश शोषण के प्रति उफन पड़ता है"[2] । शिवप्रसाद सिंह की कहानियों की विशेषताओं के बारे में प्रयाग नारायण त्रिपाठी यों लिखते हैं -
"शिवप्रसाद सिंह की कहानियों की सर्वप्रमुख विशेषता है, उन में अनुभूति जन्य सच्चाई और गहराई का समावेश । दूसरी उल्लेख्य विशेषता है ग्रामजीवन के प्रति उन का गहरा लगाव और उस जीवन का सूक्ष्म, संवेदनशील अध्ययन । तीसरी विशेषता है सहज और सशक्त भाषा के प्रयोग द्वारा उपयुक्त वातावरण का निर्माण"[3] ।
उन की रचनाओं को इन्हीं कुछ वास्तविकताओं के आधार पर विश्लेषित किया गया है ।

गरीबी और शोषण

भारत की आज़ादी के बाद भी गाँवों में शोषण और साधारण ग्रामीणों की गरीबी में कोई अन्तर नहीं आया है । परिवर्तन आया है केवल शोषण के तंत्रों में ही । नियम के अनुसार ज़मीन्दारी तथा गुलामी खतम कर दी गयी थी । लेकिन खेत साधारण

---

1. आलोचना 75, अक्तूबर 1985, लेख - परमानन्द श्रीवास्तव, पृष्ठ 56.
2. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान - रघुवर दयाल वार्ष्णेय प्रथम संस्करण 1975, पृष्ठ 116.
3. कहानी, मार्च 1957, लेख-प्रयाग नारायण त्रिपाठी, पृष्ठ 76-77.

किसानों को नहीं मिला । गाँव के ज़मीन्दारों, ठाकुरों या उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में ही ज़मीन रह गयी । उनकी खुशामद करने पर ही किसानों को थोड़ी ज़मीन मिलती, केवल एक या दो बार खेती करने केलिए । खेत न मिलनेवाले किसानों को, गुलामों की तरह कम मजूरी पर खेतों या शहरों में जा कर नहर-नालों, सड़क-पुलों के ठेकेदारों के यहाँ मज़दूरी करनी पड़ती थी । इस कठिनाई से तंग आ कर बहुत से लोग शहर की ओर भाग जाते थे । जो लोग गाँवों में रह जाते हैं, उन्हें केवल गरीबी और शोषण का शिकार बनना पड़ता । गाँववालों की इस गरीबी और शोषण का चित्रण शिवप्रसाद सिंह ने, "आर-पार की माला", "महुए का फूल", "चितकबरी", "मुर्गे ने बाँग दी", "माटी की औलाद", "पापजीवी", "उन्हें भी इन्तज़ार है", "खेल", "धारा", "कलंकी अवतार" आदि कहानियों में प्रस्तुत किया है ।

"महुए का फूल" नामक कहानी की सत्ती हँसोड़, महुए के फूल की तरह कोमल, मादक और तितलियों की तरह चंचल थी । मुसम्मात हरकल्ली का भतीजा हीरा, मोटा-तगड़ा, पिलपिला शरीरवाला, पच्चीस-छब्बीस बरस का युवक था । हीरा सत्ती के प्रति आकृष्ट होता है । एक बार सत्ती उस की हँसी उठा कर भागा चली थी । सत्ती के बाप की गरीबी तथा कर्ज[1] का लाभ उठा कर हीरा सत्ती से शादी कर लेता है । गरीबी के आगे सत्ती एवं उस का बाप झुक जाते हैं । इच्छा और यथार्थ का संघर्ष हमेशा होता है । सत्ती के जीवन में यही घटित हुआ । कहानीकार ने ग्रामीण जीवन की सच्चाई को सामान्य ढंग से प्रस्तुत किया है । लेकिन सत्ती की प्रस्तुति में उन्होंने जिस प्रकार आँचलिक प्रवृति को ग्रामीण लड़की की सहज सरल प्रकृति के रूप में सामने रखा है तो यथार्थ के सामान्य रूप के बदले असामान्य रूप ही प्राप्त होता है ।

---

1. "...... इधर बिना कुछ कहने-सुनने का मौका दिये मुसम्मात हरकल्ली ने अपने चार सौ रुपये का दावा कर दिया । उस बुड्ढे बाप ने अपने को कर्ज के रुपयों और लड़की के भार दोनों से मुक्त करने केलिए सत्ती की शादी हीरा से ठीक की" । आर-पार की माला, प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ 37-38.

"मुर्गे ने बाँक दी" नामक कहानी में भी गाँव के लोहार की गरीबी तथा उस से कटु व्यवहार करनेवाले ज़मीन्दार का चित्रण है। पिछले तीन वर्षों से बारिश के कम होने के कारण गाँव के किसान परिवारों में गरीबी फैल गयी है। इस का असर किसानों के साथ जुड़े हुए अन्य जाति के लोगों पर भी पड़ता है। पिछले तीन दिनों से मंगरू लोहार का घर फाके में है। विवश हो कर तथा पत्नी की प्रेरणा से मंगरू ने ठाकुर से अपनी मज़दूरी माँगी। तब ठाकुर रीति-रिवाज बता कर कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने का उपदेश दे कर मंगरू को लौटा देता है - "ठाकुर ने साफ़ कह दिया कि यह कोई पहला साल नहीं है। बीस वर्षों से वह उन का हल बनाता है। फिर इसी साल कौन नयी बात हो गई जो वे बाप-दादा के ज़माने से आती हुई बात को तोड़ दे। अरे दस दिन में बिगड़ता ही क्या है"[1]। ज़मीन्दार के संदर्भ में यह मामूली घटना है। पर गरीबी और भूख से शिथिल मंगरू के संदर्भ में यह दर्दनाक घटना है। पर गरीबी ने उसे कोई सबक नहीं सिखायी। वह सब कुछ सह लेता है।

बूढ़े मटरू मल्लाह की गरीबी का लाभ उठा कर उस की इकलौती बेटी युवती नीरू को ठाकुर अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। "आर-पार की माला" नामक कहानी में चित्रित शोषण का यही रूप है। बूढ़ा मटरू नट जाति का है। वह आज कल मल्लाह का काम करता है। घर पर अकेली बेटी नीरू ही है। नीरू जब नाव चलाती है तब मटरू मूँजी की रस्सी बनाता है। पिछले वर्ष नीरू और रज्जब की सगाई हो गयी थी। इस साल बारिश न होने के कारण फसल सूख गयी थी। इस कारण से मटरू के परिवार की हालत शोचनीय हो गयी है। विवश हो कर मटरू अपनी बेटी को ही ठाकुर को भेंट देता है - "पाँच दिन के फाके के बाद "हकलाते हुए" मटरू बोला, "ज़रा छावनी में चली जा, ठाकुर से दो रुपये माँग ला। कहना मेरी कमर में दर्द है"[2]।

---

1. आर पार की माला; पृष्ठ 131।
2. आर पार की माला, पृष्ठ 151।

लड़की ने बाप की आँखों की ओर देखा, जो शरम के मारे धरती में गड़ी हुई थी । उस ने कुछ कहा नहीं । चुपचाप छावनी की ओर चली गयी । बड़ी देर के बाद नीरू लौटी, बुड्ढे के सामने पाँच का नोट फेंक कर बोली "ठाकुर के पास फुटकल नथे" और बिना उस की ओर देखे झोंपड़ी में चली गयी"[1] । नीरू के शब्दों में छिपी कसक बहुत गहरी है । गरीबी की विवशता का इस से बढ़ कर कोई चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ।

परिवार के दोनों सदस्यों के दिन भर कठिन परिश्रम करने के बावजूद एक वर्ष की फसल के नष्ट होने पर भोजन केलिए नीरू को अपना शरीर बेचना पड़ता है । निम्न जाति के उपेक्षितों के सम्मुख जीवन की पहली समस्या भूख ही है । भूख के आगे उन्हें सब कुछ तजना पड़ता है ।

बदलू मुसहर कठिन परिश्रम करनेवाला है । फिर भी उसे गरीबी का सामना करना पड़ता है, साथ ही शोषण का शिकार भी । "पापजीवी" नामक कहानी में इसी का चित्रण मिलता है । बदलू मुसहर ठीकेदार के यहाँ लकड़ी काटने का काम करता है । आज उस की इकलौती बेटी टूरी बीमार पड़ी है । रात-भर जाग कर बेटी की शिश्रूषा और ऊपर से भूख । भूख की आग से बदलू की हड्डियाँ तक जल कर राख हो गयी । सुबह होते ही टूरी को चंगा करने के हेतु, जंगल में मुसहरों की देवी वनसप्तिका को सिन्दूर और मुर्गे चढ़ाने का निश्चय करता है । उस केलिए ठीकेदार से कुछ पैसे उधार माँगने पर भी मिलता नहीं है । तीन दिन की बाकी मजूरी माँगने से भी कोई लाभ नहीं हुआ । वह अपने को काबू में रख न सका । वह पागल-सा होकर अचानक ठीकेदार का हाथ पकड़ लेता है । पर बहुत जल्दी ही उस का कड़ुआ फल उसे भोगना पड़ा - "बदलू सामने की नीम से मोटी रस्सी से बाँधा बैठा था,

---

1. आर पार की माला, पृष्ठ 152.

लाठियों की मार से उस का शरीर फट गया था, पर वह चुपचाप ज़मीन में मुँह गोड़े बैठा रहा, जो भी आता, दो लात दो जूते मार देता, वह मारनेवालों की ओर देखता भी नहीं ...."[1] । बदलू का चित्र एक दयनीय ग्रामीण कामगर का है जिसे उस के अधिकार से वंचित किया जाता है । अमानवीय व्यवहार ने मनुष्य को यहाँ तक सोचने केलिए बाध्य कर दिया है कि क्या इस के अपना भी व्यवहार का कोई रूप है ? विवश हो कर बदलू ने ऐसा किया था । लेकिन एक पूरा तंत्र उसके खिलाफ़ हो जाता है ।

"माटी की औलाद" नामक कहानी में भी एक गरीब कुम्हार और उस पर अत्याचार करनेवाले ज़मीन्दार की कथा कही गयी है । टीमल कुम्हार कठिन परिश्रम करता है - "सर पर लाद कर मिट्टी ले आना, दिन में चार-चार बार पानी दे-दे कर मिट्टी को सोने से भी ज्यादा हिफाज़त से रखना कि कहीं तड़के न, कहीं गाँठें न पड़ें और कहीं ज्यादा पानी हो जाने से सड़ न जाये । फिर घटों दोनों पैरों पर बैठ कर तरह-तरह के बर्तन पाटना । बुड्ढे के हाथ में जैसे जादू का असर है कि केवल हथेली के थोड़े-बहुत दबाव से बीसों किस्म के बर्तन-पुखे, परई, दिया, मटके, हाडियाँ, सुराही, कलशें एक-से-एक अच्छे निकलते आते हैं । फिर इन वर्तनों को सुखाना, इंधन इकट्ठा करना, पकाना, इन्हें रँगना ...."[2] । लेकिन उस का गुज़ारा ठीक से नहीं हो रहा था । इसलिए ज़मीन्दार से कुछ ज़मीन लेता है । परन्तु गरमी ने उस को आशा में पानी फेर दिया । वह लगान न दे सका । दूसरे वर्ष ज़मीन्दार ने खड़ी फसल के साथ खेत छीन ली । फिर ज़मीन्दार ने कुछ नाद, खपरैल, गगरी, कलश आदि बनवा लिये । इस केलिए टीमल को परिवार के अन्य सदस्यों के साथ एक महीने तक लगातार अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ा । पर ज़मीन्दार ने इन्हें अपना मनमाना दाम

---

1. कर्मनाशा की हार; पृष्ठ 47.
2. वही पृष्ठ 150.

लगा दिया । उस से लगान की बाकी के नाम पर पन्द्रह रुपये काट कर छः रुपये ही बाकी के नाम पर दे दिया गया - "आठ नादों को आठ रुपये, दो हज़ार खपरैल का दस, गगरी और कलशों के तीन, सब इक्कीस रुपये न । इस में तुम्हारा बकाया लगान पन्द्रह रुपये काट गये, बचे छः । हिसाब समझे न ?"[1] ग्रामीणों पर होनेवाले अत्याचार का यह एक नग्न चित्र है जिस को नंगई हमारे आगे समा रही है ।

गरीबी और शोषण की एक और कहानी है "इन्हें भी इन्तजार है" । मंगरा और उस की पत्नी कबरी डोम जाति के हैं । वे गाँव-गाँव घूम कर बाँस की डाली-दौरी बना देते हैं । सूखा और बाढ के बाद के कारण गाँव भर के लोगों तथा डोमों को भी बुरी हालत हो गई - "सूखे और बाढ़ से गिरहस्थों की हालत तबाह है । जब अनाज ही नहीं, तो कौन उसे धरने-ओसारने केलिए डाली-दौरी खरीदेगा ? कई बार चक्कर लगा आयी । कुछ बिकता ही नहीं"[2] । गाँववाले कबरी और मंगरा को और कोई नौकरी देने केलिए तैयार नहीं होते । डोमों को अपने खाने पकाने की सुविधा नहीं दिया जाता । मजूरी के रूप में दो टुकडे रोटी दे कर एक ओर वास्तविक शोषण किया जाता है और दूसरी ओर उन पर आरोप भी लगाया जाता कि वे कामचोर हैं - डोमों को जूठा खाने की आदत है । मजूरी में भी वह पकाया हुआ अन्न ही लेते हैं । कच्चा अनाज कभी न लेते, क्यों कि चूल्हा चक्की छूना उन केलिए अपमान की बात है"[3] । गरीबी के सामने हाथ पसारे हुए लोगों पर अत्याचार करना आसान है । यह कहानी इसी तथ्य पर आधारित है ।

"धारा" कहानी में भी जंगली जाति के एक परिवार की गरीबी तथा उन पर किये जानेवाले शोषण की कथा है - "जब तक उस परिवार का नायक गेंदुवा का

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 154.
2. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 73.
3. वही पृष्ठ 73.

हाथ-पैर चलते रहे, माँ-बेटी को झोंपड़ी से बाहर नहीं निकलने देता था । बड़ा लाचार होने पर उन्हें इधर-उधर काम करने केलिए जाने देने को तैयार हुआ......"[1] फिर बाद में तिउरा (बेटी) व्यापारी देवनाथ के यहाँ नौकरी पर जाती है और देवनाथ की भोगलिप्सा के अधीन में वह पड़ती है तथा एक बच्चे की माँ भी बन जाती है । वह भिखारिन बन जाती है । निरीहता और निरालंबता का लाभ उठा कर निम्न जाति के लोगों पर अत्याचार का जाल बिछाना मानों देवनाथ जैसे लोगों केलिए अत्यधिक सुखद अनुभव है । शोषक का सही रूप प्रस्तुत कहानी में मिलता है ।

"कलंकी अवतार" कहानी में रोपनबारी की गरीबी और उस पर किये गये शोषण का अंकन है । उस ने अपनी ज़िन्दगी के पचास वर्षों में गाँव के बच्चों के जन्म, जनेऊ या शादी-व्याह में संवदिया या बारी का काम किया । गाँव के एक-एक घर लोगों को भोज-भात केलिए बुलावा पहुँचाया । बरसी, किरिया-करम, पिण्डदान में भी रोपन सब के आगे रहा । ऐसी सेवावृत्ति से उस को अधिक कमाई नहीं हुई । अपनी बेटी की शादी केलिए रोपन ने ज़मीन्दार भैंटूसिंह से तीन सौ रुपये उधार लिये ज़मीन्दार ने उस केलिए घर का पुश्तैनी खेत नीलाम करा दी । लेकिन वही खेत बाद में ज़मीन्दार के हाथों में भी आ जाती है ।

रोपन को ठाकुरबाड़ी के पुजारी के उपदेश से यह विश्वास हो गया कि अत्याचारियों के संहार केलिए भगवान अवतार लेंगे । अत्याचारी भैंटूसिंह का अंत करने केलिए भगवान के अवतार की प्रतीक्षा में रोपन दिन बिताने लगा । एक दिन सवेरे एक घुड़सवार को जमीन्दार के घर की ओर जाते देखा । बेचारे ने सोचा कि ज़मीन्दार को दंड देने केलिए भगवान पधारे हुए हैं । दंड-नीति देखने की इच्छा से वह घोड़े के

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 72.

पीछे-पीछे भागा और ज़मीन्दार के घर के द्वार तक पहुँच गया । अपने अतिथि की सेवा करने को रोपन को लगाने का निश्चय ज़मीन्दार ने किया - "कहार या नाई किसी को बुलाता तो चार-पाँच रुपये गलते । इसे तो खाना भी खिला देंगे तो खुश हो जाएगा"[1] । इस प्रकार गरीब रोपन की संपत्ति को ही वह हड़पता नहीं, परिश्रम का शोषण ज़मीन्दार करता है । अनजान और अशिक्षित लोगों पर अत्याचार तथा शोषण बिना किसी रोक-टोक के साथ होते रहते हैं । विरोध का कोई ठोस वातावरण न रहने के कारण शोषण जारी रहता है ।

यह सही है कि शिवप्रसाद सिंह ने गाँव के उपेक्षित वर्ग के लोगों के जीवन को चित्रित किया है । लेकिन उन का मूल उद्देश्य उन की आर्थिक कठिनाइयों पर केन्द्रित होने का रहा है ।

उपेक्षित वर्ग की प्रस्तुति

आँचलिक कहानियों में उपेक्षित वर्ग के प्रति मोह दर्शित है । इस दिशा में शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं । कहानीकार ने ऐसे लोगों का चित्रण अपनी कहानियों में किया है जो गाँव में एकदम बेसहारा और आर्थिक विपन्नता से निरन्तर जूझनेवाले भी हैं । निम्न कही जानेवाली जाति के कई पात्र उन की कहानियों में उपलब्ध हैं । इस कारण से शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का एक विशिष्ट संसार सृजित भी हुआ है ।

"मुर्गे ने बाँग दी" नामक कहानी का मँगरू गाँव का लोहार है । लोहार का अपना काम होता है । पर पूरे गाँव में जब अकाल फैल गया है तो लोहार का जीवन भी सुगम नहीं होता है । लोहार का जीवन किसानों के काम पर निर्भर है । जब

---

1. भेड़िये, पृष्ठ 36.

जब किसान केलिए लोहार की आवश्यकता नहीं तो कौन उस के बारे मे पूछ सकता है - "यहाँ तो देह पीटते-पीटते बीमार भले हो जाये, पेट भरने का कोई ठिकाना नहीं। देनी लेनी बात की मनौती। खाने को भी कोई नहीं पूछता। बातों की जेवर सब गढ़ते हैं"[1]। जो छोटा-मोटा काम किया जाता है तो उस केलिए मजूरी देने केलिए ज़मीन्दार लोग भी तैयार नहीं है। ग्रामीण जीवन सामान्यतः मौसम के आरोह-अवरोह पर निर्भर रहता है। किसानों के जीवन पर आश्रित हो कर रहनेवाले कामगर विषम अवस्थाओं में दर-दर भटकने के बजाय और कुछ नहीं कर सकते हैं। मंगरू की यही विवशता है।

"आर-पार की माला" में मल्लाहों का जीवन चित्रित है। मल्लाहों का जीवन भी ग्रामीण परिस्थितियों के अनुसार ही बनता-बिगड़ता है। ऐसे छोटे-छोटे काम करनेवालों को अगर कोई नौकरी ही न मिलती तो कुछ करने की बात उठती है। इस कहानी में मल्लाह अपनी बेटी को स्वयं कुपथ पर धकेल देने को मजबूर होता है।

मुसहर जाति के बदलू की कहानी है "पापजीवी"। मुसहर जड़ी-बूटी बेचने वाले जंगली हाति है। बदलू नामक मुसहर आजकल लकड़ी का काम करता है। इस कहानी में उस के जीवन के अंतरंग पक्षों का एक दम अभाव है। जब कि बदलू की कठिनाइयों का तथा उस पर किये जानेवाले अत्याचार को ही प्रमुखता मिलती है।

बिन्दा नामक हिजड़े की दुखकथा का चित्रण "बिन्दा महाराज" नामक कहानी में है। हिजड़ा होने के कारण किसी का उस से रिश्ता नहीं है। ऐसा अंधविश्वास भी समाज में फैला है कि उस के साथ जिस किसी का संबंध होगा उस पर उस का बुरा असर पड़ता है। व्रत-उपवास, कथा-पुराण के उत्सवों में वह स्त्री का वेष पहन कर

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 126, 28.

नाचता गाता और दूसरों का दिल बहलाता है । उस का गुज़ारा ऐसा ही होता है । कभी-कभी भीख माँग कर भी वह दिन काट लेता है । सामान्य ढंग से ही सही हिजड़े के जीवन के इस दारुण पक्ष को विन्दा महाराज के माध्यम से उजागर किया गया है ।

बच्चन पिछले अठारह वर्षों से ठाकुर का चरवाहा है । जब एक नया घोडा लाया गया तो उस की देखभाल का काम भी उसे सौंपा जाता है । लेकिन बच्चन पर चोरी का इल्ज़ाम लगाया जाता है - "अपना हज़ार रुपये का घोडा मैं ने उस पर छोडा । दाना गायब । भूसा गायब । आखिर जानवर हम से कहेगा तो नहीं कि वह भूखा है । मेरा सारा रुपया इस ने पानी में डुबो दिया"[1] । इस पर बच्चन को कोडे की मार भी सहनी पड़ती है । ठाकुर की नज़र अपनी नौकरानी गुलाबी पर थी । गुलाबी बच्चन की प्रेमिका है । इसलिए बच्चन को रास्ते से हटाने केलिए, ही ठाकुर बच्चन पर झूठा अपराध लगाता है । गुलाबी ही शिकार युवति है । उस में वह क्षमता है, जिस से वह ठाकुर के अत्याचार का विरोध करती है । लेकिन बच्चन बेज़ुबान जानवर से भी गया गुज़रा है । इसलिए अत्याचार का यों ही सहन भी करता है । बच्चन चरवाहों का ऐसा एक प्रतिनिधि है जिसे लगातार अत्याचार के अधीन में रखा गया है और उस की भावनाओं केलिए कोई मूल्य प्रदान नहीं किया जाता है । उसे भी ऐसी सबक दी गई है कि वह चरवाहा है ; वह निम्न वर्ग का है उसे कुछ नहीं कहना चाहिए । लेकिन इस के विपरीत गुलाबी उपने ऊपर किये जाने वाले अत्याचार का विरोध करती है ।

नटों का जीवन और उन की परिस्थितियाँ "सँपेरा" नामक कहानी की विषय वस्तु है । बक्कस नटों का खलीफा है । अब वह सँपेरे का काम करता है । पिछले वर्ष वह अपनी टोली को ले कर इस गाँव में आया था । तब ज़मीन्दार की आँखें बक्कस

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 100.

की बेटी कम्मो पर पड़ी थी । शाम को वह पानी भरने केलिए नदी की ओर जाते वक्त जमीन्दार के गुंडे उसे पकड़ लेते हैं । विवश हो कर कम्मो अपनी अंचल की खूँट में बंधी अफीम खा कर आत्महत्या करती है । इस का बदला लेने केलिए ही इस वर्ष बक्कस और कम्मो का पति बशीर साँपों को ले कर आया है । जमीन्दार के छोटे बेटे को कटवाने केलिए साँप को भेजा जाता है । लेकिन छिपकर बदला लेना कायरों का काम समझ कर बशीर साँप को लौटाता है । वस्तुत: इस कहानी में गाँव-गाँव घूम कर कुश्ती लड़ने-वाले, आल्हा गायन के बहाने चोरी-डकैती, अफीम-गाँजे की छिपा-चोरी लेन देन में लगे नटों के जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है । पर ऐसे लोगों में भी कोई युवति अगर खूबसूरत है तो उसे अपनी वासना की पूर्ति केलिए पकड लाने तक को जमीन्दार लोग हिचकते नहीं ।

माटी के कारीगर-कुम्हार जाति के लोगों के जीवन की कठिनाइयों का चित्रण "माटी की औलाद" नामक कहानी में किया गया है । दिन-भर माटी-पानी का काम करने पर भी उन्हें आधा-पेट भोजन ही मिलता है । तो बीमारी-तीमारी हो जाने पर अंगूठे के बल खड़े-खड़े रात बिता देना भी पड़ता है । एक जादूगर की कुशलता से हथेली के थोडे बहुत दबाव से भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के बर्तन बना कर, उन्हें सुखा कर, इंधन इकट्ठा कर, पका कर, रँगकर बर्तन बनाने वालों के जीवन में हमेशा गरीबी और दुख ही बाकी रह जाते हैं । तब वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं - "हम माटी की औलाद हैं, माटी की ; कष्ट-दुख भले सहें, हम कभी मिट नहीं सकते"[1] ।

गाँव-गाँव घूम कर बाँस की ड़ाली-कोन्हिया बना कर देनेवाले ड़ोम जाति का वर्णन "इन्हें भी इन्तजार है" नामक कहानी में हुआ है । कबरी एक ड़ोमिन युवति है ।

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 151.

अपनी माँ के साथ घूम-फिर नारि की चीजें बना देती है । लोकगीतों का गायन तथा नाच भी उन के पेशे का एक पहलू है । शादी-ब्याह या श्राद्ध के अवसर पर इन की ज़रूरत पड़ जाती है और उन्हें वहाँ से जो चीज़ मिलती है, गुजारा कर लेती हैं । कबरी की शादी मंगरा नामक युवक से हो जाती है । तब से दोनों अपने पेशे के सिलसिले में घूमते हैं । घुमक्कड़ प्रकृति के इन लोगों का अपना कोई पक्का घर नहीं होता । किसी के कुएं से पानी वे नहीं ले सकते । तालाब या पोखर का पानी लेना होता है । कबरी के शब्दों में उस की वेदना प्रकट है - "खाली पेट एक गाँव से दूसरे गाँव घूमते हैं । तालाब-पोखर का पानी सूख कर कीच बन जाता है, पर हमारे लिए, तो वही है । कुएं पर कोई जाने नहीं देता, माँग के पीवे तो लोग यह भी कहेंगे कि डोम तो खींच कर पानी पीते नहीं"[1] । यही उन के व्यथाभरे जीवन का स्वरूप है । निम्न जाति के होने के कारण उन्हें दूसरे प्रकार का काम भी नहीं मिलता । इस की दैन्यता इन शब्दों में स्पष्ट है - "टेशन पर गुदामों में झारी करने केलिए भी हमें कोई नहीं पूछता । मुसहर-चमार गरीब हैं सही, पर उन्हें करने को नीचा-ऊँचा काम तो मिल जाता है, हम कहाँ जायें सरकार, हमारी देह में तो ऐसी छूत भरी है कि कोई खाद-गोबर फेंकने का काम भी नहीं करने देगा"[2] । प्रस्तुत कहानी का अंत अत्यंत दारुण ढ़ंग से हुआ है । भीषण सूखे का प्रभाव तथा समाज से कट कर अलग जीने केलिए वे मज़बूर हो जाते हैं । मंगरू और बच्चे की मृत्यु के बाद अधपगली-सा कबरी भिखारियों के दल के साथ मिल जाती है । वह विक्षुब्ध हो जाती है । विभिन्न प्रकार के शोषण का अन्त त्रासद ढ़ंग से होता है ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों के रचना संसार में तथाकथित अनुसूचित जातियों के लोगों का चित्रण है । हमारे समाज में ऐसे कई लोग हैं जिन का जीवन कठिन और

---

1. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 73.
2. वही

मुश्किलों का भंडार है । उन के ऊपर दुबारा अत्याचार का बोझा भी पड़ जाता है । गाँव के जीवन के साथ इन श्रमियों का संबन्ध है पर वह एकदम सतही है । मूलत: ये गरीब और अनजान हैं । उन की मजबूरी का नाजायज काम उठाना ठेकेदारों एवं ज़मीन्दारों का काम हैं । शिवप्रसाद सिंह ने उन के जीवन का चित्रण करके ग्रामीण परिवेश को जीवन्त बनाया है और उन की मजबूरियों का विश्लेषण कर के ग्रामीण समाज में व्याप्त सामन्तीय स्वभाव को भी प्रस्तुत किया है ।

प्रताडित नारी वर्ग

सदियों से नारी वर्ग उपेक्षित ही रहा है । भारतीय समाज में इस समस्या का रूप बहुत ही विकराल है । आधुनिक युग में भी नारी वर्ग प्रताडना के पात्र हैं । यह बात इस समस्या की गहराई को ही सूचित कर रही है । हर युग के कथासाहित्य में समाज की इस अनैतिक दृष्टि के विरुद्ध स्वर गुंजायमान रहा है ।

शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामीण परिवेश में इस समस्या को परखा है और इस के अनेकानेक पहलुओं का निरूपण किया है । यह बात भी ध्यान देने की है कि शिवप्रसाद सिंह ने मात्र नारी जीवन की समस्याओं का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि नारी के व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है । नारी की उदारता उस की सेवा-परायणता जैसे पक्षों पर उन्होंने ज्यादा बल दिया है । इस का प्रमुख पक्ष निम्नवर्गीय औरतों पर किये जाने वाले शोषण है । हमारे समाज में अब भी एक ऐसी मान्यता प्रचलित है कि स्त्री भोग्या है । समाज के कई कोणों से इस के विरुद्ध कई प्रकार की संस्थाओं, व्यक्तियों, सृजनात्मक प्रतिभाओं के रचनात्मक कार्यक्रम के बावजूद यह मान्यता पूरी तरह से मिट नहीं गई है । शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में इस समस्या का अमानवीय रूप प्राप्त होता है । ग्रामीण परिवेश को परख कर उन्होंने उस की गहराई का भी परिचय दिया है ।

"महुए का फूल" नामक कहानी में आर्थिक विपन्नता के कारण सत्तो की शादी, उस की इच्छा के विरुद्ध होती है । शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में आर्थिक कठिनाइयों से जूझने वाले गाँववालों के चित्र अधिकाधिक रूप में मिलते ही हैं । सच्चाई यह है कि इन कठिनाइयों का वास्तविक बोझ स्त्री को उठाना पड़ता है ।

"आर पार की माला" में नीरू नामक नट जाति की युवति की दयनीय अवस्था का चित्रण है । घर के सदस्यों की भूख मिटाने केलिए उसे ज़मीन्दार की शारीरिक भूख मिटाना पड़ता है । इस कार्य केलिए प्रेरणा देनेवाला स्वयं उस का बाप है । वह नीरू को ठाकुर की छावनी में पहुँचाता है । नीरू का दुख अपने स्थान में है । रज्जब, जुम्मन और मटरू के बीच पैसे को ले कर लड़ाई होती है । अपनी आकाँक्षाओं को बिखरती जान कर नीरू निपट अकेली हो जाती है । कहानीकार ने नीरू की मानसिक अवस्था का चित्र यों किया है - "मैं भी वहीं ठाकुर की छावनी में रहती हूँ । झोंपड़ी में तो कभी कभी आती हूँ । उस की झोंपड़ी में मूँज की रस्सी है जिस से वह हजारों नदियों का पाट बाँध सकती है । जंगल में पीले कनेर के फूल मुस्कुरा रहे हैं । उन को भी क्या कमी वह एक किनारे पर बैठी है । पर लाख ढूँढ़ने पर भी उसे कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता । केवल प्रवाह, जल, गहरा पानी । उस के मन में किसी को बगल में बैठ कर पार जाने की इच्छा है, पर कोई किनारा नहीं, केवल पार की माला है । आर-पार की माला"[1] । नीरू का जीवन उतना शून्य और निरर्थक बन जाता है । वह अंत में बदनामी का पात्र भी बन जाती है ।

"कर्मनाशा की हार" में अंधविश्वास के नाम पर होने वाले अत्याचार की ओर इशारा है । बाढ़ को रोकने केलिए विधवा युवति तथा उस के दुध-मुँहे बच्चे की आहुती

---

1. आर-पार की माला, प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ 152,54.

देने की बात होती है । भैरो पाँडे उस का विरोध करता है । लेकिन ग्रामीण परिवेश में निराधार और निरालंब स्त्री के ऊपर किये जानेवाले अत्याचार का पैशाचिक रूप उक्त कहानी में उपलब्ध है ।

"केवड़े का फूल" नामक कहानी में अनीता नामक युवती की दर्दनाक अवस्था चित्रित है । अनिता अपने पति के घर से भाग आयी है । उसे फिर पति के घर भेजे जा रहे हैं । अनीता के पति के एक खत से उस पर हुए अत्याचार का पता लगता है । उस के पति ने लिखा है तुम्हें आना हो, तो आओ, लेकिन याद रखना, तुम्हें मैं पैरों की जूती से अधिक कुछ नहीं समझता । तुम्हें वह सब करना पड़ेगा, जो मैं कहूँगा । तुम्हें अपने को मेरे समाज केलिए बदलना होगा तुम मेरी ही नहीं, मेरे मित्रों तक केलिए मनोरंजन की साधन हो मेरा सारा मतलब तुम समझती होगी सतीधर्म की दुहाई दे कर तुम मेरी इच्छाओं को नहीं रोक सकती ......"[1] । इसी बुरी हालत में पड़ने केलिए अनिता बिलकुल तैयार नहीं थी । इस कारण ही वह पति के घर से भाग आयी थी । लेकिन उसे अपने घर में भी स्थान नहीं है, क्योंकि वह विवाहित है, उस का स्थान पति के घर में है । अंत में "... वह उसी असह्य अग्नि में, उसी बदबूदार नरक कुंड में, पिता की इज्जत और समाज के बंधन के नाम पर चली गयी"[2] । हमारे समाज ने नैतिकता के कितने भीषण प्रतिमान बनाए हैं, यह कहानी उसी को उदाहृत करती है । स्त्री अकेली नहीं रह सकती ; स्त्री का, विवाह के बाद अपने घर में कोई स्थान नहीं, पति ही परमेश्वर है, आदि आदि ।

---

1. कमनाशा की हार, पृष्ठ 58.
2. वही

"रेती" नामक कहानी के एक पात्र का कथन है - "शादी-ब्याह में औरत को उठा लाते वक्त बाजा बजाते हैं, घर पर आगे दिन बजाते रहते हैं और यह क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक गाजे बाजे के साथ औरत की लाश न उठा जाय"[1] । इस कथन में जीवन की निरर्थकता ही प्रकट होती है । विवाह के छः साल बाद भी गंगा बहू की कोख न भरी । तो सभी प्रकार के अनिष्ट कार्य, दुर्घटनाओं को उस के सिर पर मढ़ा दिया जाता है । रात को ससुर के पैर फिसल कर गिरने या गाँव में बाढ़ हो आने पर साँस कह देती है - "आग लगे उस कोख में । सत्यानाशी अपने तो जायेगी ही, पूरे घर को चबा जायेगी"[2] । अंधविश्वास का विकास इस सीमा तक बढ़ता है कि साँस और बहू के बीच कोई संबंध ही नहीं रहता । अंधविश्वास ने स्त्री को अपनी अस्मिता तक को भुला देने को मज़बूर किया है । अंधविश्वासों और रूढ़ियों ने स्त्री की अस्मिता को नकारा है । इस कारण से पुरुष समाज ही नहीं बल्कि स्त्री की अस्मिता का निराकरण स्त्री समाज भी करता है ।

"नन्हो" कहानी में भी आजीवन दुख सहनेवाली एक नारी का चित्रण है । डोला उतार कर नन्हो की शादी मिसरीलाल से हुई थी । नन्हों का पति मिसरीलाल, एक पैर का पैदाइशी लंगड़ा था । नन्हो के शब्दों में उस के जीवन के प्रारंभ से छायी उदासी प्रकट होती है - मैं तो दुखकी साझीदार हूँ, सुख कहाँ है ? उदासी में पली, उदासी में ही बढ़ी । जन्मी तो माँ मर गयी, बड़ी हुई तो बाप को बोझ बनी"[3] । अब नन्हो को लंगड़ा पति मिल गया है । उस का दाम्पत्य जीवन भी अधिक दिनों तक नहीं रहा । पति की मृत्यु के बाद रामसुभग भी नन्हो को छोड़ जाता है । उस के बाद नन्हो का जीवन कठिनाइयों से भर जाता है ।

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 180.
2. वही , पृष्ठ 183.
3. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 17.

"दादी माँ" शिवप्रसाद सिंह की पहली तथा बहुचर्चित कहानी है । स्नेह और ममता की मूर्ति दादी माँ, गाँव भर के बीमारों के "दिन-रात चारपाई के पास बैठी रहती, कभी पंखा झलती, कभी जलते हुए हाथ पैर कपड़े से सहलाती, सर पर दाल चीनी का लेप करती और बीसों बार सर छू-छू कर ज्वर का अनुमान करती"[1] । अंतिम दिनों में ऐसी सेवामयी दादी माँ को भी बुरी हालत हो जाती है । दादी की मृत्यु के बाद, उन के श्राद्ध में, दादी माँ के मना करने पर भी, अतुल संपत्ति का व्यय किया । इस का कर्ज चुकाने केलिए दादी माँ को अपनी अंतिम संपत्ति, एक सोने के कंगन को देती हुई कहती है - "तेरे दादा ने यह कंगन मुझे इसी दिन केलिए पहनाया था । मैं ने पहना नहीं, इसे सहेज कर रखती आयी हूँ"[2] । दादी माँ, अवसर से लाभ उठानेवालों की शिकार न गयी । उस अवसर पर किसी ने उस की सेवा, प्रेम आदियों के बारे में न सोचा ।

जितनी भी सेवा करे तो भी लोग उस में बुराई देखते हैं । "उपधाइन मैया" कहानी की उपाधायिन इस केलिए उदाहरण है । रामसरण उपाध्याय की बहू, विधवा होने पर वह अपने घर को ही छोटी दुनिया बना बैठी । लेकिन गाँव में बीमारी फैलने पर "उपाधायिन जी घर-घर दवा बाँट रही हैं, जैसे धन्वन्तरी हो गई है, मरने को बचानेवाली है"[3] । ऐसी सेवामयी उपाधायिन पर भी लोग आरोप लगाने लगे कि "रायसाहब के लड़के के साथ उपाधायिन मैया का अनुचित संबंध है । खुद जोखन पाँडेय ने उन लोगों को राय जी के घर अकेले कमरे में बातचीत करते देखा है"[4] । विधवा होने के कारण ही उस के ऊपर आरोप लगाते हैं । उदार और सेवारत नारी पर यह एक प्रकार का प्रताड़न है ।

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 41.
2. वही पृष्ठ 45-46
3. वही पृष्ठ 135.
4. वही पृष्ठ 140.

"अंधकूप", "अरुन्धती", "आस्था और आत्महत्या के बीच" "[redacted]", "[redacted]" आदि कहानियों में भी नारी प्रताड़ना प्रसंग प्राप्त होता है । ग्रामीण जीवन में व्याप्त इस नैतिक पतन का चित्रण सहजता के साथ शिवप्रसाद सिंह ने किया है । इन कहानियों में ग्रामीण जीवन का सामाजिक पहलू अधिक स्पष्ट होता है ।

बदलते गाँव की परिस्थितियाँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के ग्रामीण जीवन में कई प्रकार के परिवर्तन लक्षित होते हैं । उस के कई कारण भी हैं । शिवप्रसाद सिंह की कुछ कहानियाँ उन परिवर्तनों से संबंधित हैं । ग्रामीण जनता की जीवन रीतियों में बुनियादी परिवर्तन के न आने के बावजूद हम यह बता सकते हैं कि वैचारिक स्तर पर कई प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं । सब कुछ सहनेवाले किसान भी होते हैं और कभी कभी अन्याय के प्रति असहिष्णु होनेवाले किसान भी मिलते हैं । यह एक उदाहरण मात्र है । इस प्रकार के अनेक परिवर्तन ग्रामीण जीवन में देखे जा सकते हैं ।

अन्याय के प्रति असहिष्णुता

कर्मनाशा नदी की बाढ़ को रोकने केलिए टीमल मल्लाह की विधवा फुलमत तथा दुधमुँहे बच्चे को नदी में फेंकने का निर्णय मुखिया ने किया । उस निर्णय को सुनकर कई लोग सोचने लगे - "पता नहीं किस वैर का बदला ले रहा है, बेचारी से"[1] । इस अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाने को कोई तैयार नहीं था । तब मुखिया ने भैरोपांडे से अपनी राय पूछा । तो भैरो पांडे की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी

कर्मनाशा की बाढ़ दुध मुहे बच्चे और एक अबला की बली देने से नहीं

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 23.

2. वही पृष्ठ 24.

रुकेगी, उस केलिए तुम्हें पसीना बहा कर बाँधों को ठीक करना होगा ......"[1] ।
भैरो पाँडे का चरित्र सिर्फ एक व्यक्ति चरित्र के सन्दर्भ में ही प्रासंगिक नहीं है । ग्रामीण परिवेश में उस के शब्द नये वातावरण की सूचना देते हैं । इस पात्र के चित्रण के बारे में नामवर सिंह ने यों लिखा है - ......"कर्मनाशा की हार" वाले भैरो पाँडे जैसे सशक्त व्यक्ति केवल चरित्र नहीं बल्कि आज की ऐतिहासिक शक्ति के प्रतीक हैं"[2] ।

"उपहार" कहानी में ठाकुर के अन्यायों के खिलाफ़ आवाज़ उठानेवाली, ठाकुर की ही नौकरानी का चित्र देख सकते हैं । ठाकुर के नौकर बच्चन की क्लीबता के विरुद्ध गुलाबी का कथन बदलती मानसिकता केलिए उदाहरण है । बच्चन से वह कहती है - "नहीं, यह न होगा, छोड़ दो काम उस का । आज ही, इसी रात हम गाँव छोड़ कर कहीं और चले जायें । बेज़ुबान बैल की तरह चोट सह कर चुप रहना तो नहीं पड़ेगा । बैल भी मार पड़ती है तो "बाँय-बाँय" करते हैं । तुम तो बैल से भी गये-बीते हो"[3] । रात को जब ठाकुर गुलाबी से मिलने केलिए चोरी-चोरी आता है तो वह उबल पड़ती है - चले जाओ यहाँ से, हम तुम्हारे नौकर नहीं है"[4] । ठाकुर हंटर से खाल खींचने की धमकी देता है । तब गुलाबी आवेश से बाहर होती और कहती है - "जाऐ अपनी घरवाली की खाल खींचो ठाकुर, वही दरबे में बंद मुर्गी की तरह ओंठ सिये तुम्हारा जुलुम सहेगी, काहे से कि तुम उसे चारा देते हो । अपना क्या हाथ पाँव चला के दो रोटी कहीं से भी कमा लेंगे । तुम्हारी धौंस सहनेवाले कोई और होंगे, हाँ"[5] । गुलबी झटके के साथ मुड़ी और अपनी झोंपड़ी

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 24:
2. कहानी नई कहानी - नामवर सिंह, पृष्ठ 38.
3. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 101-3
4. वही
5. वही

से कागज़ में लिपटा एक बंड़ल उठा लाई "यह है तुम्हारी साड़ी, यह उपहार अपनी घरवाली को दे देना" । उस ने गुस्से से बंड़ल ठाकुर के मुँह पर फेंक दिया "कसाई कहीं का"[1] । गुलाबी की परिकल्पना के पीछे मात्र विद्रोही दृष्टि ही नहीं बल्कि ग्रामीण मानसिकता के बदलाव की सूचना भी है ।

"भेड़िये" नामक कहानी का मुखिया सत्ता की प्रमत्तता में डूबा हुआ व्यक्ति है । उस का अत्याचार बढ़ता ही रहता है।लेकिन उस की आलोचना करने केलिए दीना-सिंह आगे आता है । दीना सिंह मुखिया की हरकतों की आलोचना करता हुआ कहता है - मुखिया हो चाहे ग्रामप्रधान हो, उसे लड़ने-भिड़ने वाला आदमी चाहिए । आखिर भी ग्राम-समाज की ज़मीनों का लगान ड़कारते हैं, पोखरियों की मछलियाँ खाते हैं और बेचते हैं, तो क्या गाँववाले अंधे है"[2] ? पहले तो कोई इस प्रकार ग्रामप्रधान या मुखिया की आलोचना करने को कोई तैयार न होता था । लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं । इस प्रकार की बातों से पहले भी लोग अवगत थे । लेकिन उन में यह क्षमता नहीं थी कि कुछ कह सके । भय का वातावरण दूर गया है।प्रस्तुत कहानी उस परिवर्तित अवस्था की ओर ही इशारा करती है ।

"आदिम हथियार" कहानी में भी चौधरी के बेटे श्यामलाल की विद्रोह भावना प्रकट है । वह कालज में पढ़ता है । छुट्टी बिताने केलिए आया है । साथ पढ़नेवाली अपनी प्रेमिका आशा को भी घर ले आया है । इस बार उस से शादी करने का विचार है । लेकिन श्यामलाल को दंड देने के उद्देश्य से मुखिया पंचायत बुलाता है । मुखिया हुकुमसिंह के अत्याचारों से सभी तंग हो चुके थे । श्यामलाल अपने दोस्तों की प्रेरणा से श्यादी-व्याह जैसे वैयक्तिक बातों केलिए पंचायत बुलाने की रीति का विरोध करता

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 103.
2. भेड़िया, द्वितीय संस्करण 1979, पृष्ठ 29.

है । उस का कथन है - "मैं नहीं मानता आप की पंचायत । किसी के शादी-ब्याह से पंचायत का क्या वास्ता ? पंचायत क्या शादी-ब्याह का दफ्तर है ?"[1] बाद में श्याम लाल के विरोध में मुखिया निर्णय स्वयं लेने लगता तो वह अपने आदिम हथियार से मुखिया का सामना करने की धमकी देता है - "श्याम लाल ने मुट्ठियाँ बंद कर के हाथ पंचायत की ओर फैला दिये । दोनों अंगूठे तने खड़े थे, "यह है आदिम हथियार, बाबू साहब, जिसे भगवान ने गरीब से गरीब इनसान को भी दे रखा है, ताकि जब ज़रूरत पड़े, अंधी भीड़ किसी के निजी मामले में दखल दे तो वह इस का बाकायदा उपयोग करें"[2] । आँचलिक कहानियों के सन्दर्भ में इन कहानियों की अलग प्रसंगिकता है । आँचलिक रचनाओं की सामाजिक दृष्टि की सूचना ऐसी रचनाओं में मिल जाती है ।

बेरोज़गार की समस्या:-

बदलते गाँव की और एक स्थिति है शिक्षितों की बेकारी । गाँव के किसान अपने बच्चों की पढ़ाई केलिए क्या नहीं करते हैं । कर्ज लेते हैं, कड़ी मेहनत करते हैं, इक्के-दुक्के जानवरों या थोड़ी बची हुई जमीन तक को बेच डालते हैं । लेकिन शिक्षा-प्राप्ति के बाद नौकरी की समस्या बनी रहती है । नौकरी की खोज शहरों में ही करनी पड़ती है । वहाँ नौकरी केलिए या तो रिश्वत देना है या सिफारिश की आवश्यकता है । उतनी पहुँच उन ग्रामीणों की होती नहीं है । फिर उन केलिए अपने गाँव का ही सहारा है । इस प्रकार शिक्षित ग्रामीण युवक बेकार हो कर गाँव में घूमते-फिरते हैं । शिवप्रसाद सिंह ने शिक्षित बेकार ग्रामीण युवकों की समस्या का चित्रण "ताड़ी घाट का पुल", "एक यात्रा सतह के नीचे", "बड़ी लकीरें", "तो" आदि कहानियों में किया है ।

---

1. भेड़िया, द्वितीय संस्करण 1979, पृष्ठ 117.
2, वही पृष्ठ 118.

"ताड़ीघाट का पुल" तिलक उच्च शिक्षा प्राप्त कर के अपना घर बेकार बैठा है। कुछ महीनों पहले उस के पिता बिसू पाँडे की मृत्यु हो गयी है। बिसू पाँडे ने अफीम-गाँजे का लुका-छिपा व्यापार कर के ही तिलक की पढ़ाई केलिए पैसे कमाये थे। यह बात अभी अभी वह जान गया है। उस पर अब वह दुखी है। उस की माता, मिसिरजी की बेटी पुष्पा से तिलक की शादी कराना चाहती है। तब मिसिरजी ने लड़के की बेकारी तथा उस के पिता की बदनामी की ओर संकेत करता है - लड़के को किसी ठीक-ठाक काम-धन्धे में लगाओ। कोई अच्छी-सी नौकरी कर लेनी चाहिए। ज़माना बड़ा खराब है और फिर बुरी संगत आदमी को कहाँ नहीं खींच ले जाती ? ?"[1] निराश तिलक मिसिरजी की जवाब से और अधिक दुखी हो जाता है। गाँव के मध्यवर्गीय जीवन के एक नए सन्दर्भ को इस कहानी के माध्यम में शिवप्रसाद सिंह ने लिया।

"एक यात्रा सतह के नीचे" शीर्षक कहानी का अवधू नामक युवक शिक्षित तथा बेकार है। अपनी पढ़ाई के बाद जब वह घर आया और पहली बार ईन्टर्व्यू दे कर लौटे तो तो उस समय घर में उस का कैसा स्वागत हुआ था। इस बार इन्टर्व्यू के बाद लौटने पर किसी ने उस पर ध्यान न दिया। तब वह पुरानी बात याद करता है - पहले उस के आने पर अम्मा कैसा परेशान हो जाती थीं, थाली में गरम पानी भर कर जब वे पैरों को खूब धो न लेतीं, जैसे उन्हें चैन न मिलता। अवधू मना करता तो झिड़क देतीं। गरम पानी से पैर धोने से थकान निकल जाती है। हाँ, ऊपर पैर कर लो; ठीक से बैठ जाओ बचवा। कभी बालों को सहलातीं जैसे मैं धूल-माटी में खेल कर वापस लौटा हूँ"[2]। लेकिन कई बार इन्टर्व्यू में जाने पर भी

---

1. मुरदा सराय, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 14.
2. मुरदा सराय, पृष्ठ 112.

अवधू को कोई नौकरी नहीं मिली । वह आज भी एक इन्टर्व्यू के बाद थका-हारा ही घर लौटा है । कोई उस पर ध्यान न देता है । वह इस उपेक्षा या तिरस्कार का कोई कारण समझ न सका । इन्टर्व्यू में पराजित हो जाने पर क्या वह निकम्मा, नीच और नालायक हो गया ? सभी उस के प्रति रूष्ट-से दिखाई देते हैं । वस्तुतः इस कहानी में अवधू के घरवालों अन्यमनस्कता का ही चित्रण है, जिस से अवधू की परेशानी बढ़ती है । लेकिन यह एक परिवर्तित यथार्थ की कहानी है । ऐसी कहानियाँ शहरी वातावरण में खूब लिखी गई है । ग्रामीण समाज में यह सन्दर्भ परिवर्तन का सूचक है ।

"बड़ी लकीरें" नामक कहानी का सखा एम.ए.पास किया हुआ युवक है । पर बेकार बैठा रहता है । उस को कोई नौकरी नहीं है । इस वर्ष फसल भी अच्छी न रही । इस पर सखा का पिता रूष्ट होता है और कहता - "खप्पड उठा लो - भीख भी माँगोगे तो अपना पेट तो चल जायेगा" । बाबू आँगन के तार धोती फैलाते हुए बुदबुदाते हैं - "खेत रेहन रख कर पढ़ाई करवाई कि बबुआ गिरानी में सहारा होंगे । बबुआ लाश के भार बनेंगे ई तो हमरे करम ने भी कभी सोचा नहीं"[1] । तब अपनी बेकारी से मुक्ति पाने तथा गाँव की कुछ सेवा करने के उद्देश्य से सूख में टेस्टवर्क की जो योजना थी, उस में शरीक होने को सखा तैयार होता है । लेकिन पंचायत का मुखिया तथा पंचायत के ठेकेदारों ने उस की आशाओं में पानी फेर दिया । घर की देखभाल की समस्या से निपटने केलिए ही उस ने ऐसा किया था । लेकिन ग्रामीण जीवन से मिलजुल कर जीने की उस की इच्छा के बावजूद वह पराजित होता है ।

"तो" शीर्षक कहानी में बेटे को कोई नौकरी न लगने के कारण पिता अपना नियंत्रण तक खो बैठता है । वह कहता है - "निकल जा मुँह काला कर के । बहुत

---

1. भेड़िये, पृष्ठ 14.

खिलाया-पिलाया, अब हो गया हिसाब चुकता । अपना अलग इंतजाम कर"[1] । पढ़ाई की ओर इच्छा के बढ़ने के साथ साथ समाज के ऊँचे तबके के लोगों के निकट तक पहुँचने की लालसा और सुविधायें बटोरने की आकांक्षा बढ़ती है । उस दिशा में जब प्रगति होती नहीं है तो मध्यवर्गीय मानसिकता उबल पड़ती है । संबंधों के मूल्य को भी ठुकरा दिया जाता है ।

<u>परिवर्तन की अन्य दिशायें</u>

संयुक्त परिवारप्रथा की टूटन गाँव में भी होने लगी है । उस का चित्रण "बीच की दीवार" और "तकाबी" नामक कहानियों में हुआ है । "बीच की दीवार" कहानी में बँटवारे का वर्णन यों किया गया है -"बाबू लहरी सिंह अपने भाइयों से अलग हो गये । बूढ़ी माँ ने अपने जीते जी लहरी को इस तरह बँटवारा करते देखा तो रो-रो कर आँखों की रोशनी खो बैठी, पर इस "बोरहे" के प्रति उन के मन में कुछ ऐसा प्रेम था कि उन्हों ने नयी बहू के साथ ही रहने का निश्चय किया । बीच आँगन में एक तरफ़ "डँडवारी" पड़ गयी । बाबू लहरी सिंह ने पुश्तैनी आँगन को उस की तमाम सुख-दुख-भरी यादगारों के साथ ही दो टुकड़ों में बाँट दिया"[2] । इसी प्रकार "तकाबी" नामक कहानी में भी संयुक्त परिवार की अलगौझा का वर्णन यों दिया गया है - "परिवार टूट कर बिखरा तो शंकर सिंह खुश ही हुए । अब अपनी खुदमुख्तारी है । जैसा चाहेंगे वैसे रहेंगे । आँगन में डँडवारी पड़ी और गली में नया दरवाज़ा खुला"[3] ।

जमीन्दारी तंत्र में खास परिवर्तन न होने पर भी कहीं कहीं बाहरी तौर पर जो परिवर्तन हुए है, और कहीं कहीं के टूटने के कारण उन के यहाँ भी कठिनाइयाँ आ पड़ी है । उस ओर भी कहानीकार ने संकेत किया है । 'आखिरी बात' इस की कहानी

---

1. भेड़िये, पृष्ठ 87.
2. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 202.

है । इन परिवर्तनों और बदलते हुई अवस्थाओं पर कहानीकार ने प्रकाश डाला है - "जमीन्दारी टूटी तो बड़े मियाँ को गम न हुआ कि ज़मीन चली गयी या कि नेचौ-टोपी और चश्मे की सदाबहारी रौनक में कोई फर्क आ गया"[1] । आधुनिक जीवन की सुविधाओं को खुलकर स्वीकार करनेवाली औरतों का चित्रण कर के भी, इस बदलाव को शिवप्रसाद सिंह ने दिखाया - जैसे खैरा पीपल कभी न डोले" शीर्षक कहानी में । अपने अधिकार केलिए लड़नेवाली औरतों का चित्रण "धरातल" में हुआ है ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में ग्रामीण समाज जीवन्त है । अत: उन्होंने उस समाज के सभी गतिशील पक्षों का चित्रण किया है । इसलिए उन के पात्र हमारे ग्रामीण समाज की जीते-जागते प्रतीक हैं ।

शहरी कहानियाँ

शिवप्रसाद सिंह की करीब एक दर्जन कहानियाँ शहरी जीवन से संबंधित हैं । इन में "उस दिन तारीख थी", "पोशाक की आत्मा", "प्रायश्चित्त", "शहीद दिवस", "हाथ का दाग", "बिना दीवार का घर", "पर कटी तितली", "मैं, कल्याण और जहाँगीरनामा", "प्लास्टिक का गुलाब", "चेन", "जंजीर, फायर ब्रिगेड और हन्यान", "बेज़ूबान लोग" आदि प्रमुख हैं ।

शिवप्रसाद सिंह की ग्रामीण कहानियों में अपनी सहजता और अनुभूति की तीव्रता है । तथा कथित शहरी कहानियों में उस सहजता का अभाव है । शहरी जीवन की गहराई तक जाने में वे पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं ।

नगर जीवन से संबंधित उन की ज्यादातर रचनाओं में शहरी जीवन के दिखावे, बहानेबाजी और मूल्यहीनता के प्रसंग उभरे हैं । इन कहानियों में डाक्टर, प्रोफसर,

---

1. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 105.

बड़े मकान मालिक, होटल मालिक, शोध विद्यार्थी आदि उच्च वर्ग के पात्र भी हैं और रिक्शेवाले, टाक्सी ड्राइवर, गरीबी के कारण इज्जत बेचनेवाली औरत आदि निम्नवर्गीय पात्र भी ।

"उस दिन तारीख थी" नामक कहानी का पात्र देवी सिंह एक साधारण ग्रामीण किसान है । ठाकुर देवनाथ ने उस की खड़ी खेती का सत्यानाश कर दिया । उस के खिलाफ़ देवी सिंह मुकदमा लड़ रहा है । आज मुकदमे की तारीख है । बड़े सबेरे गाँव से निकल कर काफ़ी कुछ कठिनाइयाँ सह कर वह शहर पहुँचता है । मुख्तार ने अपनी फीस, पेशकार की फीस, टैपिंग चार्ज आदि के नाम पर देवी सिंह के भाड़े तक लूट लिया । लेकिन अदालत में जब देवी सिंह का नाम बुलाया तो मुख्तार और कहीं था । इसलिए उस का केस स्थगित किया गया । अशिक्षित लोगों पर किए जाने वाला शोषण ही इस में प्राप्त होता है ; खास कर ग्रामीणों पर शहरी व्यक्तियों का शोषण

"पोशाक की आत्मा" शीर्षक कहानी में पौरस्त्य सभ्यता के प्रवक्ता तथा पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे हुए एक डाक्टर का चित्रण है । वह औरतों को अपनी आत्मा की पोशाक मान कर क्षण-क्षण बदलने को तैयार है । लेकिन कुसुम नामक युवति उसे अपने जाल में फँसा लेती है । वह शादी केलिए मज़बूर करती है । कहानी एक कृत्रिम नैतिक चिंतन के आस पास शिथिल होती नज़र आती है ।

प्रोफसर रमेश की पत्नी रंजना एक बार पति से रुष्ट हो जाती है और वह अपने डाक्टर की क्षुद्रवासना का शिकार बन जाती है । यह समाचार जब मुहल्ले भर में फैल जाता है तो रमेश, रंजना को छोड़ कर बेटे के साथ विदेश चला जाता है । पति और बेटा दोनों उस केलिए नष्ट हो जाते हैं । इस परिस्थिति में प्रायश्चित्त करनेवाली रंजना का चित्रण "प्रायश्चित्त" नामक कहानी में हुआ है । अपने को

सभ्यता के एकमात्र अधिकारी समझनेवाले उच्चवर्ग के लोगों की मानसिकता में निहित अमानवीयता और उन के नंगेपन का, इस कहानी में चित्रण किया गया है ।

जयपुर शहर में आया हुआ विपिन, वहाँ के होटल मालिक, भिखारी, मदारी, धार्मिक जीव, विमला भाभी आदि कई पात्रों को एक साथ प्रस्तुत करने का असफल प्रयत्न "बिना दीवार का घर" नामक कहानी में हुआ है । नगर जीवन की व्यस्तता के बीच में भी पास के मंदिर में आनेवाले लोगों का चित्रण "हाथ का दाग" नामक कहानी में किया गया है । उस के साथ ही जीविका चलाने केलिए व्यभिचार करने को विवश निर्मला तथा पति के सुख-सुविधा के हेतु पैसे कमाने की इच्छा से वशीभूत हो कर व्यभिचार करनेवाली विमला का चित्रण भी हुआ है । "मैं, कल्याण और जहाँगीर नामा" शीर्षक कहानी में एक साथ तीन कथायें चलती हैं । पहली कथा होस्टल में रहने वाला रिसर्च स्कोलर दयानाथ की है । गाँव में रहनेवाली पत्नी और एक बच्चे की जानकारी दिये बिना, शहर में तृप्ति नामक युवति से शादी करने की बात दयानाथ सोचता है । दूसरी कथा होस्टल का नौकर चरन की है । पत्नी तक की देखरेख करने में असमर्थ हो कर वह उसे मायके में ही छोड देता है । यही उस की विवशता है । तीसरी कथा गाँव के कल्याण नामक एक लुहार की है, जो जहाँगीर नामा में दी गयी है । कल्याण को एक अधेड़ उम्र की विधवा से प्रेम पैदा हो जाता है । कल्याण अपने प्रेम का सबूत देने केलिए सामने की छत से कूद जाता है । बेचारा अपने अंधे प्रेम के कारण लहूलुहान हो कर मर जाता है । इस कहानी में शिक्षित सभ्य दयानाथ के झूठे व्यक्तित्व को दूसरों की कथा से गहराया गया है ।

"प्लास्टिक का गुलाब" एक सामान्य प्रेम कहानी है । मात्र इस का परिवेश शहरी है । एक बडे मकान मालिक की निर्दयता तथा गरीब रिक्शेवाले की हमदर्दी "जंजीर, फयर ब्रिगेड और इन्सान" नामक कहानी में व्यक्त हुई है । "चेन" शहर के

एक गरीब रिक्शेवाले की कहानी है । बेचारा अपना खराब रिक्शा दिन-रात चला कर, पाँच सदस्यों के परिवार का पालन करता है । अन्यायों को चुपचाप सहने तथा उस के खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किए बिना जीनेवाले लोगों की कहानी है "बेजुबान लोग" । इस प्रकार शहरी जीवन की गहराइयों तक न जा कर उस के बाह्य रूप का विश्लेषण मात्र इन कहानियों में प्राप्त होता है । इन में न चरित्र की प्रधानता है, न परिस्थिति का । नगर जीवन की सामान्य कहानियों के रूप में इन सब की गणना हो सकती है ।

आँचलिकता का स्वरूप

यह तो विदित बात है कि आँचलिक रचनाओं को आँचलिक बनाए रखने केलिए कई उपादानों की आवश्यकता हैं । पर यह भी स्वीकृत तथ्य है कि आँचलिकता को बनाए रखने का मतलब कुछ ऐसी आँचलिक स्थितियों का बाह्य रूपांकन भर नहीं है । आँचलिक स्थिति रचना के आन्तरिक शिल्प के रूप में स्वीकृत हो, रचना के बाह्य एवं आन्तरिक रूप को सृजनशील बनाएँ, तभी तो वह आँचलिक रचना है । शिवप्रसाद सिंह ने आँचलिक अवस्था को उस रूप में ही आत्मसात किया है ।

उपेक्षित निम्नवर्गीय लोगों की जीवन रीतियाँ

हिन्दी में शिवप्रसाद सिंह नई कहानी के दौर के एकमात्र कहानीकार हैं जिन्होंने निम्नवर्गीय लोगों पर कहानियाँ लिखीं । इस आधार पर यही विवेचन के योग्य है कि इन निम्नवर्गीय लोगों के जीवन और उन के आचार विचारों का चित्रण कहानीकार ने किस प्रकार किया । यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि शिवप्रसाद सिंह ने इन लोगों के जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक दशा पर ही ज्यादा बल दिया है, विशेष रूप से उन पर किये जानेवाले शोषण और अत्याचार पर बल दिया है । फिर भी कुछ कहानियों में इन उपेक्षितों की जीवन-रीतियों का वर्णन हुआ है । बडी सूक्ष्मता के साथ कहानीकार ने उपेक्षित वर्ग के रहन-सहन का विस्तार से वर्णन किया है ।

"पापजीवी" में मुसहर लोगों का रहन-सहन अंकित है । इस प्रकार के वर्णन के दौरान भी हमें उन की गरीबी का परिचय मिलता है । एक उदाहरण दृष्टव्य है - "बब्बर को शराब और गांजे की लत थी, इसी नशे में वह अपनी पत्नी और लड़के को बुरी तरह पीटता भी था ; किन्तु इन तमाम लड़ाई-झगड़े के बाद जब वह दिन भर गाँव की तलैयों, धनकटे खेतों से थका-माँदा लौटता तो उस के पास एक गठरी में अंधे साँप, मेंढक कच्छ और बहुत सारी मछलियाँ होती, जिन्हें वह झोंपड़ी के दरवाजे पर बिखेर देता, छोटे-छोटे बच्चे तालियाँ बजा कर इन जल-जीवों से खिलवाड़ करते, दूसरी गठरी में धान की बालियाँ होती, जिन्हें बड़ी मुश्किल से वह खेतों में चूहों के बिलों को खोद कर निकाल लाता । उस दिन बब्बर के घर जैसे दिवाली उतर आती । मुद्दत से खूँटी पर रखे लंगोटे को वह बाँधता, ज़ोर की हाँक लगा कर बदलू को पुकारता । बदलू इस दावत की खुशी में कुत्तों के साथ साहियों का बिल अगोरता होता, वनमुर्गियों, खरहों के पीछे "लीहो, लीहो" करता दौड़ता रहता या कहीं मन में, ठाकुर की शादी में आयी, कसबिन के गीत की कोई पाँत उठ आयी तो जंगली जुही, करौंदे और गोखुरू के फूल इकट्ठा कर के उन्हें नोंच-नोच कर हवा में उछालता रहता"[1] । यह मिट्टी से मिला हुआ एक जीवन चित्र है । इस में संघर्ष और तड़प दोनों हैं । एक विशिष्ट वर्ग के सन्दर्भ में अंचल का जीता-जगता चित्र खिंचा जाता है ।

डोम जाति के लोग घुमक्कड़ वृत्तिवाले हैं । डाली-मौन्ही आदि बनाते बेचते फिरते रहते हैं । "इन्हें भी इन्तजार है" नामक कहानी में उन की जीवन रीति विन्यसित है - "किसी के घर शादी-व्याह पड़े, जनम का उत्सव हो या मरन का श्राद्ध, कबरी अपनी बूढ़ी माँ के साथ ज़रूर दिखाई पड़ती । शादी व्याहों के दिनों में तो वे एक-एक पखवार गाँव में रह जाते । आज शादी-मंगल केलिए नई दौरी चाहिए, तो कल व्याह केलिए पड़ुखा । आज हल्दी का भोज है, तो कल भतवान, परसों

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 39-40.

शादी का भोज । गली की मोड़ पर या किसी गंदे घूरे के पास, लोगों की पहुँच के परे, ताकि अनजान में भी कहीं किसी पर उन की छाया न पड़ जाय, कोई छू न जाय, कबरी अपनी माँ के साथ चिपकी हुई बैठी रहती । जीमनेवालों की पातें बैठती, खा कर उठती, बारी या नाई जूठे पत्तल उठा कर कबरी और उस की माँ के सामने फेंक देते । कबरी बगल से सोंटा खींच कर चौकन्नी खड़ी हो जाती, पत्तलों पर टूटपड़ने केलिए उतारू कुत्तों को वह सोंटा हिला-हिला कर धमकाती और उस की माँ जूठे पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़ों, बची-खुची तरकारियों, मिठाइयों के चूरे और दरी-चीनी के सीरे को काछ-काछ कर अलग-अलग हाँड़ियों में जमा करती जाती"[1] । अपने जातिगत व्यवसाय के बावजूद उन का जीवन फेंके गये अन्न केलिए मोहताज है ।

इस प्रकार उपेक्षित वर्ग-लोगों की कहानियों में उन के रहन सहन का विस्तार से वर्णन किया है । कहानीकार का उद्देश्य उन की गरीबी और उन की विडंबना का चित्रण करना भर है । पर उस के साथ-साथ ऐसे उपेक्षित वर्ग तमाम विरूपताओं के साथ अवतरित होता है ।

<u>अंचल का अंकन</u>

आंचलिक कहानी में ग्रामांकन पूरी सहजता के साथ होता है । यह एक अनिवार्य प्रवृत्ति भी है । कहानी के बीच-बीच में अंचल का अंकन जो होता है उस में अंचल की कई विशेषताओं का जिक्र भी होता है । ग्रामांकन का एक तरीका ग्रामीण प्रकृति का चित्रण है । शिवप्रसाद सिंह ने अपनी "बरगद का पेड़", "देऊ दादा", "उस दिन तारीख थी", "कर्मनाशा की हार", "पापजीवी", "माटी की औलाद", "सुबह के बादल", "धतूरे का फूल" "नाड़ी घाट का पुल", "किस की पाँखें", "धारा", "एक यात्रा सतह के नीचे", "एक वापसी और", "राग गूजरी" आदि कहानियों में प्रकृति की पूरी उपस्थिति के द्वारा ग्रामांकन किया गया है ।

---

1. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 67-68.

"बरगद का पेड़" नामक कहानी में गाँव के एक बरगद के पेड़ का चित्रण हुआ है । चित्रण इस प्रकार हुआ है - "बरगद का पेड़ मेरे बरामदे से ही दीखता है । लगता जैसे देवागढ़ी के टीले पर खड़ा यह बरगद का पेड़, हवा में तीखे-तीखे बाल फैलाये कोई राक्षस खड़ा हो । मैं इस पेड़ को होश आने के समय से ही देखता आ रहा हूँ । मैं ने इसे चाँदनी रात में देखा है, काली रात में देखा है, डूबते हुए सूरज के गेरूए आलोक में देखा है ; और प्रातः ओस-सने वातावरण में सोना रोलते दिनमणि के प्रकाश में देखा है ; पर मुझे यह ऐसा कभी न लगा । पुरवैये के झकोरे में, लंबी-लंबी शाखाओं की रगड़ में बेसुर भद्दा शब्द करते, श्मशान की खोपड़ी-सा दाँत फैलाये जैसे यह अट्टहास कर रहा है । उस के पैरों में सोयी तलैया शान्त पड़ी है । वह कभी बाहरी आक्रमणकारियों से गढ की रक्षा केलिए खाई का काम देती थी, अब प्रायः इस में एक तरफ़ बहुत दूर तक फैले,हुए सेवार, नगरमोथा और रेंड़ई की जड़ों को थूथन से खोद कर खाते हुए गाँवई सूअर और दूसरी ओर टीले के पास, थोड़े गहरे पानीवाले कंकरीले घाट पर स्नान करते हुए कुछ लड़के दिखाई पड़ते हैं । सूअरों और आदमियों के खित्तों को बीच से बाँटती हुई पुरइन की कतार सोयी रहती है जिस में मौसम में लाल फूल भी झाँकते हैं"[1] । बचपन की स्मृतियों और आस-पास घटित होते जीवन को कहानीकार ने पेड़ के माध्यम से चित्रित किया है । इसलिए वह प्रकृति की इकाई के रूप में चित्रित नहीं है । बल्कि जो जीवन खंड उपस्थित है उस के एक अविच्छिन्न पक्ष के रूप में है ।

प्राकृतिक इकाइयों के साथ साथ मौसम का भी विस्तृत चर्चा आवश्यक भी हो जाती है । ग्राम जीवन की आर्थिक स्थिति के साथ दिन-ब-दिन बदलते मौसम का अपना महत्व है । जब यही मौसम ग्रामीण जनता की इच्छाओं के साथ कराहता रहता है

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 11.

और उस का चित्रण दो दृष्टियों से महत्व का है । आंचलिक स्थिति की प्रतीति को संपन्नता देने की ओर और आर्थिक स्तर का स्वरूप निर्धारित करने केलिए "देऊ दादा" नामक कहानी में ऐसा एक वर्णन है - "माघ का पहला पखवार अभी बीता नहीं था । दो एक दिन और होंगे । बड़ी काली रात है । पूरे चार दिन की लगातार बारिश के बाद आज शाम को पश्चिम से सहमे-सहमे सूरज ने झांका और अभी जाड़े की मार से स्याह खपरैलें मुश्किल से अँगड़ाई ही ले आगी थीं कि फिर वही ढंढ़ और दिल कंपा देनेवाला पछुवा का सन्नाटा । जाड़े में ऐसी बहरश शायद ही कभी हो । नरबन का पूरा परगना जलमग्न हो गया । गीर्मी में बारिश न होने से सूखा पड़ा । जाड़े की फसल की आशा थी । आज चैती के खेतों में छोटी-छोटी चलवा मछलियों के झुण्ड़-सा पानी रेंग रहा है । ओले पड़ने से गहूँ टूट गये हैं । अलसी-मसूर तो उकठ जायँगी, और क्या हाल भगवान जाने । गाँव के बहुत से रास्ते बंद हो गये हैं । बदन साहू के पिछवारे वाला रास्ता स्कूल की इमारत गिरने से पट गया"[1] । बदलते मौसम का इतने विस्तार के साथ वर्णन करेने के पीछे यही दृष्टिकोण वर्तमान है - गाँव का एक नक्शा उतर आए । इसलिए सामान्य सी लगनेवाले ग्रामीण प्रसंग समूची कहानी को अपने भीतर समेट लेता है ।

बाढ़ के दिनों के नईहोड़ गाँव की प्राकृतिक विक्षुब्धता का चित्रण "कर्मनाशा की हार" नामक कहानी में हुआ है - "पिछले साल अचानक जब नदी का पानी जब समुद्र के ज्वार की तरह उमड़ता हुआ, नई होड़ से जा टकराया, तो ढ़ोलकें बह चलीं, गीत की कड़ियाँ मुरझा कर होठों में पपड़ी की तरह छा गईं । नईहोड़ वाले कर्मनाशा के इस उग्र रूप से काँप उठे, बूढ़ी औरतों ने कुछ सुराग मिलाया । भादों के दिनों में फिर पानी उमड़ा । बादलों की छाँव में सोया भोर की किरण देख कर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था । नईहोड़

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 86, 87, 88.

के वातावरण में हौलदिली छा गई । गाँव ऊँचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर रही थी, बड़े-बड़े पेड़ जड़मूल के साथ उलट कर नदी के पेट में समा रहे थे, यह बाढ़ न थी, प्रलय का सन्देश था, नईडीह के लोग चूहेदानी में फँसे चूहे की तरह भय से दौड़-धूप कर रहे थे, सब के चेहरे पर मुर्दनी छा गयी थी"[1] ।
"कर्मनाशा की हार"- शिवप्रसाद सिंह की चर्चित कहानी और हिन्दी की चर्चित आँचलिक कहानी है । कर्मनाशा के बाढ़ के दृश्य का वर्णन कहानीकार ने यों ही चित्रित तो नहीं किया । बाढ़ के आने के साथ गाँववालों में मचती खलबली का, उन के विश्वासों तथा आस्थाओं आदि का चित्रण कर के उन्होंने आँचलिक प्रवृत्ति का एक सशक्त और गतिशील वातावरण तैयार किया है ।

"माटी की औलाद" नामक कहानी में ग्रामांकन का दृश्य विन्यसित है । प्रकृति के कोप से बचने की इच्छा रखने वाला कुम्हार है । टोमल इस कहानी का पात्र है । मिट्टी का वर्तन बनाना उस का पुश्तैनी पेशा है । वह दिन भर प्रकृति की गोद में रहता है । सिर पर लाद कर मिट्टी ले आता है । दिन में चार-चार बार पानी दे-दे कर मिट्टी को सोने से भी ज्यादा हिफाजत से रखता है । उस का कारोबार भी प्रकृति पर आधारित है । ऐसी कहानियों में ग्रामांकन एक दृश्य-विधान मात्र नहीं है । "अभी दो दिन पहले तक आसमान बिलकुल नीला और साफ़ था । जर्द धूल का रंग सुनहला होने लगा था और पलाश के काले फूल अंगारे की तरह दहकने लगे थे कि अचानक आज चारों ओर से बादलों का समुंदर उमड़ पड़ा, लगता है, आसमान फट पड़ेगा । पीपल की लाल कोंपलें खामोश हो कर आनेवाले तूफ़ान का ज़ोर आँकने लगी थी । बरगद के पीले पत्ते हल्के से झटके से "पत्त-पत्त" गिर पड़ते थे । उमस बढ़ती ही जा रही थी और देखते-ही देखते पिघले हुए शीशे की हजारों धारों

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 9-10.

में पानी टूट पड़ा"[1] । ग्रामीण व्यक्ति की आस्था का मौसम के साथ जो गाढ़ा रिश्ता है उस का इतना गहरा वर्णन कहानीकार ने किया है । यह मात्र उस की आर्थिक कठिनाई से संबंधित नहीं है । बदलते मौसम के सूक्ष्म चित्रण के माध्यम से आंचलिक संदर्भ को सुरक्षित रखा गया है ।

"धतूरे का फूल" नामक कहानी में गाँव का दृश्यांकन हुआ है - "इस से थोड़ा और कट कर एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ है जिस की छाया में सारे देहात के ढोर दोपहर बिताते हैं । जुगाली करते हैं, सींग लड़ाते हैं, दुलत्ती झाड़ते हैं, और प्रेमालाप करते हैं । बगल की ऊँची मेड़ के पास थोड़ी हरियाली ज़रूर है । धतूरे के पौधे हैं जिन में सफेद-नीले रंगों की अनगिनत मिलावट के तरह-तरह के आकार के फूल खिलते हैं, या गोल-गोल काँटेदार फल जिन के छूने से सुख जो हो भीतर के दूध की तीखी और विषैली गंध की कल्पना से ही माथ काँप जाता है ....,"[2] । गाँव के इन दृश्यों के दौरान कहानीकार एक ग्रामीण अवस्था का, ग्रामीण आस्था के रूप में चित्रण करते हैं ।

कहीं कहीं दृश्यांकन मात्र सौन्दर्यांकन तक सीमित होता है । जैसे -ताड़ीघाट का पुल" नामक कहानी में - गंगा के कगार पर मुँह कर के खड़े हों, तो दाहिनी तरफ़ आप को ताड़ के पेड़ों की एक पूरी कतार दिखाई पड़ेगी, किसे लगता है किसी ने हरी ज़मीन पर सीधे रूल से हाशिया खींच कर बिठा दिया है । एक तरतीब से बराबर दूरी पर ज़मीन की छोटी-बड़ी इच्छाएँ मानों सिर उठा-उठा कर आसमान से बात कर रही हों । बायीं ओर गंगा पूरे कगार को अपने इठलाते शरीर से रोमांचित करती हुई खिलखिलाती रहती है जिस के दुधिया वक्ष में इक्के-दुक्के पेड़ों की छाया शीर्षासन करती प्रतीत होती है"[3] ।

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 143.
2. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 259-60.
3. मुरदा सराय, पृष्ठ 2.

अधिकतर कहानियों में अंचल का इतना वस्तुवादी वर्णन किया गया है और उसके माध्यम से आँचलिक परिवेश को सृजित किया जाता है । उदाहरण के तौर पर "धारा" या "एक यात्रा सतह के नीचे" जैसे कहानियाँ ली जा सकती है । "एक वापसी और" नामक कहानी में भी ग्रामीण दृश्य विधान का चित्रण यों हुआ है - "ढ़लती धूप में सारा गाँव कंधे से बोझ उतार कर सुस्ताते राहगीर की तरह खुद में सोया था । आगे हरा-भरा सीवान था । यह बगदैयाँ का टोपरा है । वहाँ छवरे की घासों पर, जलती शाम को आमने-सामने रख कर उस ने आनेवाले कल का परिचय गढ़ा था"[1] ।

ग्रामीण व्यक्तियों की सहजता

ग्रामांकन से संपुष्ट होनेवाले आँचलिक दृश्यविधान के अलावा व्यक्ति या वस्तुओं का चित्रण कर के भी आँचलिकता का वातावरण बनाया जा सकता है । आँचलिकता की इस रीति का प्रयोग शिवप्रसाद सिंह ने अपनी "नयी पुरानी तस्वीरें", "हीरो की खोज", "दादी माँ", "मंजिल और मौत", "उपाधायिन मैया", "अंधेरा हँसता है", "मुरदा सराय", "तकावी" आदि कहानियों में किया है ।

"नई पुरानी तस्वीरें" नामक कहानी में जिस बुआ का चित्रण शिवप्रसाद सिंह ने किया है वह ग्रामीण व्यक्तियों की कुछ विशिष्टताओं से युक्त है । अपने ऊपर पड़नेवा विपत्तियों या कठिनाइयों के बारे में सोचे बिना हमेशा दूसरों की सहायता करने वाला बोधन तिवारी का चित्र "हीरो की खोज" कहानी में प्राप्त है । वह ठाकुर के विरोध की ओर बिलकुल ध्यान न देकर, अकेले ही रामदीन की सहायता करता है । उस की खेती सींचने को तैयार होता है । इसकी चमार जाति की विधवा है । एक

---

1. भेड़िये; पृष्ठ 59:

रात में बड़े पंडित का लड़का को अपमानित करने लगता है । उसे बचाने केलिए भी बोधन तिवारी पहुँच जाता है । छब्बी को अपमानित करने का अपराध उस के सिर पर पड़ जाता है । उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है । पैरों पड़ कर माफ़ी माँगनेवाली छब्बी से बोधन का कथन है - "उठ उठ छब्बी, जा घर, किसी चीज़ की कमी पड़े तो कहना । आज से तू मेरी हुई"[1] । बोधन तिवारी के माध्यम से पूरा गाँव, गाँव की गतिविधियाँ आदि अनावृत होती हैं । साथ ही बोधन जैसे ग्रामीण, निडर व्यक्तित्व वाले आदमी का परिचय भी मिलता है ।

सेवारत एक ग्रामीण दादी का चित्र "दादी माँ" नामक कहानी में है । अपने गाँव में कोई भी बीमार पड़े तो, बुलाए बिना ही वह "दिन-रात चारपाई के पास बैठी रहती, कभी पंखा झलती, कभी जलते हुए हाथ-पैर कपड़े से सहलाती, सर पर दालचीनी का लेप करती, और बीसों बार सर छू-छू कर ज्वर का अनुमान करती"[2] साथ ही कई प्रकार की दवायें भी देती । शादी-व्याह के अवसर पर भी दादी माँ बिना बुलाये ही सेवा करने आती है । रामी की चाची कर्ज के रुपये ठीक समय पर न लौटाने पर दादी माँ उसे बुरी तरह डाँटती है । लेकिन बाद में क्या हुआ, उस के बारे में रामी की चाची कहती है - "कल ही आयी थी दादी माँ पीछे के सभी रुपया छोड़ दिया । ऊपर से दस रुपये का नोट दे कर बोली "देखना धन्नो, जैसी तेरी बेटी वैसी मेरी, दस-पाँच केलिए हँसाई न हो । देवता हैं बेटा देवता"[3] । दादी माँ की व्यक्तिगत विशिष्टता को प्रस्तुत करना ही तो उक्त कहानी का उद्देश्य नहीं है । उस के चरित्र की विशेषताओं का महत्व याने उस की सेवा शुश्रूषा का महत्व तो है । लेकिन दादी माँ एक ग्रामीण व्यक्तित्व के रूप में एवं ग्रामीण प्रतीति के रूप में पूरी कहानी में व्याप्त है ।

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 28.
2. वही पृष्ठ 41.
3. वही , पृष्ठ 43.

अर्जुन पाँड़े गाँव के रेलवे स्टेशन का कुली है । "अँधेरा हँसता है" नामक कहानी में इसी गँवार आदमी का चित्रण हुआ है - "अर्जुन पाँड़े उस तरह के इन्सानों में से हैं जिन्हें या तो बार-बार की पढ़ी हुई हनुमान चालीसा की किताब मानते हैं - जिस की चौपाइयाँ एक दम साफ है और जो संकट में भले ही एकाध बार बाँच ली जायें फुरसत के वक्त तो हमेशा ही नीरस लगती है, या फिर उस तिलस्मी कुंजी की तरह जिस के अंक और बेढंगे अक्षरों का रहस्य समझ पाना सब के बल-बूते का काम नहीं, इसे तो कोई सयान ही जान सकता है । हम उन्हें तब जानने लगे जब जानने-योग्य हो गये क्योंकि गाँव में अर्जुन पाँडे सब से बातें करते-नवयुवकों से, प्रौढों से, नौकरों से, चरवाहों से, खेतों में काम करनेवाली धानकटनी या रोपनेवालियों से, भाभियों से, कभी-कभार कम उम्र की चाचियों से भी, पर उन्हें बच्चों और बूढ़ों से बात करना कतई पसंद न था"[1] । व्यक्ति केन्द्रित आँचलिक कहानियों में ऐसे, नेक और सीधे, सच्चे इनसानों का, गाँव के विस्तृत परिदृश्य में चित्रण किया जाता है ।

ग्रामीण विश्वासों का चित्रण ग्रामाँकन का और एक तरीका है । शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कुछ कहानियों में आँचलिकता केलिए इस तरीके को अपनाया है ।

"दादी माँ" शीर्षक कहानी में संदर्भ के अनुसार ग्रामीण विश्वास की कुछ रीतियों के संकेत भी प्राप्त होते हैं । विवाह के अवसर पर मंगल गीत गाना तथा सीता-राम के विवाह का अभिनय आदि ग्रामीण रीति-रिवाज़ है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है - विवाह के चार-पाँच रोज़ पहले से ही औरतें रात-रात भर गीत गाती हैं । विवाह की रात को अभिनय भी होता है । यह प्राय: एक ही कथा का हुआ करता है, उस में विवाह से लेकर पुत्रोत्पत्ती तक के सभी दृश्य दिखाये जाते हैं, सभी पार्ट

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 85-86.

औरतें ही करती हैं"[1] । कहानी का यह प्रकरण दादी माँ के व्यक्तित्व को आँचलिक स्थिति के सन्दर्भ में उभारने के साथ साथ विश्वासों के व्यापक वातावरण को बनाने से संबंधित भी है ।

हमारे समाज में विधवाओं का जीवन प्राय: कठिनाइयों से भरा हुआ होता है । विधवाओं को कोई बच्चा हो जाए तो स्थिति और भी बिगड़ जाती है । यह गाँव में ही नहीं, सब कहीं होती है । गाँवों में ऐसी कुछ कठिनाइयाँ भी होती हैं जो कभी कभी प्राकृत जनोचित ही कही जाएँगी । अपनी जाति से निष्कासित हो कर ऐसी महिलाएँ गाँव से दूर रहा करती हैं । ऐसी एक विधवा की कहानी है "मंजिल और मौत" । "गाँव के पश्चिमी छोर पर नदी की ओर मुँह किये एक झोंपडी थी । उस में यह लडका (विधवा का) और उस की माँ दोनों रहते थे । माँ विधवा थी और विधवापन में ही उसे यह एक लडका मिला, सो जात ने उसे अपने से अलग कर दिया उन को छूने में पाप था, देखने में धर्म नष्ट होता था"[2] । ऐसी घटनाओं केलिए ग्रामीण वातावरण में अतिरिक्त महत्व मिल जाता है । कोई भी ऐसी घटनाओं के प्रति निस्संगता बरतता नहीं है । इसलिए जितनी पुरानी कारवाइयाँ चालू हैं सब का ठीक तरह से पालन किया जाता है । ऐसी कहानियों में इन प्रकरणों को मूल्यों के रूप में स्वीकारा नहीं गया है । ग्रामीणों के विश्वासों का प्रतिपादन से आँचलिक वातावरण सृजित किया जा सकता है, उस में निहित सामाजिक विडंबना को उभारा जा सकता है । वस्तुत: शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में सामाजिक विडंबना केलिए ही महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन उन्होंने ग्रामीण अस्मिता को पूरी तरह से बदलने का कार्य नहीं किया है ।

---

1. आर पार की माला, पृष्ठ 43.
2. वही पृष्ठ 64.

तीज-त्योहारों का वर्णन

ग्रामीण परिवेश की कहानियों में उत्सवों या पर्वों का उल्लेख अवश्य मिलता है । उत्सव या त्योहार हर कहीं धूम-धाम से मनाया जाता है । ग्रामीण परिवेश में उन का अलग महत्व है । "कहात वृत्ति" नामक कहानी में रामनवमी के उत्सव के अवसर पर बिहारी लाल के नाच का वर्णन यों किया गया हैं - "नाच शुरू हुआ । बिहारी लाल बढ़िया चटक बनारसी साड़ी पहने, चुबके गालों को रंग से संवारे हुए, पाउड़र की मोटी पर्त से झुरियों को छुपाये, धुंघरू झनकारते जब स्टेज पर आये, तो तालियों की गड़गड़ाहट ने उन का स्वागत किया । हारमोनियम मास्टर ने ज़ोर से धौंकनी चलायी । बिहारी ने लंबा आलाप लिया ।

वह अपने सधे हुए गले की करामत दिखाना चाहता था । नाचना-गाना उस की जिन्दगी थी, और आज जब अपने गाँव में ही बिहारी को अपना करतब दिखाने का मौका मिला था, तो वह जैसे हृदय निकालकर दिखा देना चाहता था कि वह भी कुछ है किन्तु उस के गले में तो जैसे किसी ने पिघला राँगा डाल दिया हो । ज़ोर से खाँसा । फिर आलाप लिया, तो गले फटे बाँस की तरह तड़क उठा । दो-एक बार और कोशिश की ।

तभी पीछे से कोई ज़ोर से गुर्राया - "बिहारिया" ।

आवाज़ मझले भैया की थी । बिहारी को तो जैसे करेंट छू गया ।

मझले भैया थोडा मूड में थे, चिल्लाकर बोले - "अबे, क्या भाँभ-भाँभ चिल्लाता है, जा कुलंजन खा ले ।"[1] इस प्रकार मेले में अपनी कला दिखाने में पराजित बिहारी लाल का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

---

1. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 123.

"मास्टर सुखलाल" कहानी में गाँव में प्रह्लाद नाटक प्रस्तुति का विवरण इस प्रकार है - "नाटक के दिन दूर-दूर से लोगों का समूह उमड़ पड़ा। किसी तरह लोगों के बैठने आदि का प्रबन्ध किया गया। नाटक शुरू हुआ। मास्टर सुखलाल हिरण्यकशिपु का पार्ट कर रहे थे। बड़े ढंग से पर्दा उठा। लोगों की तालियों की गड़गड़ाहट से पण्डाल गूँज उठा।

"जगदीश, जगदीश", मास्टर सुखलाल ने बड़े तपाक में हाथ नचाते हुए प्रह्लाद बने पात्र की ओर मुँह फिरा कर कहा, "कहाँ हैं तुम्हारे जगदीश"।

प्रह्लाद पात्र ने राधेश्याम की तर्ज पर कविता पढ़ करे उत्तर दिया, तभी मास्टर सुखलाल कुछ घबडाये, उन का याद किया "डायलाग" भूल गया, लोगों ने कुछ देर तक इसे अभिनय समझ बर्दाश्त किया, तभी सिटकारी और तालियाँ गूँजी।

"मास्टर सुखलाल आगे बढ़े और बोले, "मैं हिरण्यकशिपु हूँ, मेरी आज्ञा के बिना कुछ नहीं हो सकता, ओ पर्देवाले पर्दा गिरा दो"।

पर्देवाले को बताया गया था कि परदा हर बार खतम होने पर गिरेगा, शुरू शुरू में पर्दा नहीं गिर सकता। उधर मास्टर सुखलाल पर्देवाले को डाँड़ डाँड़ कर, पैर पीट-पीट कर परदा गिराने का "डायलाग" कह रहे थे, जनता तालियाँ पीट-पीट कर हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही थी और उधर पर्देवाला मुस्कुराता हुआ मास्टर सुखलाल के डायलोग की अदायगी देख रहा था। बगल से एक आदमी ने दौड़ कर पर्देवाले के हाथ से रस्सी छीन कर ड्राप-सीन किया"[1]। आँचलिक कहानियों में ऐसे सामान्य प्रयोग भी इतने विस्तार के साथ प्रस्तुत होते हैं ताकि आँचलिक जीवन का भर-पूरा एहसास प्राप्त हो जाएँ।

---

1. आर-पार की माला; पृष्ठ 72-73.

अंधविश्वास

तार्किक दृष्टि से देखा जाएगा तो पता लगेगा कि अशिक्षा और अज्ञान के कारण ही अंधविश्वास फैलता है । गाँव में उस की संभावना अधिक है । पर बहुत सारे अंधविश्वास पढाई-लिखाई के बावजूद भी बने रहते हैं। जैसे कि ऊपर बताया जा चुका है कि ग्रामीण वातावरण में छोटी-मोटी बातों में भी सब कोई भागीदार होते हैं । उदाहरण केलिए "बरगद का पेड" नामक कहानी को लिया जाएँ । वह एक सामान्य प्रेमकहानी है । लेकिन प्रेम की असफलता केलिए एक खास कारण भी ढूँढा गया है । एक प्राचीन कथा गाँववालों के बीच प्रचलित है । ये लोग यह नहीं सोचते कि चंपारानी के शाप न होने पर भी दुनिया भर में कितने प्रेम हर दिन असफल हो जाते हैं ।

"महुए का फूल" नामक कहानी में भी गाँववालों के बीच प्रचलित एक अंधविश्वास को प्रस्तुत किया गया है । सत्तो और चंपा सहेलियाँ हैं । वे कभी अलग होना नहीं चाहती थीं । उन के प्रेम को देख कर सत्तो की माँ चंपा से कहती है - "क्यों रे, तुम दोनों मुर्दघट्टी वाले पीपल पर जल क्यों नहीं चढ़ाती ?" दोनों चुपचाप सुनती रही । "मनौती मानो बिटिया, भगवान करे तुम दोनों में एक लड़का हो जाय" । हँसी फूटी, और वे कहती, "फिर तो काम बन जाय, दोनों की शादी कर दूँ । फिर कभी साथ न छूटे"[1] । मुर्दघट्टी के पीपल पर जल चढ़ाने से अभिलाषाओं की पूर्ति हो जायेगी - ऐसा विश्वास गाँव में प्रचलित है । बात छोटी सी क्यों न हो, एक प्रचलित अंधविश्वास जीवन का अविछिन्न अंग-सा हो जाता है ।

"देऊ दादा" कहानी में बन्दर को मारने पर मिलनेवाले पाप का जिक्र है । उस का बुरा फल भोगना पड़ता है । देऊदादा ने गाँववालों को तंग करनेवाले एक बूढ़े बंदर को मार दिया । उसे देख कर दुलारी की माँ कहती है - "पाप का फल सर पर पड़ेगा"[1] । साँप काटे जयकरण को बचाने केलिए दादा अपने जूते-कंबल आदि छोड़ कर,

---

1. आर-पार की माला, पृष्ठ 50.

ठंड़ को परवाह किये बिना, धन्नू भगत की ओर दौड़ा । ठं [illegible] गोल [illegible] गने के कारण बेचारा चकरा कर गिर पड़ा और मर गया । तब लोगों का अंधविश्वास दृढ़ हो गया कि बंदर को मारने के कारण ही देऊदादा की मृत्यु हो गयी । संयोगवश घटित घटना के साथ विश्वास घुल-मिल जाता है और विश्वास दृढ़तर हो जाता है ।

शिवप्रसाद सिंह ने अनेकों कहानियों में ग्रामांकन के लिए लोकगीतों का प्रयोग किया है । "कर्मनाशा की हार" नामक कहानी का लोकगीत का प्रयोग हुआ है जो उस गाँव के लोगों की आस्था से बहुत अधिक संबंध रखनेवाला है । नयोहीड़ि गाँववालों का विश्वास है कि नदी के बाढ़ हो जोने पर मनुष्य को बलि दिये बिना वह लौटती नहीं । इसलिए बाढ़ हो जाने पर "मुखिया जी के द्वार पर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-वावनी की ताल पर ढ़ोलकें ठनकने लगती" । गाँव के दुध मुँह तक "ईबाढ़ी नदिया जिया के के माने" का गीत गाते"[1] । "अरुन्धती" नामक कहानी में अंधा गायक लोक गीत गाता दिखाई पड़ता है -

"सब की नगरिया चुरला बँसिया बजवले, बाबुरे
मोरी नगरी काहे न सुनवले मधुबैन, मोरी नगरी....
सब की नगरिया रनिया, बँसिया जिवली, बाबुरे
तोरी नगरी, पहरा परेला दिन रैन, तोरी नगरी"[2] ।

इतने पर भी लोकगीतों के उस प्राचीन वातावरण को उतार कर कहानी को एकदम आंचलिक बनाने का कार्य शिवप्रसाद सिंह ने किया नहीं है । यत्र-तत्र प्रयुक्त

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 9.

2. मुरदा सराय, पृष्ठ 26.

लोकगीत पात्रानुकूल स्थिति को द्योतित करते हैं । लोकगीतों के प्रयोग से लोकमानसिकता और संस्कृति को रूपायित करने की चेष्टा कहानीकार की तरफ़ से बहुत कम ही हुई है ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में दो बातें महत्व की हैं । एक, उन का सुदृढ़ सामाजिक दृष्टिकोण है जो गाँवों की यथास्थिति से संतुष्ट नहीं है । दूसरा उन का ग्रामीण दृष्टिकोण है या आँचलिक मोह है । इस संदर्भ में गाँवों की यथास्थिति से बढ़कर गाँवों की निजी स्थिति प्रमुख बन जाती है । उन्होंने इन दो अवस्थाओं का सम्यक समन्वय किया है । "शिवप्रसाद सिंह एक ऐसे प्रबुद्ध और संवेदनशील कथाकार हैं जो जीवन के मार्मिक यथार्थ को कलात्मकता से स्पर्श कर उसे मंगलमय बना देने की ओर उन्मुख है"[1] । कहानी के बारे में लिखते हुए उन्होंने "जातीय साहित्य" की बात उठाई थी । जातीय साहित्य को ले कर उन की मान्यता यही है कि उस में हमारी अपनी समस्यायें और हमारे रंग-ढंग का वातावरण हो । "शिवप्रसाद सिंह की सामाजिक चेतना उपेक्षित जीवन के चित्रण की प्रेरणा देती है, जिस के फलस्वरूप उन्होंने आँचलिक एवं ग्रामकथा के द्वारा जातीय जीवन के प्रश्न को उठाया है[2] । इस अर्थ में शिवप्रसाद सिंह की कहानी को जातीय साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

---

1. प्रेमचन्दोत्तर युग के कुछ विशिष्ट कहानीकार - विश्वंभर मानव लेख हिन्दुस्तानी जनवरी-मार्च 1975, पृष्ठ 12-13.
2. आलोचना और साहित्य - इन्द्रनाथ मदान, प्रथम संस्करण 1964, पृष्ठ 157.

अध्याय छः

मार्कण्डेय का कृतिव्यक्तित्व

अध्याय छ:

मार्कण्डेय का कृतित्व्यक्तित्व

यथार्थवादी धारा के हस्ताक्षर

नई कहानी की एक सशक्त धारा यथार्थवादी दृष्टि से युक्त है । इस धारा का मूल स्वर प्रगतिगामी भी है । कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द और यशपाल जैसे कहानीकारों की विकसित परंपरा पुन: हिन्दी कहानी में पुनर्नवीकृत होकर आई । अमरकान्त, भीष्मसाहिनी, मार्कण्डेय आदि कहानीकार इसी परंपरा के हैं । मार्कण्डेय ने इस प्रवृत्ति को देहाती जीवन के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया । अत: नई कहानी में जब आँचलिकता की चर्चा होने लगी तो मार्कण्डेय भी उस सन्दर्भ में चर्चित होने लगे ।

मार्कण्डेय आधुनिक ग्रामीण यथार्थ के कथाकार हैं । उन्होंने लिखा है कि - "बेहद सहज शैली में कही गयी इन कहानियों में मैंने गाँव के जीवन का नया धरातल छूने का प्रयत्न किया है"[1] । ग्रामीण जीवन को निकट से देखने और समझने का अवसर उन्हें मिला था और ग्रामीण यथार्थ ने उन्हें आकृष्ट किया था । उस में उन्होंने जीवन की व्यापकता एवं गहराई देखी । इसलिए पूरी सहजता के साथ वे ग्राम जीवन के चित्रों में रंग चढ़ाते हैं । इसलिए उन के "ग्रामचित्र किसी भी प्रकार आरोपित प्रतीत नहीं होता, वरन्, उन की आत्मा बन कर उभरता है"[2] । उन की कहानियों की चौहद्दी है गाँव, पात्र है ग्रामीण और कथ्य आधुनिक गाँव का

---

1. कहानी नयी पुरानी, 'हंसा जाइ अकेला' की भूमिका, तृतीय संस्करण 1960, पृष्ठ 6.
2. डा.अश्वघोष, हिन्दी कहानी सामाजिक संदर्भ, पृष्ठ 92.

खाका । इन कहानियों में आधुनिक गाँव के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन के विविध संदर्भ जीवन्त रूप में अंकित हुए हैं । इन के साथ ही साथ ग्रामीण जीवन में व्याप्त नैतिक ह्रास और हीनता का भी, मार्कण्डेय ने खुला-सा चित्र भी अंकित किया है ।

प्रेमचंदीय संवेदना का विकास

प्रेमचंद ने जनजीवन की व्यापकता को अपना कथा फलक बना लिया था । इसलिए उन की कहानियों में गाँव के विभिन्न तबके के लोग पात्रों की भूमिका में उतर आये । यही नहीं उन के जीवन के विभिन्न संदर्भों को भी पूरी मानवीयता के साथ उन्होंने चित्रित किया था । वस्तुत: स्वातंत्र्योत्तर युग ने पुन: प्रेमचंद की इस प्रवृत्ति का पुनराविष्कार हुआ । लेकिन उस का ढंग कुछ बदला हुआ था । मार्कण्डेय की कहानियाँ इसी परिवर्तित दृष्टि की अभिव्यक्ति है और इस अर्थ में कुछ आलोचकों ने यहाँ तक लिखा है कि "नये कहानीकार प्रेमचंद के पदचिन्हों पर चलने और गाँव की ओर लौटने को उत्सुक है"[1] । नेमीचन्द्र जैन ने मार्कण्डेय की कहानियों पर विचार करते हुए इस प्रसंग का उल्लेख यों किया है - "देहाती जीवन के प्रति लेखकों की दृष्टि जाने का एक कारण यह भी था कि प्रेमचन्द के बाद से वह पक्ष उपेक्षित हो पड़ा था और उस की ओर उन्मुख होना एक प्रकार से लेखक केलिए नये भाव जगत की उपलब्धि थी । बहुत सी सिद्धान्त वादी और राजनीतिक-आर्थिक प्रेरणाओं ने भी इस दिशा में प्रभाव डाला । फलत: देहाती जीवन के बाह्य तथा आन्तरिक चित्रों को और अभिव्यक्ति में ग्रामीण जीवन से ली हुई नई परिकल्पनाओं, प्रतीक योजनाओं और भाषागत प्रयोगों की प्रचुरता हिन्दी कथा साहित्य में दिखाई पड़ने लगी"[2] । प्रेमचंदीय दृष्टि के

1. साहित्यधारा - प्रकाश चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 118.
2. बदलते परिप्रेक्ष्य - नेमीचंद्र जैन, 1960, पृष्ठ 148.

पुनराविष्कार को इसी क्रम में देखा जाना चाहिए । व्यापक दृष्टि से मार्कण्डेय की रचनाएँ, प्रेमचन्द की रचनाओं के निकट हैं । लेकिन प्रेमचंद से अलग भी हैं । इस के कई कारण ढूँढ़े जा सकते हैं । प्रेमचंद की अवधारणा में आदर्शवादी पुट सशक्त है । उन का दृष्टिकोण प्रगतिगामी होते हुए भी मर्यादित है । उद्देश्य का पलड़ा बराबर भारी रहता है । आधुनिक युग में उद्देश्यगामिता के स्थान पर सहजता या आत्मीयता ने स्थान ग्रहण किया है । नामवर सिंह ने आत्मीयता के पक्ष को ज्यादा महत्व दे कर मार्कण्डेय की रचनाओं को विशिष्ट बतलाया है - गाँव की ज़िन्दगी पर कहानियाँ पहले भी लिखी जाती थी, लेकिन जिस आत्मीयता का दर्शन मार्कण्डेय की कहानियों में होते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है"[1] ।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्कण्डेय की विचारधारा का मूलाधार मार्क्सवाद है । लेकिन वह यशपाल की तरह सिद्धान्त के स्तर स्वीकृत और रूपीकृत नहीं है । अत: वह अत्यन्त सूक्ष्म है । उन की दृष्टि प्रचारात्मकता से परिपुष्ट नहीं है । भारतीय जीवन पद्धतियों से उस का सामंजस्य स्थापित कर के प्रगतिशील दृष्टिकोण की स्थापना के वे इच्छुक दीखते हैं । इसलिए ही उन के कई पात्र शोषण, अन्याय और असमानता के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए नज़र आते हैं । इसी कारण से ही डा.लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय ने मार्कण्डेय की कहानियों के बारे में यों लिखा है - "वर्ग-वैषम्य, शोषण, असमानता, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों पर उन्होंने अपनी कहानियों में कठोर प्रहार किये हैं और उन की अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए नवीन परिवर्तनों की ओर ध्यान आकृष्ट करने की चेष्ठा की है । इन कहानियों में मानवीय संवेदनशीलता है, यथार्थ चित्रण है और सामाजिक दायित्व का निर्वाह है; जिस में वे पूर्णतया सफल रहे हैं"[2] । वादों या मतों से मुक्त

---

1. कहानी नयी कहानी, पृष्ठ 23.
2. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय, पृष्ठ 143-44.

रखने का प्रयास मार्कण्डेय ने स्वयं किया है । एक आधुनिक रचनाकार का दायित्व रचनाधर्म और सामाजिक भूमिका के प्रति समान है । इन दोनों के बीच रचनात्मक तथा नैतिक सामंजस्य बनाए रखने की चेष्टा भी मार्कण्डेय की बराबर रही है । "अपने रचना कर्म को व्यक्तिगत स्वार्थों तथा वर्गीय हितों के ऊपर उठा कर स्वतंत्रता से जुड़े हुए मूल्यादर्शों की चरितार्थता की पड़ताल के जोखिम भरे काम में लगाने"[1] का कार्य ही वस्तुतः मार्कण्डेय ने किया है । इस कारण से मार्कण्डेय की कहानियों में अन्य मार्क्सवादी साहित्यकारों के जैसे प्रतिबद्धता का वह गुंफित भाव नहीं है । साथ ही साथ मार्कण्डेय कथाजगत के आन्दोलन परक उत्थान-पतन से असंपृक्त रह कर सही जनवादी और यथार्थ वादी कथालेखन की परंपरा को जीवित रखने के प्रति दत्तचित्त हैं ।

नया ग्रामीण मोह

यह बताया जा चुका है मार्कण्डेय ग्रामीण यथार्थ के रचनाकार हैं । ग्रामीण जीवन की ओर कहानीकारों के नये आग्रह का जब विकास हुआ तो आंचलिकता और ग्रामीणता का वातावरण सशक्त होने लगा । रेणु और शिवप्रसाद सिंह के साथ उन का नाम भी लिया जाता है । लेकिन मार्कण्डेय अपनी कहानियों को नयी ग्रामीण कहानी तथा अपने को नया ग्रामीण कहानीकार कहना पसंद करते हैं । हिन्दी साहित्य के अधिकांश समीक्षक मार्कण्डेय की कहानियों को आंचलिक कहानी तथा उन को आंचलिक

---

1. समकालीन हिन्दी कहानी - प्रकृति और परिदृश्य - यदुनाथ सिंह, पृष्ठ 115.

कहानीकार मानते हैं[1] । मार्कण्डेय ने रिककिमित नये ग्रामीण यथार्थ आखिरकार

1\. अ. "नये आँचलिक कहानीकारों में श्री.मार्कण्डेय का नाम भी लिया जाता है" । समालोचक - हीराप्रसाद त्रिपाठी, फरवरी 1958, पृष्ठ 172.

आ. लोकजीवन के अन्तर्वैयक्तिक सामाजिक संबंधों की समझ जैसे-जैसे बढ़ती जायेगी, ये कहानीकार (रेणु, मार्कण्डेय, के.शनिमिश्र, शिवप्रसाद सिंह) भी प्रौढ आँचलिक कहानियाँ दे सकेंगे", कहानी नयी कहानी - 51. नामवर सिंह, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 23.

इ. आँचलिक कहानीकारों में शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, राजेन्द्र अवस्थी, लक्ष्मीनारायण लाल, शेखरजोशी, मार्कण्डेय आदि ने पर्याप्त मात्रा में तथा ग्रामीण जनजीवन की सहज समस्याओं को उठा कर अत्यंत प्रभावशाली कहानियाँ लिखीं" । हिन्दी कहानी पन्द्रह पदचिन्ह-भूमिका, प्रो.महेन्द्रप्रताप, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 42.

ई. "श्री.फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय आदि आँचलिक विषय के आधार पर कहानियाँ लिखीं" । हिन्दी गद्य का विकास, आ.उमेश-शास्त्री, प्रथम संस्करण 72, पृष्ठ 123.

उ. "यूँ तो आँचलिक कहानीकारों के दर्जनों नाम गिनाए जा सकते हैं, किन्तु व्यावहारिक धरातल पर आँचलिक कहानी के दृष्टिआयाम को रेखांकित करने केलिए फिलहाल केवल तीन नाम अपेक्षित हैं - रेणु, शिवप्रसाद सिंह एवं मार्कण्डेय" ।
तटस्थ - डा.लक्ष्मण दत्त गौतम, मई-अक्तूबर 1972, पृष्ठ 24.

ऊ. "इस दशक के आँचलिक कथाकारों में मार्कण्डेय का नाम प्रमुख हैं" । हिन्दी कहानी-सामाजिक संदर्भ, डा.सुरेश सिन्हा, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 91.

आँचलिक प्रवृत्ति से ओतप्रोत है । आँचलिकता शब्द का प्रचार ग्रामीणता से अधिक रहा । अत: समीक्षाओं में आँचलिक कहानियों के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं और आँचलिक कहानीकार के रूप में वे आलोचित होते हैं ।

परिस्थितियों का गहरा असर रचनाकार पर पड़ता है । उस के जीवन दर्शन को स्थापित करने की दिशा में इन का योग रहता है । साथ-साथ रचनाकार की अभिव्यक्ति एवं सृजनात्मक दिशाओं को परिवर्तित करने में इन परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है । यह मात्र सीधा प्रभाव और सीधे ग्रहण की बात नहीं है । परिस्थितियों का आभ्यन्तरीकरण लेखकीय व्यक्तित्व को सहेजता और संवारता है । जहाँ तक मार्कण्डेय का संबंध है उन का रचनात्मक रिश्ता ग्रामीण जीवन से था । जिस समय मार्कण्डेय ने ग्रामीण जीवन पर लिखना शुरू किया, उस समय ग्रामीण जीवन-परिस्थितियाँ भी बदल रही थीं । एक ओर प्राचीन परंपराओं में जकड़ा हुआ ग्रामीण विश्वास और आस्था और उस का टूटता बिंब, दूसरी तरफ नये जमाने की दिशाएँ । सतह पर होनेवाले परिवर्तन और आस्थाओं का शोषण । ग्रामीण यथार्थ, ग्रामीण आस्थायें - इन दोनों के बीच गरीबी में टूटते निरालंब किसान एवं निम्नवर्ग के नादान लोग । मार्कण्डेय के रचनासंसार में ये ही लोग मूर्तवत् हुए हैं ।

<u>संक्षिप्त जीवन परिचय</u>

मार्कण्डेय का जन्म सन् उन्नीस सौ तीस मई को जौनपुर जिले के एक गाँव के किसान परिवार में हुआ था । उन की प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई थी । उस समय भारत का स्वतंत्रता-आँदोलन ज़ोरों से चल रहा था । मार्कण्डेय का परिवार उस आँदोलन से जुड़ा हुआ था । उस पिछड़े हुए इलाके में कांग्रेस के कार्य-कर्ताओं को सभा-सम्मेलन या प्रचार की मदद, मार्कण्डेय के बाबा दिया करते थे । बाबा प्राय:

मार्कण्डेय को भी साथ ले कर इन सभा सम्मेलनों में भाग लेने जाते थे । इस प्रकार मार्कण्डेय बचपन से ही राजनीतिक विचार-दर्शन में दीक्षित हो गया । खद्दर पहनने की रुचि भी इस प्रकार शुरू हो गई थी ।

प्राइमरी शिक्षा के बाद उसे प्रतापगढ़ में एक रिश्तेदार के घर में रह कर हाईस्कूल की पढ़ाई में लगा । उस समय से लेकर भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की घटनाओं से परिचय प्राप्त करता रहा । कांग्रेस के समाजवादी दल के नेता नरेंद्रदेव के निकट आने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ । प्रतापगढ़ के जीवन काल के अनुभव भविष्य में लिखने केलिए प्रेरणादायक सिद्ध हुए । उस के बारे में मार्कण्डेय लिखते हैं - प्राइमरी पास करने के बाद ही मुझे प्रतापगढ़ एक रिश्तेदार के यहाँ जाना पड़ा जहाँ मेरे पिता उन की तालुकेदारी के प्रबंधक थे । वहाँ मेरे जीवन की सारी मान्यताओं को भारीधक्का लगा और मुझे दो वर्गों के अन्तर्विरोध का साक्षात् दर्शन हुआ । गरीब लोगों पर बेइंतहा अत्याचार और अन्याय की लोम-हर्षक घटनायें मुझे रात-भर सोने नहीं देती थीं । मेरेलिए लिखने की बात यहीं से उठी"[1] । यह अवश्य है कि इस में किशोरोचित भावावेग है । लेकिन यह भी है कि मार्कण्डेय के किशोर मन ने सामाजिक अन्तरविरोध को देख लिया । उस समय यह सिर्फ देखने और समझने की बात थी । इस के विरुद्ध कुछ करने की बात भी उठी । लेखन की ओर आने की बात उस प्रतिक्रिया का परिणाम है ।

सामाजिक दृष्टि का विकास

इन्टर की परीक्षा के दौरान मार्कण्डेय का झुकाव मार्क्सवाद की ओर होने लगा । एक बार मार्क्सवादियों के शिविर में भी उस ने भाग लिया । शिविर के अध्ययन का प्रभाव उन के मन पर पड़ा । तब से लेकर मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर

---

1. अमृत-प्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, पृष्ठ 25.

उन की रुचि बढ़ने लगी । इसी बीच भारत स्वतंत्र हो गया । एक वर्ष के उपरान्त गांधीजी की हत्या हो गयी । यह भारतीय राजनीतिक परिदृश्य की दो प्रमुख घटनाएं हैं । स्वदेशी सरकार ने समाजवादी और साम्यवादी विचारों से अपना संबंध तोड़ लिया । साम्यवादी दल प्रतिबंधित कर लिया गया । तब तक देश में भयानक सांप्रदायिक दंगे हुए, साथ ही साथ अकाल भी । खाने-पीने की सामग्री के अभाव में गरीबों और मज़दूरों की कठिनाई अत्यधिक बढ़ गयी । उस दौर में इन दर्दनाक दृश्यों से उन का सीधा साक्षात्कार जो हुआ, जिस ने मार्कण्डेय के मन को हताश कर दिया । यह हमारी सामाजिक सच्चाई थी । उसे नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता था । मार्कण्डेय के रचनाकार के मन में उन सच्चाइयों का गहरा प्रभाव पड़ा । उन्होंने अपने क्षोभ को रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया । पर वह मात्र भावावेग नहीं था । वह एक ऐसी प्रतिक्रिया थी जो एक वास्तविक रचनाकार या तो एक सचेत व्यक्ति के रूप में व्यक्त करता है या एक प्रगतिशील लेखक के रूप में ।

अध्ययन का क्षेत्र

विश्वविद्यालय की शिक्षा के हेतु मार्कण्डेय इलाहबाद आ गये थे । स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों से अलग रह कर पढ़ाई में ही ध्यानावस्थित रहे । इसी बीच उन्होंने हिन्दी साहित्य का विशद अध्ययन किया । सुमित्रानंदन पंत से, व्यक्ति रूप से, पहले ही परिचित थे । इस लिए कविता के प्रति रुचि बढ़ी और प्रथमतः हिन्दी कविता का व्यापक अध्ययन में संलग्न हो गए । इन कवियों के प्रभाव को स्वीकार कर के मार्कण्डेय बताते हैं - "मेरे भावजगत में तुलसी दास, निराला और पंतजी की कविताएं बसी हुई थीं"[1] ।

---

1. अमृत प्रभात, वार्षिक विशेषांक, मेरी कथायात्रा - मार्कण्डेय, 1980, पृष्ठ 25.

उस समय पूरे साहित्य जगत में यशपाल की कहानियाँ की धूम मची हुई थी । यह एक कारण था कि यशपाल की ओर भी मुड़े । बाद में जैनेंद्र तथा अज्ञेय की रचनाओं का व्यापक अध्ययन किया । यशपाल की कहानियों के बारे में ऐसा लगा कि वे समकालीन भारतीय परिदृश्य पर की गयी टिप्पणियाँ मात्र हैं । यशपाल जिस परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं उसे कहानी में चित्रित करने के लिए जीवन का विवरण वे स्वयं गढ़ते हैं । उन का घनिष्ठ परिचय अपने समकालीन समाज से ऐसा नहीं है कि वे उन के सच्चे चित्र प्रस्तुत कर सकें । इसलिए मार्कण्डेय प्रेमचंद की ओर मुड़ गये । प्रेमचंद साहित्य का, शुरू से अध्ययन करने पर उन्हें ऐसा लगा कि प्रेमचंद तत्कालीन भारतीय समाज के सच्चे रचनाकार हैं । प्रेमचंद की कुछ कहानियों तथा "गोदान" उपन्यास से वे बहुत अधिक प्रभावित हो गये थे । इस से मार्कण्डेय को अपने निजी संदर्भों और जीवन दृष्टि के प्रति एक रचनात्मक आत्मविश्वास प्राप्त हुआ । इस संबंध में मार्कण्डेय ने खुद लिखा है - "मुझे अच्छी तरह याद है कि इन्हीं दिनों में मैं ने जैनेंद्र अज्ञेय, शरत, यशपाल और प्रेमचंद को ठीक इसी क्रम से पढ़ा । जैसे-जैसे प्रेमचंद को पढ़ता गया, वैसे-वैसे मुझे अपने कार्य शुरू करने का स्थान मिलता गया । इन सारी परंपरा के भीतर से ही मेरे मन में लिखने की आकांक्षा पैदा हुई ......"[1] । शायद इस प्रभाव के कारण ही शिवकुमार मिश्र ने मार्कण्डेय की कहानियों के बारे में ऐसा लिखा है - "वस्तुत: यह प्रेमचन्द की वह विरासत है जो बदलते हुए समय की अनुरूपता में, विचारों के नये ताप के साथ, अधिक संपन्न और समर्थ बन कर मार्कण्डेय की कहानियों में सार्थक हुई है"[2] । प्रेमचन्द के साथ अपनी रचनात्मकता को जोड़ कर

---

1. अमृत-प्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, मेरी कथायात्रा - मार्कण्डेय, पृष्ठ 25, 27.
2. हिन्दी साहित्य नई रचनाशीलता - लेख, मार्कण्डेय की कहानियाँ, पृष्ठ 118.

अपनी कहानियों में मार्कण्डेय ने जो आयाम प्रदान किया है वह हिन्दी कहानी को एक नई रचनात्मक दिशा सिद्ध हुई । मार्कण्डेय की रचनाधर्मिता का यह एक प्रबल और सशक्त पक्ष भी है । मार्कण्डेय ने अपने कृतिव्यक्तित्व को इस रचनाधर्मी दृष्टि के अनुरूप ही विकसित किया है ।

पहली कहानी

मार्कण्डेय की पहली कहानी सन् उन्नीस सौ तिरपन में लिखी गयी । उस का शीर्षक था "गुलरा के बाबा" । शरत जयन्ती के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में यह कहानी पढ़ी गयी, जिस से उनकी व्यापक प्रशंसा और स्नेह की झड़ी लग गयी । प्रस्तुत कहानी उसी वर्ष की 'कल्पना' में प्रकाशित भी हुई । प्रमुख रचना के रूप में वह प्रकाशित हो गयी थी । हिन्दी में उस की व्यापक चर्चा भी हुई । बहुत-से आलोचकों ने उस कहानी को सराहा तथा उस का स्वागत भी किया ।

कहानी लेखन का सिलसिला

झूठी मान्यताओं और आडंबरों से ऊब कर अनैतिक स्थितियों के विरुद्ध कुछ कहने की अकुलाहट मार्कण्डेय के लेखन कार्य का प्रेरक तत्व है । जीवन के सीधे-सादे प्रसंगों को उन्होंने इस केलिए उपयुक्त बनाया है । अपने आसपास की दुनिया, उस दुनिया के लोगों के दर्द और उनकी कसक आदि को इनसानियत के स्तर पर उन्होंने अनुभव किया है । अपने गाँव की एक बूढ़ी की दुर्दशा देख कर वह बहुत परेशान थे । उस का अकेला जवान बेटा स्वाधीनता संग्राम में भाग ले कर मर गया था । एक बार छुट्टियों के दिनों में घर आया तो उस बूढ़ी से फिर मुलाकात हुई । देश के स्वतंत्र होने पर भी उस शहीद की माँ की हालत सुधर नहीं गयी थी । सरकार की तरफ़

से भी उसे कोई सहायता नहीं मिल रही थी । आदर्शों के स्थान पर व्यावसायिकता ने स्थान ग्रहण किया था । यह प्रसंग मात्र एक बुढ़िया की असहाय अवस्था का था मार्कण्डेय ने उक्त प्रसंग में जीवन की व्यापकता देखी, आदर्शों का अभाव देखा । उन का मन असंतोष से भर गया । यह एक प्रभात या घटना थी या एक प्रसंग, मार्कण्डेय ने एक कहानी लिखी । उस के बारे में मार्कण्डेय का कथन है - "मृत्यु की उस थरथराहट और दुख को आज भी मैं भूल नहीं पाया । उसी तनाव में, मैं ने एक कहानी लिखी "शहीद की माँ" और उसे उसी समय "आज" नामक दैनिक अखबार के साप्ताहिक विशेषांक में प्रकाशनार्थ भेज दिया । मुझे आश्चर्य हुआ जब सप्ताह ही वह कहानी छप गयी और छपने के साथ ही मेरे लिखने का उत्साह ही जैसे मर गया"[1] ।

सही आदमी की तलाश

बाद में मार्कण्डेय को ऐसा लगने लगा कि वे जो लिखना चाहते हैं वह इस तरह की कहानियों के द्वारा पूरा न होगा । क्योंकि गाँव के वास्तविक प्रभावशाली चरित्रों की सृष्टि केलिए और अधिक गहराई में उतरना होगा । उन की समस्या और उन के व्यक्तित्व की आंतरिक माँग, तत्कालीन भारतीय सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य के मूल्यांकन की ओर प्रवृत्त होना है । व्यापक संदर्भों में किसानों के जीवन के दुख-दर्द को जोड़ने का वह रचनात्मक उपक्रम था । गाँव में फैले अज्ञानांधकार, कुंठा, अशिक्षा, रूढ़ियों से ग्रस्त गाँववासियों के संघर्ष को देखने को, समझने की कोशिश उन्होंने की । उनके मतानुसार भारतीय स्वतंत्रता का सच्चे हकदार भारत के गाँववाले हैं । बड़े लोगों को तो स्वतंत्रता आत्मश्लाघा और

---

1. अमृत प्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, पृष्ठ 25.

सामाजिक प्रतिष्ठा केलिए । है । लेकिन गरीबी और शोषण के जुए में पिसते भारतीय गरीब किसान सही अर्थ में सहानुभूति के हकदार हैं । इसलिए अपनी कहानियों में उन्होंने "सही आदमी की तलाश" शुरू की । इस प्रकरण में उन का कथन है - "सामान्य जन की वास्तविक ज़िन्दगी को रेखांकित करने से ले कर उस औसत आदमी की खोज, जिसे "सही आदमी की तलाश" कहा गया था कि अभिप्राय ही नयी पीढ़ी केलिए सामाजिक संदर्भों की वास्तविक परिभाषा प्रस्तुत करना था"[1] इसलिए मार्कण्डेय उन कथानकों की तलाश में जुड़े रहे जिन्हें वह लोगों के सामने गाँव के दुख-दर्द, शोषण-अन्याय के प्रतिरूप के रूप में अपनी कहानियों में प्रस्तुत कर सकें ।

इस बीच में मार्कण्डेय ने अपनी विश्व विद्यालय की शिक्षा (एम.ए.) पूरी की । "कबीर साहित्य में लोकतत्व" विषय में इलहबाद विश्वविद्यालय में ही शोध कार्य करने लगा । लेकिन सृजनात्मक साहित्यिक कार्य में लगने के कारण शोध कार्य पीछे टूट गया । बाद में प्राप्त आकाशवाणी की नौकरी भी, उन्होंने छोड़ दी । उन्हें लगा कि वह उन का कार्यक्षेत्र नहीं है । नौकरी पर उन का मन न लगता था । नौकरी से हमेशा केलिए छूटने के पश्चात मार्कण्डेय पूर्णतया लेखन कार्य में लगे रहे । लेखन के अलावा संपादन का कार्य भी उन्होंने किया है । "माया" नामक पत्रिका के दो विशेषांकों - "समकालीन कहानी विशेषांक" तथा "भारतः उन्नीस सौ चौंसठ विशेषांक" का संपादन किया था । "कल्पना" का एक स्थायी स्तंभ जो "साहित्यधारा" नाम से निकला और "चक्रधर" नाम से वर्षों तक उन्होंने जारी रखा कुछ समय "कथा" नामक त्रैमासिक के भी संपादक रहे । अब कलकत्ता से निकलती "कलम" नामक पत्रिका के संपादक हैं ।

---

1. अमृत-प्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, पृष्ठ 85.

प्रभाव ग्रहण

जैसे कि उपरोक्त सूचित है कि प्रेमचंद की रचनाओं का प्रभाव मार्कण्डेय ने सर्वात्मना स्वीकार किया है । प्रेमचंद की ग्रामजीवन को देखने की दृष्टि तथा उन के ग्रामजीवन के यथार्थ चित्रण से वे मुग्ध हो गये हैं । हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी होने के कारण हिन्दी के रचनाकारों जैसे तुलसी दास, कबीर और आधुनिक युग के पंत, निराला, अज्ञेय, यशपाल आदि की रचनाओं के प्रति उन का आकर्षण रहा । अलावा बंगला के साहित्यकार शरश्चन्द्र, विभूतिभूषण, माणिक बन्दोपाध्याय आदि की रचनाओं का भी अध्ययन किया तथा उन से भी मार्कण्डेय प्रभावित दीखते हैं । इन रचनाकारों के प्रभाव को उन्होंने खुले आम स्वीकार किया । ऐंगल्स को "परिवार, संपत्ति और राज्य" नामक पुस्तक ने उन्हें एक नई दृष्टि दी - मेरे एक मित्र ने ऐंजिल्स की "परिवार, संपत्ति और राज्य" नामक पुस्तक मेरे जन्मदिन पर मुझे भेंट में दी । उसे पढ़ कर जैसे मैं किसी काल-कोठरी से बाहर निकल आया"[1] । चेखव को मार्कण्डेय आदर्श कथाकार मानते हैं - "कथा का आन्तरिक रूपाकार मेरा अध्ययन का प्रिय विषय है और इस दृष्टि से मैं "चेखव" को आदर्श कथाकार मानता हूँ"[2] । चेखव ने जिस सादगी से जीवन को देखा तथा अनुभव किया और जिस प्रकार अपनी कहानियों में अनुभूत सत्य को उतारा, वह ढंग अनेकों कहानीकारों केलिए पाथेय बना है । मार्कण्डेय ने जीवन की सादगी को पसंद किया है । उस के सीधेपन पर वे ज्यादा टिकते दीखते हैं ।

---

1. अमृतप्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, पृष्ठ 25.
2. वही पृष्ठ 84.

प्रामाणिक अनुभव की अभिव्यक्ति

मार्कण्डेय ने कथा साहित्य को, खास कर ग्रामीण वातावरण की कथा को, क्यों चुना ? उन का विचार है कि अपनी बातों को साधारण लोगों तक पहुँचानेवाला सब से अच्छा माध्यम कथा-साहित्य है । प्रेमचंद के अध्ययन से प्राप्त दृष्टि ने कथासाहित्य की ओर अग्रसर होनेवाले मार्कण्डेय को आकर्षित किया । सूक्ष्म अनुभूति के स्थान पर उन्होंने अनुभव के विस्तृत प्रसंग से प्राप्त मानवीय अनुभव को महत्व दिया मानवीय अनुभव के बदलते हुए स्वर को, संस्कार को, आशा-आकांक्षा को उस ने शब्दबद्ध करने का कार्य किया । "मार्कण्डेय के पास अपने समकालीनों से कहीं ज्यादा और प्रामाणिक अनुभव है ...."[1] । अपने अनुभवों और अध्ययन के आधार पर ही मार्कण्डेय ने किसानों की भूमि-समस्या पर तथा गरीब मज़दूरों की समस्याओं पर कहानियाँ लिखी थीं । "किसानों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के अध्ययन के कारण मैं उन की कहानियाँ लिखता था । विशेषत: गरीब और संघर्षशील किसान-मज़दूर मेरी कहानियों में इस कारण मिलते हैं कि उन से मेरा वैचारिक लगाव है । इन्हीं की मुक्ति से देश का वास्तविक विकास संभव है"[2] । उपरिवत् सूचित पक्ष-धरता के सवाल को मार्कण्डेय ने अधिक गहराई में जानना चाहा है । उन्होंने सिर्फ कहानियाँ ही लिखी नहीं, बल्कि उन के जीवन का भी अध्ययन किया । जिस वैचारिक लगाव की बात वे कहते हैं वह विशेष उल्लेखनीय है । एक रचनाकार के संदर्भ में यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है । यह लगाव उन की दृष्टि की अहमियत है और यह उन की कहानियों में भी परिलक्षित होती है ।

---

1. समकालीन कहानी - रचना और दृष्टि, श्याम किशोर सेठ, प्रथम संस्करण 1978, पृ 12.
2. अमृत-प्रभाव, वार्षिक विशेषांक 1980, पृष्ठ 25.

ग्रामीण कथाकार

गाँवों के प्रति मार्कण्डेय में इतना अनुराग क्यों है ? मार्कण्डेय का तमाम संस्कार ग्रामीण वातावरण से उद्भूत है । शहरी आबोहवा में रहने और जीवन यापन करने के बावजूद अब भी वे गाँव के रहन-सहन, रीति-रिवाजों से बंधे हुए हैं । नगरों में ही उन की शिक्षा भले ही हुई हो, वहाँ से भले ही सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति के नये अनूठे सिद्धान्तों से परिचयलाभ किया हो और मानव मन के उलझनों में रस पाया हो, किन्तु उन के संस्कारों का और सहानुभूतियों का स्रोत कहीं देहात के जीवन में ही खाया हुआ है[1] । उन के माँ-बाप और परिवार-जन गाँव ही रहते हैं । उन्हीं की जीवन-रीतियों के अनुसार ही जीवन की समस्त अनुशासन-विधियों का पालन करने में मार्कण्डेय अब भी तत्पर हैं । उन की विचार धारा भी देश के बहुसंख्यक किसानों से जुड़ी हुई है, किसानों की दीन-हीन दशा मार्कण्डेय केलिए अपरिचित तथ्य नहीं है । इस परिचय से ही "भूदान", "शहीद की माँ", "सोहगइला" "जूता", "बीच के लोग" आदि अनेकानेक कहानियाँ जन्मी हैं । इन में से कुछ कहानियों में मार्कण्डेय की मानसिकता की आर्द्रता झलक जाती है । "जूता" उन की ऐसी एक कहानी है । मार्कण्डेय के रचना व्यक्तित्व में जिस पक्षधरता पर पहले पहल प्रकाश डाला गया है, जिस प्रगतिशील विचारधारा के प्रभाव के बारे में बताया गया है, उस का एक अतिमृदुल पक्ष भी है । यह अवश्य है कि मार्कण्डेय के रचना व्यक्तित्व का यह एक भावुक अंश है । सहानुभूति की आर्द्रता उन की कहानियों को विशुद्ध मानवी धरातल पर छोड़ती है । इस आर्द्रता की पृष्ठभूमि जीवन की धुरिहीनता से संबंधित है । यही तथ्य हमें पुनरास्वादन केलिए प्रेरित करती है ।

---

1. बदलते परिप्रेक्ष्य - नेमीचंद्र जैन, पृष्ठ 148.

भावगत तीव्रता के विविध पहलुओं को उन्होंने अपनी कहानियों में अभिव्यंजित किया है । आर्द्रता जिस का जिक्र किया जा चुका है, उस का एक पहलू है तो अनैतिकता या अन्तर्विरोध पूर्ण दृश्यों से उत्पन्न होनेवाली अकुलाहट उस का दूसरा पहलू है । मार्कण्डेय अपने को गाँव की सीमा के भीतर बाँध लेते हैं । अपने परिचित संसार से ऐसे तथ्यों का संग्रह करते हैं । ग्रामीण जीवन से जुड़े कथा पात्र ग्रामीण जीवन-यथार्थ का ही अंकन कर रहा है ? नई कहानी के संदर्भ में मार्कण्डेय के रचना व्यक्तित्व पर विचार करते समय यही सवाल प्रमुख रूप से उठता है । उन की प्रासंगिक भी इसी सवाल के जवाब पर आधारित है ।

रचना के क्षण

यह बताया जा चुका है कि मार्कण्डेय जीवन यथार्थ के कहानीकार हैं । यथार्थ के अनेकानेक संदर्भ होते हैं और इन संदर्भों का एक वास्तविक परिदृश्य होता है । कई बार एक छोटी-सी घटना या किसी व्यक्ति का सामाजिक आचरण अथवा समाज में व्यक्ति के कार्यव्यापारों को देखते-समझते रहने से कहानी के पात्र और स्थितियाँ, मार्कण्डेय को मिलती है । उन्होंने स्वीकारा भी है - पहले कहानी-संग्रह "पान-फूल" के छपने तक मेरी दृष्टि अत्यंत वस्तुपरक हो गयी थी"[1] । इस से यह स्पष्ट होता है कि मार्कण्डेय की प्रारंभिक कुछ कहानियाँ व्यक्तिपरक थीं । उदाहरणा "गुलरा के बाबा" नामक कहानी । चरित्र की विशिष्टता के प्रति जो आग्रह है उस से उत्पन्न व्यक्ति चित्रों की यह प्रस्तुति है । प्राय: हर कहानीकार इस दौर से गुज़रता है ।

आत्मसंघर्ष के परिणाम स्वरूप ही मार्कण्डेय रचना करता है । उन्होंने लिखा है - "मेरेलिए रचनात्मक प्रक्रिया का सत्य इसी आत्मसंघर्ष का परिणाम है, अन्यथा मैं

---

1. अमृत-प्रभात, वार्षिक विशेषांक 1980, मेरी कथायात्रा - मार्कण्डेय, पृष्ठ 27.

लेखक न हो कर "एजिटेटर" बन गया होता, "[1] । समाज में "उभरती हुई नई सच्चाइयों के संदर्भ में रागात्मक संबंधों [illegible] नियों में चित्रित है "[2] उन को छोड़ कर कथावस्तु या अन्य प्रतिमानों के प्रति मार्कण्डेय को कोई विशेष आग्रह नहीं है । केवल उन्होंने यही किया है कि ....समसामयिक जीवन के पूरे विकास के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि से देखा......"[3] । अत: इन का सामाजिक जीवनदर्शन स्पष्ट झलकता है । उन की कहानियाँ हमारे देश का जो समाज शास्त्र है उस का एक नक्शा भी प्रस्तुत करती है । यह उन के रचना क्षण के विकास को ही सूचित कर रहा है । सामाजिक प्रतिबद्धता की पूरी सक्रियता इन में प्रकट होती है ।

<u>साहित्यिक मान्यतायें</u>

मार्कण्डेय के मतानुसार रचनाकार का बुनियादी सरोकार सामाजिक यथार्थ से होना चाहिए । सामाजिक परिदृश्य के परिवर्तन की प्रवृत्तियों को जनता के उज्वल भविष्य की ओर बढ़ाना, साहित्यकार का दायित्व है । अथवा उलझे हुए सामाजिक परिवेश को स्पष्ट कर के जीवन के सत्य को उद्घाटित करते रहना । लेखक को अनुभव में वृद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता के बारे में मार्कण्डेय लिखते हैं - "......जो लेखक जितनी ही गहराई से इन बदलती हुई भावभूमियों को पकड़ता है, वह उतनी ही तीव्रता से जीवन की संवेदनाओं को संचित कर अपने अनुभव में वृद्धि करता जाता है"[4] ।

---

1. सहज और शुभ - मार्कण्डेय, दिशा-दृष्टि, प्रथम संस्करण 1964, पृष्ठ 4
2. माही - मार्कण्डेय, विज्ञप्ति, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 1.
3. वही
4. हंसा जाइ अकेला - मार्कण्डेय, भूमिका, पृष्ठ

कहानी का मूल्यांकन अथवा कथा-आलोचना की कोई परंपरा हमारे देश में नहीं है । प्राचीन काल से ही भारत में काव्य और नाटक को ही साहित्य की विधा में मानते रहे । इसलिए इन पर विचार करने केलिए परंपरागत आलोचना का दृष्टिकोण अस्थित था । उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में जिस कथा का आरंभ भारत में हुआ था वह मूलत: पश्चिमी कहानी और उपन्यास की देन है । नतीजा यह हुआ कि हिन्दी में प्रेमचंद से ले कर नई कहानी के आंदोलन तक कथासमीक्षा का कोई सुव्यवस्थित विकास नहीं हो पाया । फलस्वरूप प्रेमचंद-अज्ञेय-जैनेंद्र-यशपाल जैसे महान कथाकारों के बारे में भी, उन्नीस सौ साठसत्तर तक, अलग अलग आलोचना पुस्तक अपलब्ध नहीं थी । ऐसी अवस्था में जब नयी कहानी का विकास हुआ तो बहुत गहराई से यह महसूस होने लगा कि कथा-समीक्षा केलिए एक सुव्यवस्थित आधार होना चाहिए । समकालीन संदर्भ और परिदृश्य आदि की चर्चा तथा कहानी के प्रारूप आदि के बारे में मार्कण्डेय ने यों लिखा है - "इस समय कहानियों की रचनात्मक गहराइयों को विश्लेषित करने केलिए जिस विकसित समीक्षा पद्धति की आवश्यकता थी उसे ले कर लेखकों और आलोचकों में बहस की शुरूआत भी हुई, लेकिन बात बनी रहीं"[1] । कथा-लेखकों ने स्वयं लंबी-लंबी भूमिकायें लिख कर अपनी कहानी के मंतव्य और विशेषताओं पर प्रकाश डाला । कथा आलोचना के विकास केलिए डा.नामवर सिंह की "नयी कहानी" पुस्तक ने बहुत बड़ी सहायता की । बाद में देवी शंकर अवस्थी, सुरेन्द्र चौधरी, चन्द्रभूषण तिवारी, ओमप्रकाश ग्रेवार, शिवकुमार मिश्र आदियों ने कहानी समीक्षा शुरू की - नई कहानी के अनेक लेखकों ने कथा-समीक्षा के क्षेत्र में कुछ काम करने का प्रयत्न किया । देवी शंकर अवस्थी ने कहानी समीक्षा से संबंधित निबंधों के दो संकलन "कहानी: संदर्भ और प्रकृति" तथा "विवेक के रंग" नाम से प्रकाशित कराये"[2] । "आलोचना", "कल्पना", "कथा", "सुधा" इत्यादि

---

1. कहानी की बात - मार्कण्डेय, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 7.
2. समकालीन कहानी: रचना और दृष्टि, सं. श्यामकिशोर सेठ, मार्कण्डेय से एक बात चीत, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 19.

पत्रिकाओं ने भी कथा-समीक्षा के संबंध में लंबी बहसें चलाई गयीं । "नई कहानियाँ" पत्रिका में, "जो लिखा जा रहा है" स्तंभ के अंतर्गत नयी कहानी की समीक्षा मार्कण्डेय किया करता था । मार्कण्डेय के मतानुसार नई कहानी के लेखकों ने "किसी ने वस्तु की नवीनता, किसी ने शिल्प की नवीनता और किसी ने मानदण्ड के विशद विवेचन द्वारा पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है"[1] । साथ ही साथ "..... आज की कहानी अपने बाह्य और आन्तरिक दोनों उपकरणों में सचेत रूप से समाज के वस्तुगत संदर्भों की प्रतिलिपि है, लेकिन वह प्रकृतिवादी नहीं है"[2] । यथार्थवादी मार्ग से कहानी को विचलित करने केलिए रचनात्मक चेतना के मूल में होनेवाली लड़ाई के बारे में यों लिखते हैं - आत्मानुभूति पर आधारित भाववादी अनुरक्ति का दबाव कहानी को यथार्थवादी मार्ग से विचलित कर रहा है । एक ओर सामाजिक संदर्भों की पहचान तथा व्याख्या क्षीण हो कर सरलीकृत नारों में बदल रही है तो दूसरी ओर कुत्सित सामाजिक चेतना के लेखक मज़मून चुराने तथा समाज और क्रान्ति का नाम लेकर भ्रम पैदा करने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं । वस्तुतः लड़ाई अब सीमांतो पर नहीं रचनात्मक चेतना के मूल केन्द्र में लड़ी जा रही है"[3] । मूल रूप से मार्कण्डेय की साहित्यिक मान्यताएँ सामाजिक हैं तदर्थ प्रगतिशील भी ।

मार्कण्डेय की कथेतर रचनाएँ

मार्कण्डेय की कहानियों के सात संग्रह प्रकाशित हैं, जिन में उनसठ कहानियाँ संग्रहीत हैं । इन कहानियों के बारे में इस शोध प्रबंध के सातवें अध्याय में विस्तृत रूप

---

1. कहानी की बात - मार्कण्डेय, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 12.
2. वही पृष्ठ 13.
3. बीच के लोग - मार्कण्डेय:भूमिका: पहला संस्करण 1975, पृष्ठ 1.

से चर्चा की गयी है । कहानियों के अलावा उन के दो उपन्यास, एक समीक्षात्मक ग्रन्थ, एक एकांकी संग्रह तथा एक काव्य संग्रह भी प्रकाशित हैं[1] ।

उपन्यास:

1. सेमल के फूल

यह एक लघु उपन्यास है या एक लंबी प्रेमकहानी । क्योंकि इस की संपूर्ण कथानक नीलिमा नामक युवति की प्रेमानुभूतियों से संबंधित है । नीलिमा की डायरी के रूप में कथा संरचित है । सुमंगल के प्रथम दर्शन से ही उस पर अनुरक्त नीलिमा, अपना शरीर भी उस को समर्पित करती है । उसी एक दिन की यौन-सुख की स्मृति में वह अपने पति के घर में रहती है । नीलिमा के विक्षिप्त मन और भावावेग से उस ने काफी सूक्ष्मता तथा तीव्रता आई है । लेकिन दूसरे पात्र काफीदुर्बल दीखते हैं । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इस केलिए पूर्वावलोकन शिल्प को अपनाया गया है । चरित्र सृष्टि की दृष्टि से यह एक उत्तमकोटि का उपन्यास नहीं है । इस की समीक्षा कर के प्रहलाद मोतल ने लिखा है - "नीलिमा ही क्या, सुमंगल, उसके माँ-बाप सभी देवलोक से उतर कर आये दीखते हैं"[2] । कुलमिला कर इस छोटे उपन्यास को एक आदर्शवादी प्रेमकथा ही कही जा सकती है ।

2. अग्निबीज

उन्नीस सौ इक्यासी में प्रकाशित यह उपन्यास एक लंबी कथायोजना का पहला भाग है । इस में लेखक ने "स्वतंत्रता के बाद, 53-54 के आसपास के ग्रामीण संदर्भों

---

1. उपन्यास - "सेमल के फूल" 1962 , "अग्निबीज" 1981.
   निबंध संग्रह - "कहानी की बात" 1984
   एकांकी - "पत्थर और परछाइयाँ" - कविता संग्रह- "सपने तुम्हारे थे"

2. समालोचक - प्रहलाद मोतल, जून 1968, पृष्ठ 58.

में उभरते पात्रों की सामाजिक, राजनैतिक चेतना की विकासयात्रा को रेखांकित करने"[1] का संकल्प किया है । इस उपन्यास का दूसरा भाग सन् 1961-70 तक की परिस्थितियों के आधार पर तैयार हो गया है, जिसे "सूर्य मुख" नाम भी दिया गया है । सन् 1971 से 75 तक के सामाजिक जीवन के आधार पर तीसरे भाग की तैयारी में मार्कण्डेय लगे हुए हैं ।

मार्कण्डेय ने "अग्निबीज" में समकालीन परिस्थितियों को पहचानने का कार्य किया है । तेज़ी से बदलती जीवन-परिस्थितियों के माध्यम से श्यामा, सुनीता, सागर और मुराद के द्वारा युवा मानसिकता की स्थितियों का भी उन्होंने विश्लेषण किया है । भारतीय जीवन के एक मानचित्र की प्रस्तुति है । आज की राजनीति के विरुद्ध ग्रामीण युवा पीढ़ी की प्रतिक्रिया का चित्रण इस उपन्यास में प्राप्त है । इस के बारे में चारुमित्र ने यों लिखा है - मुख्त: 1953-54 के आस-पास का राजनीतिक संदर्भ और अप्रासंगिक होती हुई राजनीति के विरुद्ध जागरूक होती हुई युवा पीढ़ी की किशोर मानसिकता जिन्हें वे ग्रामीण परिवेश में रख कर कुछ गढ़े हुए पात्रों के जरिये मूर्त करना चाहता है"[2] ।

विभिन्न राजनीतिक संदर्भों और विचारधाराओं के प्रतीक के रूप में, एक तरफ़ भाई जी और भागो बहन, साधो काका और मुसई महत्तो, ज्वालासिंह और धनिकलाल, विनेसरी और हरगोबिन्द सिंह को प्रस्तुत किया गया है । दूसरी तरफ़ नयी पीढ़ी के पात्र, चार तरुण अग्निबीज-श्यामा, सुनीता सागर तथा मुराद, नई चेतना के प्रतीक के रूप में आये हैं । चौदह-पन्द्रह वर्ष के ये तरुण अग्निबीज, धरती

---

1. अग्निबीज - मार्कण्डेय, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 6.
2. आलोचना, जनवरी-मार्च 1983, पृष्ठ 76.

के नीचे अंधेरे में, अन्दर ही अन्दर सुलग रहे हैं, परिवेश और राजनीति के प्रति जागरूक हो रहे हैं और कभी भी फूट कर बाहर निकल सकते हैं । "गरीब जनता के सामने आशा और गांधी वादी आदर्शों की एक मृगमरीचिका उपस्थित करके उन्हें बहलाने के लिए"[1] । भाई जी और भागो बहिन, साधो काका और मुसई भगत तैयार नहीं होते । ज़मीन्दार ज्वाला सिंह हमेशा शासक वर्ग के साथ रह कर लाभ उठाता है स्वाधीनता की लड़ाई में भी भाग लिये बिना ही वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनैतिक नेता बन जाता है । इस से आज़ादी की लड़ाई के निस्वार्थ सेवक नेपथ्य में धकेल दिये जाते हैं । शोषण की जटिल बारीक प्रक्रिया का चित्रण उपन्यास में नहीं हो सका है । इस उपन्यास में अत्याचार और शोषण की कुछ आनुषंगिक सूचनाएं ही प्राप्त होती है ।

श्यामा का विवाह और बिदाई के साथ उपन्यास का अंत भी हो जाता है । जाग्रत लड़की श्यामा, माँ-बाप के द्वारा तय की गयी शादी को तैयार हो जाती है । उपन्यास के भावी खंड़ों में कथा-सूत्र सुनीता, सागर और मुराद के हाथों में होंगे । "अपनी अतिरिक्त भावुकता की वजह से वह अपने पात्रों के प्रति वस्तुनिष्ठ और निर्मम नहीं हो पाता है । इसलिए "अग्निबीज" के अधिकांश पात्र या तो लेखक के विचारों के प्रतीक हैं या सिर्फ उस के हाथों के निर्जीव कठपुतलियाँ"[2] । तोभी स्वातंत्र्योत्तर दशक में ग्रामीण संदर्भ में उभरते पात्रों की सामाजिक-राजनीतिक चेतना की विकास यात्रा के अंकन में सफल ही दीखते हैं ।

---

1. अग्निबीज, पृष्ठ 121.
2. आलोचना - चारुमित्र, जनवरी-मार्च 1983, पृष्ठ 79.

निबंध संग्रह - कहानी की बात

यह एक समीक्षात्मक ग्रन्थ है । इस में कहानी संबंधी पन्द्रह लेख संकलित हैं । प्रथम लेख का शीर्षक है "अतीत और भविष्य से मुक्त निरेवर्तमान में" । इस लेख में निर्मलवर्मा की कहानियों की समीक्षा है । इसी प्रकार शेखर जोशी, अमरकान्त, राजेन्द्रयादव, कृष्णा सोबती, रामकुमार, मोहन राकेश, भीष्म साहनी आदि पन्द्रह प्रमुख कथाकारों की कथा की आलोचना है । प्रारंभिक लेख "कहानी की बात" के अन्तर्गत मार्कण्डेय आज की कहानी समीक्षा पद्धति की विवेचना करते हैं - कहानियों की रचनात्मक गहराइयों को विश्लेषित करने के लिए जिस विकसित समीक्षा पद्धति की आवश्यकता थी, उसे ले कर लेखकों और आलोचकों में बहस की शुरूआत हुई, लेकिन बात बनी नहीं"[1] । विकसित समीक्षा पद्धति में "वैयक्तिक रुचियों के मकड़ जाल वाली समीक्षा के साथ ही राजनीतिक लफ्फ़ाजी वाली आत्म-प्रक्षेपित समीक्षा के घिसे-पिटे मार्ग से हट कर सामाजिक संदर्भों के यथार्थ के विश्लेषण"[2] की आवश्यकता भी समझायी गयी है । उन के मतानुसार कहानी की समीक्षा कहानी के भीतर से होनी चाहिए, बाहर से नहीं। इस मत के अनुसार उपर्योक्त लेखकों की कहानियाँ पढ़ते समय मार्कण्डेय के मन में जो-जो बातें उठीं वे ही इस पुस्तक का प्रतिपाद्य हैं ।

पत्थर और परछाइयाँ

यह छः एकांकियों का एक संग्रह है । "पत्थर और परछाई" नामक एकांकी की मूल समस्या दहेज की है । कालज के युवक-युवतियों की मोहब्बत का, रिसर्च करने

---

1. कहानी की बात, पृष्ठ 7.

2. वही पृष्ठ 8.

की जगह एक रस्टोरैंट का चित्रण "चिड़िया-घर" नामक एकांकी में किया गया है । "अंधेरी झांकी" और "दो पैसे का नमक" जमीन्दर और किसान-मज़दूरों की पुरानी लड़ाई को ले कर लिखा गया है । इस लड़ाई के अंत में किसान मज़दूर की मृत्यु का चित्र है । "मैं हारूँगा नहीं" तथा "रूपक" नामक एकांकियाँ दो लेखकों की जीवन कथा है । "मैं हारूँगा नहीं" एकांकी के लेखक की बेटी की पढ़ाई, आर्थिक विषमता के कारण पूरी नहीं होती । पत्नी जिलेबी वाले के साथ भाग जाती है । हारे बिना इन सब तकलीफों का सामना करने को वह तैयार हो जाती है । लेकिन "रूपक" एकांकी का लेखक इस के विपरीत, साहित्य-मार्केट की आवश्यकता के अनुसार कहानी-नाटक-कविता-लेख आदि तैयार करता है । उस की पत्नी, मार्केट की सुन्दर सेल्स गेल की तरह पति की कलाकृतियों को योग्यता तथा व्यावसायिक सूझ-बूझ के साथ उचित कीमत पर ग्राहकों को पहुँचा देती है । मंच का ध्यान न रखने तथा पात्रों की संख्या बढ़ जाने के कारण ये एकांकियां अभिनेय योग्य नहीं हैं । कुछों के कथानक असंबद्ध और शिथिल हैं ।

निष्कर्ष

मार्कण्डेय के कृतिव्यक्तित्व के एकाध पहलुओं के अध्ययन के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि उन की रचनात्मक मानसिकता को स्थापित करनेवाला प्रेरक तत्व प्रगतिशील चिंतन और मनुष्योन्मुखी जीवन दृष्टि है । उन्होंने इस जीवन दृष्टि को सामान्य लोगों, किसान-मज़दूरों से भरे पड़े ग्रामीण वातावरण के संदर्भ में विकसित किया है । इस प्रकार यथार्थवादी कथा-साहित्य की आधुनिक परंपरा का सूत्रपात उन की रचनाओं के कारण संभव हुआ है । यह बात उन के व्यक्तित्व में निहित विद्रोहात्मकता की ओर संकेत करती है । अनैतिक आचरण के प्रति विद्रोह प्रकट करना सचेतनता केलिए प्रमाण ही है । लेकिन वह विद्रोह की छटपटाहट तक भी सीमित नहीं । उन के व्यक्तित्व में सहानुभूति का अंश बहुत अधिक है । यह मात्र

शाब्दिक सहानुभूति की करुणार्द्र प्रतीति नहीं है । अनुभव की गहराई से उद्भूत भावात्मक स्थिति से उद्भूत करुणार्द्रता है ।

मार्कण्डेय की रचनाओं के बहाने उन के कृतिव्यक्तित्व की सूक्ष्मता पर विचार करते समय उन के निजी संस्कार से भी हमारा परिचय होता है । वह ठेठ देहाती सभ्यता की सहजता का संसार है । अतः सामान्य ढंग की यथार्थवादी रचनाओं में भी देहाती वातावरण का जीवन्त परिवेश हमें उपलब्ध होता है । यह उन के कृतिव्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है ।

आँचलिक कहानीकारों के बीच या नये कहानीकारों के बीच मार्कण्डेय का कोई स्थान है तो वह उन का आर्जित किया हुआ स्थान है जो एक सरल, किन्तु अपेक्षित, जीवन दर्शन के आलोक में महत्वपूर्ण लगता है ।

अध्याय सात

मार्कण्डेय की कहानियाँ

अध्याय: सात

मार्कण्डेय की कहानियाँ

वस्तुपरक विश्लेषण

मार्कण्डेय प्रथमत: और अन्तत: कथाकार हैं । उन की प्रथम कहानी "गुलरा के बाबा" सन् 1953 में "कल्पना" में प्रकाशित हुई थी । उन का प्रथम कहानी संग्रह सन् 1954 में प्रकाशित हुआ । अब तक उन के सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं[1] । इन संग्रहों में कुल मिलाकर अठावन कहानियाँ संग्रहीत हैं ।

रेणु का "मैला आँचल" तथा मार्कण्डेय का प्रथम कहानी संग्रह "पान-फूल" एक ही वर्ष में प्रकाशित रचनाएँ हैं । साहित्य के क्षेत्र में दोनों की खूब चर्चा हुई है । दोनों ग्रामीण पृष्ठभूमि पर रचित हैं । "पान-फूल" कहानी संग्रह की तीन समीक्षाएँ - श्रीपत राय, धर्मवीर भारती तथा प्रकाश चन्द्रगुप्त की - "कल्पना" में एक साथ प्रकाशित हुईं । नामवर सिंह ने आकाशवाणी के प्रसारण के अन्तरगत इस पुस्तक की समीक्षा की । मोहन राकेश ने "आलोचना" में इस की समीक्षा की । याने उस समय के बहुत सारे प्रतिष्ठित

---

1. क. पान-फूल	प्रथम संस्करण	1954
ख. महुए का पेड़		1955
ग. हंसा जाइ अकेला		1957
घ. भूदान		1958
ड. माही		1962
च. सहज और शुभ		1964
छ. बीच के लोग		1975

रचनाकारों ने "पान-फूल" प्रशंसा की । कारण है मार्कण्डेय के प्रथम कहानी संग्रह ने ही कहानी के क्षेत्र में बड़ा हलचल मचा दिया था । इस से स्वत: यह समर्थित होता है कि मार्कण्डेय की रचनाओं का स्वयंसिद्ध आकर्षण पहले ही रहा है । साथ ही शुरू से ही मार्कण्डेय कथाचर्चाओं के केन्द्र में रहे हैं ।

मार्कण्डेय का गाँव से घनिष्ठ रिश्ता रहा है । उन की प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई और गाँव के वातावरण के साथ उन का आत्मीय संबंध भी था । मार्कण्डेय का जन्म एक किसानी परिवार में हुआ था । इसलिए ग्रामीण किसानों और मज़दूरों की समस्यायें उन केलिए सुनी या सुनाई गई बातें नहीं है ।

यह सही है कि मार्कण्डेय ग्रामीणों के प्रवक्ता हैं । लेकिन जो रचनाकार अपने परिवेश में आमग्न होता है, अपने पास पड़ोस की बातों को नज़रंदाज नहीं करना चाहता, उस में यह तरफदारी आती है । भारतीय समाज और भारतीय साहित्य के आपसी संबंध का यह समाजशास्त्रीय पहलू निर्विवाद से स्वीकार किया जा सकता है । इस दृष्टि से मार्कण्डेय एक प्रतिबद्ध कहानीकार ठहरते हैं ।

मार्कण्डेय ने किसानों की समस्या पर ज्यादा कहानियाँ लिखी हैं जो मुख्यत: जमीन की ही समस्या है । ज़मीन्दारी प्रथा के प्रचलन के अवसर पर किसानों की कठिनाइयों का स्वरूप स्पष्ट था । जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वह पुरानी ज़मीन्दारी प्रथा तो चली गयी । लेकिन उस का परोक्ष प्रभाव किसानों के जीवन से ओझल नहीं हुआ है । कहना यह बेहतर होगा, ज़मीन्दारी प्रथा का एक परिवर्तित रूप अब उस की तमाम विरूपताओं के साथ वर्तमान है । मार्कण्डेय की कहानियों में चित्रित होनेवाला एक प्रमुख पक्ष यही है ।

गाँव के किसानों का भी अब पहले जैसा नहीं है। वह परिवर्तित अवश्य है। लेकिन सोचने की बात है कि क्या ये परिवर्तन पूर्णरूप से किसानों केलिए फलप्रद है? परिवर्तन की अपनी विशेषताएँ और सुविधाएँ होती हैं। लेकिन ये ही परिवर्तन कभी-कभी किसानों केलिए दुष्कर सिद्ध होते हैं। ग्राम जीवन के इस बदलते हुए परिप्रेक्ष्य को भी मार्कण्डेय ने अपनी कहानी का विषय बना लिया है।

नारी जीवन पर प्रवंचना का बोझ हमेशा रहा है। तथाकथित प्रगति और शिक्षा के प्रचार और प्रसार के बावजूद अगर शहरों में नारी जीवन कठिनाइयों से भरा हुआ है तो अशिक्षित, अज्ञान और अंधविश्वासों के गर्त में पड़ी हुई ग्रामीण औरतों का जीवन दूभर ही हो सकता है। मुक्ति की कामना तो दूर की बात है। सामान्य एवं स्वस्थ जीवन भी उन केलिए मुनासिब नहीं है। मार्कण्डेय की कहानियों में यह एक प्रबल और समर्थ पक्ष है।

मात्र ग्रामजीवन की सामाजिक समस्याओं पर ही नहीं, उस के कुछ तरल और स्वच्छंद पक्ष को ले कर भी मार्कण्डेय ने कहानियाँ लिखी हैं। ऐसी रचनाओं में उनकी तूलिका सहज आत्मीयता का परिचय देती है।

नगर जीवन पर भी मार्कण्डेय ने कहानियाँ लिखी हैं। नए ग्रामीण कथाकार, यथार्थ आँचलिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देनेवाले कथाकार ग्रामीण कहानियाँ प्रस्तुत करते हैं तो पाठकों की दृष्टि उस ओर अवश्य जाती है। लेकिन जहाँ तक मार्कण्डेय की तथाकथित नगरजीवन पर लिखित रचनाओं का संबंध है, उनकी आँचलिक कहानियों की तरह सक्षम नहीं है। ऐसी रचनाओं की रचनात्मक प्रगाढ़ता संदिग्ध है।

ग्रामीण किसान-मज़दूरों की समस्या

खेती केलिए थोड़ी-सी अपनी ज़मीन-यही एक ग्रामीण किसान का सब से बड़ा सपना होता है । पर उन्हें जमीन्दारों और ठाकुरों की दया-दृष्टि पर जीना पड़ता है । किसानों से वे जब चाहे ज़मीन हड़प सकते हैं - यही दुखद स्थिति है । ज़मीन खेती करनेवाले को मिलें, इस उद्देश्य से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने ज़मीन्दारी खतम करने का नियम बनाया । लेकिन इस नियम के लागू होने के पहले ही जमीन्दारों ने ज़मीन अपने अधीन कर दी कि नियम से वे बेखूबी बच जाए । अब भी ज़मीन्दारी "रंग और रूप बदल कर" जारी है । साथ ही साथ जिन किसानों के पास, थोड़ी-बहुत ज़मीन है, उसे भी हड़प लेने का षड्यंत्र जमीन्दारों की ओर से हो रहा है । अब भी यह समस्या जैसी की तैसी बनी हुई है । मार्कण्डेय ने इसी बात को अपनी कहानियों केलिए एक प्रमुख विषय बनाया है ।

"भूदान" किसानों की भू-समस्या से संबंधित मार्कण्डेय की प्रसिद्ध कहानी है । विनोबाजी के भूदान यज्ञ के परिप्रेक्ष्य में यह कहानी लिखी गयी है । गाँव में यह खबर फैल गयी ठाकुर ने दस बिगहा तरी भूदान वालों को दे दी । बेभूमि किसानों को यह भूमि बाँटने का निर्णय किया गया । इस निर्णय का लालच दिखाकर ठाकुर ने रामजतन की थोड़ी जमीन हड़प ली । ज़मीन मिलने की प्रतीक्षा में रामजतन भूदान कम्मेटी वालों के पीछे मारा-मारा फिरने लगा । बारह महीने बाद ज़मीन का कागज़ मिलने पर ही यह मालूम हुआ कि ठाकुर के जिस दान से उसे भूमि मिली थी, वह केवल पटवारी के कागज़ पर थी । असल में वह कब ही गोमती नदी के पेट में चली गयी है"[1] । गरीब रामजतन को नहर में फावड़ा चलाना पड़ा । वहाँ मजूरी

---

1. भूदान - दूसरा संस्करण 1961, पृष्ठ 64.

कर के उस का शरीर सूख कर काँटा बन गया । प्रस्तुत कहानी के संबंध में बच्चनसिंह का मत यही है कि "भूदान जैसी कहानी में सुधारों पर व्यंग्य किया गया है"[1] ।

किसानों को अपनी ज़मीन माँ के समान प्यारी है । उस की रक्षा केलिए परिवार वालों तक की जान भी खतरे में डालना पड़ता । ऐसी एक घटना का वर्णन भी "भूदान" कहानी में है । ज़मीन्दार केआदेशानुसार नील की खेती करने को चेलिक तैयार नहीं होता । इस पर उसे शारीरिक पीड़ा तक सहनी पड़ती । इस वर्ष चेलिक का खेत साहब स्वयं जोतवाने लगता है । तब वह साल भर से चारपाई पर पड़ी अपनी माँ को गोद में ले कर खेत में पहुँचता है । वहाँ के संघर्ष में माँ की मृत्यु हो जाती है । तब चेलिक दरखास देता कि साहब उस की माँ का खून कर देता । इस प्रकार अपनी ज़मीन ज़मीन्दार से चेलिक बचा देता है ।

"बीच के लोग" में भी अपनी ज़मीन की रक्षा केलिए लड़नेवाले किसानों का जीवन चित्रित है । बुझावन का खेत अपनाने केलिए ठाकुर खेत जुतवाने को तैयार हो जाता है । बुझावन का बेटा मनरा, रग्घु तथा बचवा के नेतृत्व में ठाकुर का सामना करने को तैयार हो जाते हैं । तब सबों केलिए आदरणीय फउदी दादा आ कर बीच में पड़ जाते और कहते हैं - "खेत किसी का नहीं है । सब खेत कानून का है - देश के कानून का, न्याय का" ।

"कानून और न्याय गरीब को खेत देता नहीं, उस से छीनता है । हम ऐसे धोखे में नहीं आयेंगे । हमज़मीन को जोतेंगे" । मनरा फिर बोला"[2] । इस कहानी

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - बच्चनसिंह, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 400.

2. बीच के लोग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 60.

में [illegible] साधारण और किसानों [illegible], बीच के लोगों को अलग कर के वर्ग शत्रुओं से सीधा संघर्ष करने के लिए तैयार[1] होने का [illegible] मिलता है । अपने अधिकार केलिए लड़नेवाले किसान का संघर्ष के उपरान्त प्राप्त होनेवाली उपलब्धि के संदर्भ में ही मूल्यवान नहीं । वह संघर्ष अपने आप में मूल्यवान है । वह एक गतिशील दृष्टि है । समाज की अवरुद्ध व्यवस्था को तोड़ने का [illegible] उपक्रम है ।

कर्ज की समस्या की यही परिणति है कि कर्ज लेनेवालों का जीवन एकदम उजड़ जाता है । गाँव के किसान अक्सर कर्ज लेते हैं । लेकिन कर्ज चुकाने में वे प्राय: असमर्थ होते हैं । एक ओर ठीक तरह से उन्हें फसल तैयार नहीं मिलती है । दूसरी तरफ कर्ज की रकम बढ़ती रहती है । सूद पर सूद लगाने पर उसे वापस करने में वे असमर्थ निकलते हैं । इस कारण से जमीन्दार लोग अगर चाहें तो कभी किसानों को ज़मीन के अधिकार से वंचित किया जा सकता है । फटेहाल किसानों का यह इतिहास नया तो नहीं है । वह पुराना ही है । मार्कण्डेय का ध्यान इन्हीं किसानों पर पड़ा है । उदाहरणार्थ उन की कहानी "नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाम" कहानी में इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है । "एक दो बीघे ज़मीन उस की अपनी थी, पर वह भी धीरे-धीरे चली गयी । एक-एक करके पेड़-पल्लव भी उस ने बेच दिया"[2] । बचऊ अपनी गरीबी से बचने केलिए बेटी को बेच देने केलिए भी तैयार होता है । अर्थात् नौ सौ रुपये और एक ऊँट को दाम के रूप में देनेवाले से बेटी की शादी करा देता है । वास्तव में उस की बेटी की बिक्री होती है ।

कठिन परिश्रम करने पर भी किसानों को पेट भर भोजन मिलने की समस्या का हल नहीं होता । "दाना-भूसा" नामक कहानी के मोहन के कथन में इसी का दुख

---

1. कथा - त्रैमासिक-5, "बीच के लोग" कहानी संग्रह की समीक्षा-सुरेंद्र चौधरी, पृष्ठ 47.

2. महुए का पेड़ - प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ 39.

प्रकट होता है - "गाँव में किस के घर में पेट भर भोजन हो रहा है इस साल में। भगवान का कोप ही तो है साल-साल भर मरो-खपो पर भी एक महीने का दाना-भूसा घर में नहीं आता"[1]। किसानों का यह दुख पुराना है। नई परिस्थितियों के बावजूद अगर आज भी इसी बात को लेकर यह दुखड़ा रोता है तो उस का अर्थ सिर्फ यही है कि समय बदल गया है जबकि इच्छाइयाँ बदली नहीं हैं। दाना-भूसा किसान की मामूली इच्छा है। मार्कण्डेय ने किसानों की इन्हीं तड़प, कसक को लेकर कहानियाँ लिखी है।

"महुए का पेड़" नामक कहानी में ठाकुर के शोषण का वर्णन है। दुखना बुढ़िया कहती है - "इस बीघे का काश्तकार था वह (दुखना का पति)। वह पुखट हाँकते-हाँकते बेहोश हो गया। अंत में वह हमेशा केलिए चल बसा। और दूसरे दिन ही ठाकुर ने बेदखली का हुकुमनामा भेज दिया। यह जो सामने का खेत है न। यह मेरा ही था। बाग में पचासों पेड़ थे। पर सब इस ठाकुर ने ले लिया"[2]। अब बुढ़िया दुखना के पास थोड़ी-सी ज़मीन बची थी। उस में एक झोंपड़ी थी और अपने हाथ लगाया एक महुए का पेड़ भी। दुखना का कोई बाल-बच्चा नहीं। इसलिए ठाकुर इसी सोच में है कि दुखना की मृत्यु के तुरन्त बाद सारी संपत्ति किसी न किसी प्रकार उपनाए। इस के बारे में दुखना कहती है -' यह ठाकुर तो चाहता है कि मैं जल्दी से मर जाऊँ, तो वह इतनी ज़मीन और यह पेड़ और पाले...... (भी अपना सकेगा)[3]। दुखना तीर्थयात्रा केलिए जाना चाहती है। कुछ रुपये माँगने एक दिन दूर के रिश्तेदार के पास चली गयी। उसी दिन ठाकुर बुढिया का पेड़ कटवाने लगता है। दूसरे दिन सबेरे ही पेड़ का

---

1. भूदान, पृष्ठ 140.
2. महुए का पेड़, पृष्ठ 69.
3. वही

तना दुखना की झोंपड़ी पर आ गिरा । दो पहर को जब दुखना लौट आयी तो "वह महुए के तने के पास चली गयी, खूनी लाल तने की लकड़ी को हाथ से छुआ, झोंपड़ी की दीवारों को देखा और घूम कर हरखू की माई से कहने लगी - "हरखू की माँ, चलो तो तीरथ को ? मैं तो चली"[1] । शोषण के कई रूपों में यह भी एक है । जिन के पास शक्ति है, अधिकार है वे उस का दुरुपयोग करने को तैयार होते हैं । व्यक्ति, समाज, नैतिकता, सहानुभूति जैसी बातें ऐसे पाशविक कृत्यों के सम्मुख धूल-सी उड़ जाती हैं ।

जमीन्दारों की क्रूरता, ग्रामीण किसानों की विवशता और गरीबी का चित्रण "मन का मोड़" नामक कहानी में भी मार्कण्डेय ने प्रस्तुत किया है । रामशरण एक साधारण किसान है । उस का छोटा भाई और पत्नी अब जीवित नहीं है । उन का बेटा जीतू को रामशरण ही पालता है । आज जीतू और ठाकुर के बेटे में गाँव के मैदान में कुश्ती हो गयी । ठाकुर का बेटा हार गया । इस बात को ले कर रामशरण और ठाकुर के बीच अनबन पैठा हुआ । ठाकुर उसे तंग करने लगा । रामशरण कहता है -"ठाकुर का कारिन्दा आया था, परवान दे गया कि वे सारे खेत छोड़ देने होंगे, जो ठाकुर ने दिये हैं, और लगन के बाकी दो सौ रुपये भी सात दिनों में दाखिल कर देने होंगे, वर्ना मकान कुर्क करा लिया जाएगा"[2] । कृषक समाज की यह समस्या कब से चली आ रही है । रामशरण की विवशता के रूप में कहानीकार ने एक विकराल ऐतिहासिक सच्चाई को हमारे सामने रखा है - जिस खेत में किसान काम करता है, उसे अपने अधीन में रखने केलिए उसे लगातार जमीन्दार की खुशामद करनी पड़ती । खुशामद करते समय में भी उस के मन में यही डर समाया

---

1. महुए का पेड, पृष्ठ 72.
2. वही पृष्ठ 88.

रहता है कि अगले साल भी यह ज़मीन उस के पास रहेगी या चली जायेगी । वह इसी पसोपेश में रहता है कि क्या कहीं उस की मेहनत में पानी फिर जायेगा ? वस्तुत: यही किसानों की सब से बड़ी ज्वलंत समस्या है ।

शोषण के विविध रूप होते हैं । गरीब किसानों को लूटने का यह भी एक तरीका है । पहले पहल कोई बंजर जमीन किसान के हवाले कर दी जाती है । वह इस खुशी में उसे ले लेता कि उसे जमीन मिल गई है । वह कड़ी मेहनत करता है, पसीना बहाता है । उस के पसीने का फल यह होता है कि वह ऊसर भूमि उर्वर हो जाती है ; हरीभरी हो जाती है ; लहलहाने लगती है । तभी ज़मीन्दार को लगता है कि समय आ गया है । किसी न किसी प्रकार भूमि हड़प लेनी है । "कल्यामन" नामक कहानी की विषय वस्तु इसी बात पर आधारित है । यह बेबसी पनारू के विचारों में झलकती ही है - "मालिक लोग तनी-तनी बात पर मुँह जोहते थे । अब तो हर की जोताई एक खेत मिलेगा । बेचार मजूर उसे खाद पानी दे कर जोतने लायक बनाये कि दूसरी साल उसे कोई दूसरा ऊसर-पासर बता कर, बना-बनाया खेत हथिया लिया जाएगा । कहीं उस का नाम न चढ़ जाये खेत पर"[1] । विडंबना यही है कि ये किसान यह सोचही सकता है ; वह कुछ कर नहीं सकता ।

शोषण का एक और रूप है अशिक्षा का फायदा उठाना । गाँव के किसान अशिक्षित होते ही हैं । उस का फायदा उठाना भी शोषण ही है क्यों कि अंतत: उस गरीब की ज़मीन हड़प ली जाती है । इसी कहानी में मंगी कहता है - "कोई मार खा कर इस्टीपा लिख गया, तो किसी को बहला कर सारे कागद पर अँगूठे की टीप ले ली, इन लोगों ने"[2] । इन शब्दों में खीझ व्यक्त होती है । लेकिन विवशता ही अधिक प्रकट है ।

---

1. हंसा जाइ अकेला, तृतीय संस्करण 1960, पृष्ठ 25-26.

2. वही पृष्ठ 26.

नई कहानी ने आम आदमी की बात उठाई थी । आम आदमी का चित्रण सही आयामों के साथ आँचलिक कहानियों में प्राप्त होता है । मार्कण्डेय ने ग्रामीणों पर होनेवाले शोषण को, उस के विविध रूप और रंग को, चित्रित किया है । इन रचनाओं में वह "आम आदमी" तड़पता-टूटता दिखाई देता है । इस आदमी की बेबसी को समझने केलिए किन्हीं सिद्धान्तों की आवश्यकता नहीं । वे अपने आप इतने नंगे और अकिंचन हैं कि स्वयं उन का जीवन ही उन की परिभाषा है ।

"दोने की पत्तियाँ" नामक कहानी पर विचार किया जा सकता है । भोला एक भोला किसान है । जैसे उस का नाम वैसे उस का काम । पाँच बरस आधा पेट खा कर उस ने थोड़ी-सी ज़मीन खरीदी - "सरकार को क्या मालूम कि मेरे पास वही एक खेत है, मैं ने पाँच बरस में आधे पेट खा कर उसे खरीदा है"[1] । जहाँ उस की ज़मीन थी, वहीं आज नहर बन रहा है । वैसे तिवारी की ज़मीन से हो कर नहर को जाना था - जब नहर का सिरा आ कर कहीं तिवारी के बारह बिगहवा के कोने पर गिरा, तब उन के तेवर चढ़ गये । काम बंद हो गया । पंड़ित जी रात की गाड़ी से फौरन लखनऊ केलिए रवाना हो गये । सवेरे ही ; लोग कहते हैं, गाँव से तार द्वारा इंजिनीयर को लखनऊ लाया गया और आदेश हुआ कि नहर इधर-उधर घुमा कर खेत बचा लिया जाय"[2] । यहाँ गाँव की प्रभुता के साथ सत्ता का संबन्ध भी सूचित होता है । हम यह मान बैठे हुए हैं कि ज़मीन्दारी प्रथा हमारे यहाँ से गायब हो गयी है और साम्राज्यवादी शक्ति का उन्मूलन हो गया है ।

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 49.

2. वही पृष्ठ 46.

शोषण तंत्र के पुराने रंग-विधान अब नहीं रह गये हैं । अब नये मंचीय विधान है । अंतत: वही आम-आदमी त्रासद पात्र के रूप में मंच पर शेष रह जाता है, जो पहले भी था । प्रस्तुत कहानी का भोला ऐसा ही एक त्रासद पात्र है ।

मौके के मुताबिक रंग बदलने वाले गिरगिट के समान गाँव के ठाकुर-ज़मीन्दार भी अवसर के अनुसार अपना तेवर बदलते हैं और ग्रामीण किसान-मज़दूरों को चूस लेते हैं । अंग्रेज़ों के ज़माने वे ज़मीन्दारी करते थे । अब समय बदल गया है । अत: वह शासित दल के नेता या कम से कम पचायत का मुखिया बन कर अपना लाभ उठाता है । पंचायत लोगों की भलाई केलिए है । पंचायत का मुखिया या सरपंच बन कर ठाकुर मुठ्ठी गरम कर देता है । मार्कण्डेय की कहानी "बात चीत" इसी पर केन्द्रित है । प्रस्तुत कहानी में रामू का कथन है " हर विधा हमी को तो पिसना है, दादा मरेंगे, जरेंगे, अन्न उपजायेंगे, पर मज़ा दूसरे मारेंगे । देखो न ! पंचायत बनी थी किसानों की फ़ायदे केलिए,सो सरपंच हो हो गये गया-दीन ठाकुर । खूब मुठ्ठी गरम होती है"[1] । यह एक सहज सच्चाई है । बहुत कम जगहों पर इसके विरुद्ध कुछ आवाज़ उठाती है और कुछ करने की ताकत रखने वाले लोग होते हैं ।

ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न पक्ष

ग्रामीण जीवन के विभिन्न प्रसंगों को मार्कण्डेय ने अपनी कहानी केलिए स्वीकारा है । उन्होंने यथार्थ की यथास्थिति का भी अंकन किया है । साथ ही निम्नवर्गीय जीवन के कारुणिक प्रसंगों को भी उठाया है । ऐसी कहानियों में कहानीकार का आदर्शात्मक रुख ही नहीं है बल्कि मानवीय सहानुभूति के प्रति गहरी संवित्त भी दिखाई पड़ती है । कहानी केलिए ऐसी विषयवस्तु अपनाते समय कहानी को वास्तविक

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 55.

स्थिति ही कारुणिक बन जाती है । वस्तुत: यही ग्रामीण जीवन की सब से बड़ी त्रासदी है । अत: रामविलास शर्मा का यह कथन बिलकुल सही लगता है - "मार्कण्डेय की कहानियों की विशेषता उन की कारुण्य और व्यंग्य है"[1] ।

"गुलरा के बाबा" मार्कण्डेय की एक चर्चित कहानी है । बाबा पहले काफी बलिष्ठ थे । लेकिन अब बूढ़ा हो जाने पर चमड़े झूल गये हैं । उन पर झुरियाँ भी पड़ गयी हैं । उन की बातों को युवक पहलवान अहीर चैतू न मानता तो बाबा अपना गट्ठा टेढ़ा करने केलिए उसे ललकारता है । उन्होंने बुढ़ापे में भी चैतू को पराजित किया । अपनी बातों को न माननेवाले चैतू को भी, आवश्यकता आने पर बाबा, माँगे बिना सहायता पहुँचाता है ।

"नीम की टहनी" में गाँव वालों की कठिनाइयों का चित्रण है । स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्षों बाद भी गाँवों की हालत जैसी के तैसी है । बीमार पड़ जाने पर गाँवों में इलाज की कोई सुविधा नहीं । अब भी गाँववाले बीमारी केलिए केवल पूजा-आरजा ही करते - "नाई की लड़की तो अब-तब हुई है - महारानी को बड़ी डाली है, बेचारे के दो-दो जवान बेटे माई की गोद में सो गये । रामजस की मेहरारू को भी बड़ा तेज़ बुखार है । तीनों बच्चे बेहोश पड़े हैं । अब क्या होगा भला ? माली भी तो लगा लिया था, बेचारे ने, पूजा आरजा करायी, लेकिन बच्चों ने अभी तक आँखें न खोलीं"[2] । कहानी में महारानी वाली नीम के पेड़ से संबंधित अंधविश्वास का प्रसंग भी है । कुमार नामक लड़के ने अपनी सहेली पियारी को इस

---

1. कथाविवेचन और गद्यशिल्प - रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण 1982, पृष्ठ 87-88.

2. पानफूल, दूसरा संस्करण 1957, पृष्ठ 35.

नीम की टहनी से सहलाकर बीमारी से बचाया । लेकिन कुमार की मृत्यु हो जाती है । अब पियारी झोपड़ी बना कर नीम के नीचे रहती है । वह चेचक पीड़ित मरीजों को सहलाने केलिए नीम की टहनी तोड़कर देती है ।

प्राय: गाँवों के साथ स्वच्छता का संकल्प जुड़ा हुआ होता है । लेकिन बुनियादी सुविधाओं के अभाव में यह संकल्प टूट कर स्थित ग्रामीण लोगों को हमेशा परेशानियों का सामना करना पड़ता है । "घूरा" नामक कहानी दृष्टव्य है - "आज तीसरा दिन था, पर बरिश नहीं थमी। गृहस्थ लोग बार-बार बाहर निकल कर, बादलों की ओर देखते पर वे तनिक भी फटते नज़र नहीं आ रहे थे । उन की हलकी घुमड़न, और बूंदों की सरसराहट के अतिरिक्त, कोई आवाज़ कहीं से नहीं आती थी । ऊपर काले-कजरारे घनघोर मेघ और नीचे भीगी हल्की-भूरी कीचड़- जिस में जगह-जगह कूड़ा-करकट और गोबर के सूखे कंड़ो के द्वीप और उन द्वीपों के ऊपर रेंगते हुए केंचुए, गोबड़ौरे और मखमली वीरबहूटियाँ । रह-रह कर आसमान में बादलों की गहरी-भूरी; किन्तु टीक पर श्वेत लटें, धुएँ-सी दौड़ जातीं और पानी की कड़ी बौछार होने लगती"[1] । यह गंदगी, यह कीचड़ ग्रामीण जीवन का एक अविस्मरणीय अंग है । ग्रामीण जीवन का बाह्य रूप जिस प्रकार बदसूरत है उसी प्रकार जीवन में जर्जरता फैलने के कारण उस का आन्तरिक स्वरूप धूमिल भी है ।

मार्कण्डेय ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त गरीबी का भी नग्न वर्णन किया है । बड़ी धूप में चमड़े के जूते के अभाव में पलाश के पत्तों से काम चलाने वाले गरीबों का

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 63.

चित्रण भी उन्होंने किया है - कड़ाहे के तेल की तरह जलनेवाली धूप और भउर की तरह जलती गर्द होगी लौटते समय । उस (मनोहर) ने पत्तियों (पलाश के) को पैरों के तले बाँधने केलिए घर से रसी के कई टुकड़े भी छिपा कर जेब में रख लिये थे"[1] । इस का दूसरा चित्र "मिट्टी का घोड़ा" नामक कहानी में भी प्राप्त है । शारीरिक नंगापन उन के शरीर मात्र को नंगा छोड़ देता नहीं है बल्कि उन के जीवन को नंगा कर दिया गया है - "कमज़ोर पसलियाँ झाँक रही है, बाहर पेट निकल पड़ता है, नाक बह रहीं है । पर यह बच्चा है । इस बूढ़े आदमी के साथ होगा, जो सुबह ही से खाँसते-खाँसते हाँप रहा है । जो करीब करीब नंगा ही है । पर बच्चे की देह पर एक कमीज है जिस में गंदगी ने अलग रंग बना रखा है[2] ।

"बातचीत" नामक कहानी गाँव के जीवन में जो भटकन, लक्ष्यहीनता है.,इस पर व्यंग्य करती है । अगर कोई काम है तो करें, फिर क्या ? झूठी बातों पर घंटों तक बहस, जीवन की इस लक्ष्य हीनता का चित्र मार्कण्डेय ने, सादगी के साथ खींचा है - जैसे अखबारों में पहले पन्ने पर एक खास खबर दी जाती है और उस केलिए पत्रकार, न जाने कितनी खबरों की जाँच-पड़ताल करते हैं, वैसे ही गाँवों में कुछ मौखिक पत्र निकलते हैं, जिन के पत्रकारों का काम रोज़ न रोज़ एक नया मसाला खोज निकलना और फिर उस में नमक मिर्च लगा कर, हुक्क के धुएँ के साथ उड़ाना ही होता है । क्या करे, दूसरा काम जो नहीं रहता उन्हें ।

"कभी कभी तो सितबितिया धोबिन की चुनरी ही को ले कर बात खड़ी हो जाती है । फिर क्या, बूढ़े चौथी जवान गभ्डू बन जाते हैं । बिना दाँत के मसूढ़ों में एक मशीन की-सी गति आ जाती है और होंठ बार बार एक दूसरे से टक्कर लेते

---

1. कहुए का पेड, पृष्ठ 17-18.

2. वही, पृष्ठ 117.

रहते हैं । नन्हीं-नन्हीं कीचट से भरी आँखों में एक भाषा बोलने लगती है और जबान कतरनी की तरह कचर-कचर चलती रहती है।[1] । "बातचीत" जैसी कहानी ग्रामीण के जीवन्त वातावरण की अभिव्यक्ति है । यह उन की खुशहाली केलिए कोई उदाहरण नहीं है । यह उन की लक्ष्यहीनता और बेरोजगारी तथा गरीबी को उदाहृत करती है ।

"हंसा जाइ अकेला" कहानी का हंसा काला-चिट्टा और तगड़ा आदमी है । पर है वह निरीह । वह काम से खाली होते ही बाबा के पास आकर रामायण-महाभारत की कथायें सुनने या गाँधीजी के बारे में जानने का प्रयत्न करता है । उस युवक की बातों के द्वारा तथा कहानी में अन्यत्र सूचित किंचित परामर्शों से ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को अनावृत किया गया है ।

काँग्रेस और गाँधीजी पर आकृष्ट हो कर हंसा गाँव में कांग्रेस केलिए काम करने लगता है । एक बार गाँव आयी काँग्रेस की कार्यकर्त्री सुशीला हंसा से आकृष्ट हो जाती है । चुनाव के दौरान बारिश में भीगने के कारण वह बीमार पड़ जाती है । वह हंसा की झोंपड़ी में पड़ी है । जी-जान से कोशिश करने पर भी हंसा, सुशीला को बचा न सका । सुशीला की मृत्यु के बाद, हंसा अधपागल-सा गाता हुआ गाँव भर घूमता-फिरता है । प्रस्तुत कहानी मार्कण्डेय की चर्चित कहानियों में से है । "हंसा जाइ अकेला" ग्रामीण जीवन की अच्छी झलक देती है और लेखक ने उस में श्रम किया है । इस का कारण यह है कि इससंग्रह में लेखक ने रूमानी दुनिया का मोहत्याग दिया है।[2] । नेमीचन्द्र जैन के मतानुसार "हंसाजाइ अकेला" कई दृष्टियों से इस कोटि की कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है । उसकी मानवीय सहानुभूति यथार्थ भी है और प्राणवान भी । उस में कृत्रिमता का अभाव है, और सौभाग्यवश लेखक भावुकता, के थोथे-छूछे

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 53.
2. समालोचक, जून 1958, पृष्ठ 60.

जाल से अपने आप को मुक्त रख सका है । शिल्प की दृष्टि से भी इस कहानी में लेखक अंत तक आवश्यक नाटकीय खिंचाव को बनाये रख सका है"[1] । आंचलिकता के संदर्भ में भी प्रस्तुत कहानी की प्रासंगिकता है - "अपने प्रभाव में आंचलिकता को भी लपेट लिया है"[2] । कहानी के रूमानी वातावरण के बावजूद एक सही ग्रामीण मोह की कहानी है "हंसा जाइ अकेला"[3] ।

ग्रामीण जीवन की शोच्यावस्था का चित्रण "चाँद का टुकड़ा" नामक कहानी में है । कहानी का वह देहात बड़े-बड़े नेताओं की कृपा के अभाव में पिछड़ा ही रह गया है । वहाँ की सड़क स्वतंत्रता प्राप्ति की एकमात्र निशानी है । लेकिन अब उस सड़क से हो कर मोटरें नहीं जा सकती । मोटरें न जा सकने से नेताओं का आना बंद हो गया है । इस कारण वह इलाका एकदम पिछड़ा रह गया है । यह सिर्फ उस देहात के पिछड़ेपन की अवस्था नहीं है । प्रस्तुत कहानी इसी एक तथ्य को उदाहृत करती है कि हमारे राजनीतिक कार्यकर्ता कितनी आसानी के साथ लोगों की आँखों में धूल झोंक कर अपना काम चला देते हैं । उन के शब्द इतने निरर्थक होते हैं जिस में आत्मीयता का स्पर्श तक नहीं है । इसलिए पिछड़ापन हमारा अभिशाप नहीं बल्कि अगंभीर, अननुशीलित लोगों के स्वार्थ का परिणाम है ।

अधिक मजूरी की खोज में अपना गाँव छोड़ कर जानवाले सनोहर की बात भी "चाँद का टुकड़ा" नामक कहानी में है । एक ओर गाँव का पिछड़ापन है दूसरी ओर गाँव की मज़दूरी की कमी है । प्रस्तुत कहानी में ग्रामीण जीवन के यथार्थ के दो स्तरों का उद्घाटन किया गया है ।

अब ज़मीन्दारी का पुराना ढाँचा नहीं रह गया है । लेकिन असली बात यह है कि उस प्रथा ने दूसरा रूप अपना लिया है । इस वर्ग के लोगों का लक्ष्य केवल

---

1. कल्पना, नवंबर 1957, पृष्ठ 51.
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 184
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चनसिंह, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 400

धनोपार्जन ही नहीं है, सत्ता की सहायता से प्रभुत्व भी प्राप्त करना-धारना है। यही नई ज़मीन्दारी का स्वरूप है। ऐसे दो व्यक्तियों की टकराहट "उत्तराधिकार" नामक कहानी में चित्रित है। ग्रामीण जीवन यथार्थ का यह भी एक पहलू है।

गाँव की युवा पीढ़ी बहुत कम पैमाने पर ही सही शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ रही है। यह एक सुखद अनुभव है। लेकिन बेरोजगारी की समस्या हमारे देश की ऐसी एक समस्या है जो शहर और गाँव के लोग समान ढंग से भुगत रहे हैं। गाँव की शिक्षाप्राप्त पीढ़ी को दर-दर भटकने की नौबत आ जाती है। उन्हें पुन: नौकरी की तलाश में शहर जाना पड़ता है जहाँ उन को न कोई पकड़ है, न उन की जड़। इस हालत में उन की पढ़ाई भी फिजूल हो जाती है। "आदमी की दुम" में इसी का वर्णन हमें मिलता है। इसी से मिलती-जुलती एक कहानी है "साबुन"। इस में भी राजेश नामक पात्र अपनी पढ़ाई को एक अभिशाप मानता है। उस की माँ स्वयं कहती है - "छ: महीने तो हो गये भड़कते नौकरी के चक्कर में। नहीं, मिलती कोई नौकरी, तो क्या परान दे दे, या वह भी उसे घर से निकाल दे? कैसी हालत हो गयी है"[1]?

"मधुपुर के सिवान का एक कोना" नामक कहानी में जो मुन्नन है, ठाकुर के यहाँ का नौकर है। वह आधाकाना है। उस की एक आँख ठाकुर के बैल की सींग लगने से फूट गई थी। छोटी-मोटी गलतियों पर ऐसे नौकरों को बहुतकुछ सहना पड़ता है। ठाकुर के बेटे का पाशविक व्यवहार का वर्णन मार्कण्डेय ने यों किया है :- "फिर गालियाँ देता हुआ मुन्नन की ओर लपका और उसे पीटने लगा, "ऐबी साला! एक काम ठीक से नहीं करता। रोज़ एक-न-एक बहाना बना कर सोया रहेगा और बैलों को सिवान भर दौड़ायेगा। आज तेरी दूसरी भी आँख फोड़ कर छोड़ूँगा"। वह उस के सीने पर चढ़कर मनमाना घूँसे चला रहा था और मुन्नन चुप था, जैसे मर चुका हो।"[2]

---

1. महुए का पेड, पृष्ठ 44.

2. सहज और शुभ, पृष्ठ 61.

हीरा ने दो एक बार कुछ कहने को मुँह खोला, पर डर के मारे चुप रह गया"[1] । गरीबी ऐसी एक पतित अवस्था है कि लोग उसे अभिशप्त मान बैठते हैं ।

गाँवों में अब भी होनेवाले शोषण और लूट के यथार्थ का चित्रण "बादलों का एक टुकड़ा" नामक कहानी में हो गया है । किसानों को कभी कभी महाजनों और ठाकुरों से कर्ज लेना पड़ता है । कर्ज के रुपये से जो खरीदा जाता है, वह तथा बची-खुची संपत्ति को भी, कर्ज चुकाने में असमर्थ होने पर लूट लिया जाता है । यही नहीं उन के हिसाब से सूद जो बाकी रह जाता है, उस केलिए बिना मजूरी के काम भी करना पड़ता है । तब सबकुछ छोड़-छाड़ कर जाने की नौबत आती है । "बादलों का एक टुकडा" नामक कहानी के गरीब किसान के उक्त कथन से उस की मजबूरी ही नहीं उस के त्रासद अनुभव भी स्पष्ट है - "मैं अभी बसगाँव जा रहा हूँ, वहाँ सरकारी ठेके पर बाँध बन रहा है"[2] ।

मार्कण्डेय की कहानियाँ ग्रामीण जीवन की धड़कन की कहानियाँ हैं । यह सही है कि उन्होंने ग्रामीण यथार्थ पर केन्द्रित होते समय शोषण और अत्याचार के विभिन्न रूप को ही अधिकाधिक चित्रित किया है । लेकिन ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित कहानियाँ भी उन्होंने लिखी है जिन में ग्रामीण यथार्थ का निखरता हुआ रूप हमें प्राप्त होता है ।

प्रताड़ित नारीवर्ग

कृषक जीवन की कठिनाइयाँ एवं उन की समस्याओं का चित्रण ही मार्कण्डेय के कहानीकार का मुख्य उद्देश्य रहा है । ग्रामीण जीवन का आर्थिक स्तर उन्ही से संबंधित है । लेकिन गाँवों में एक ऐसा वर्ग भी है जो निरन्तर शोषण के अधीन में रहा है । वह हमारा नारीवर्ग है । मार्कण्डेय ने एक ग्रामकथाकार के नाते ग्रामीण नारी पर

---

1. सहज और शुभ, प्रथम संस्करण 1961, पृष्ठ 61:
2. बीच के लो, पृष्ठ 32.

होनवाले विभिन्न प्रकार के अत्याचारों का चित्रण किया है । इसे हम उन के सामाजिक दृष्टिकोण का प्रसार मान सकते हैं ।

गाँव की अवस्था ही कुछ ऐसी है कि बहुत कम लोग अपनी सीमाओं से बाहर आते हैं । नारी को इस की सुविधा भी नहीं मिलती और प्राय: नारी मन इसकेलिए तैयार नहीं है । अंधविश्वासों और रूढ़ियों से उन का मन मुक्त ही नहीं होता । मार्कण्डेय नारी वर्ग के ऊपर होने वाली प्रताड़ना को इसी रूप में देखा है । यह हमारे निकट की वास्तविकता है ।

"सात बच्चों की माँ" सन्नो की व्यथा कथा है । पचास वर्ष के लंगड़े सरूप के साथ उस की शादी हुई थी । सन्नों जैसी खूब सूरत लड़की की शादी ऐसे व्यक्ति से हो जाने पर गाँववालों के मन में भी निराशा छा गई । "कन्या के साथ बड़ा अन्याय हुआ भाई । थोड़ा उमर-समी का ध्यान तो देना ही चाहिए"[1] । कुछ दिन बाद सन्नो घर से भाग जाती है । वापस लाई हुई सन्नो और सरूप का अच्छा संबंध नहीं था। लेकिन वह माँ बनती गई । फिर उस का संबंध देवीपंडित से हो गया और देवी पंडित के साथ वह भाग चली गई । लेकिन उस ने बाद में सन्नो को छोड़ दिया । वह गाँव लौट आ चुका था । देवी पंडित का मन उतना शांत नहीं था और लगातार सन्नो के व्यवहार को ले कर उस के मन में संदेह उत्पन्न होता था । हमेशा सन्नो को मार खानी पड़ती थी।तब भी सन्नो उस का विरोध नहीं करती, बल्कि कहती "अब मैं जीना नहीं चाहती पंडित, मैं यही तो चाहती थी कि कोई मुझ से पूछे, मुझे डाँटे, मुझे मारे, मुझे रास्ते पर लाए । मैं तो केवल मशीन थी, भूख और अँधेरे में राक्षस मुझे खाते रहे"[2] । आखिर जब वह लौट आयी तो गाँव-भर के लोग उस के विरुद्ध हो गए । किन्तु सरूप का मन उस केलिए पसीज चुका था और उस ने सन्नो को निमंत्रित किया ।

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 125. 2. पान-फूल, पृष्ठ 127.

सन्नो समाज की विषमताओं का प्रतीक पात्र है । मार्कण्डेय ने सन्नो को ग्रामीण वातावरण की पूरी जीवन्तता के मध्य चित्रित किया है । यद्यपि कहानी के आखिर में, उस की बदचलन के बावजूद, सरूप उसे स्वीकारता है, फिर भी सन्नो का जीवन प्रताड़न के बोझ से इस कदर निरर्थक-सा हो गया था । अंत में वह लौटती है ; पर उस की वापसी उस की पराजय ही है ।

"सोहगइला" मार्कण्डेय की सब से अच्छी कहानियों में एक है । इस का आँचलिक संदर्भ भी विशेष उल्लेखनीय है । इस कहानी का आन्तरिक सूत्र नारी के ऊपर किए जानेवाले अत्याचारों से संबंधित है । लेकिन कहानी की मूल दृष्टि समस्यात्मक नहीं है । कहानी की सपाट स्थिति है । रनियाँ की माँ अपनी लड़की की शादी के बाद बिदाई के अवसर पर सोगहइला सुरक्षित रखने तथा अन्य प्रकार के उपदेश देती है तथा रनियाँ ड़ोली पर बैठ कर बिदा होती है । पर रनियाँ के विचार सूत्रों में बीते दिनों की याद और उस की माँ की कठिनाइयों के चित्र उभरते हैं । जिस सोहगइला को सुरक्षित रखने को कहा गया था, वह उस के हाथ से छूटता है । रनियाँ सोचती है कि वह भी इकलौती बेटी थी, इकलौते बेटे के यहाँ आयी है - "क्षण भर बाद, उस ने फिर आँखें खोली और चाहा कि चिल्ला कर कुछ कहे खटोली को रोके, पर खटोली तो कब की बरगद की छाँह में रुक गई थी और पानी से भरे, उसी पीतल के बड़े लोटे को दोनों हाथों से उठा कर मुँह में लगाये, वह यह भूल ही गयी थी कि सोहगइला कब से उस के हाथ में नहीं है और व्यंग्य की एक तीखी हंसी उस के चेहरे पर बिखर गयी थी, - मेरा बाप भी तो अपने बाप का अकेला ही बेटा था, और माँ भी मेरे घर रानी ही बन कर आयी थी । फिर माँ के कालिख में डूबे, रूखडे हाथों की असंख्य काली रेखाओं के जाल में फँसी, उस की आँखें, दूर बैठी छोटी बहू और सामने लुढ़के सोहगइला ; दोनों को देखने में असमर्थ होती जा रही

थी । क्योंकि अब वह बच्ची नहीं रह गयी थी और सामने खड़े भविष्य को पहचान रही थी"[1] । रनियाँ की पहचान नारी वर्ग की प्रताड़ना के विरुद्ध रनियाँ की नई दृष्टि विकसित दीखती है ।

"माई" नामक कहानी एक ऐसी माँ की कहानी है जो अपने दोनों बेटों को समान दृष्टि से देखती है । उस केलिए पढ़ा-लिखा न बड़ा है और अनपढ़ न छोटा । लेकिन समाज ऐसा नहीं देखता, पढ़े-लिखे पर अधिक ध्यान देता - "जो पढ़-लिख लेगा, साहब-सूबा हो जायेगा, उसे तो सब लोग पूछेंगे, लेकिन जो रोगी है, बुरा है, उस केलिए मैं (अनपढ़) ही हूँ न"[2] । "माई" की माँ अपने अनपढ़ और बीमार बेटे केलिए सब कुछ करने को तैयार होती है । समाज की व्यावहारिक दृष्टि के बदले माँ की संवेदनशील दृष्टि ही महत्व की बात है । वह कहती है - आज से मुझ से किसी से कोई मतलब नहीं । मैं मरूँगी उसे ले कर । मैं देश-देश छानूँगी उस को दवा केलिए ...."[3] । वस्तुतः इस कहानी में माँ की आर्द्रता ही चित्रित है । लेकिन समाज की व्यावहारिक दृष्टि के सम्मुख एक माँ को अपना स्नेह दिखाने केलिए ललकारना पड़ता है ।

औरतों पर होनेवाली अत्याचारों से संबंधित एक कहानी है "एक काला दायरा" पति के रहने के बावजूद चंपा को पाशवीय वृत्तिवालों के हाथों मर जाना पड़ता है । अभागा पति को मुजरिम ठहराने की क्षमता ऐसे अत्याचारियों में है ।

---

1. हंसा जाई अकेला, पृष्ठ 37-38.
2. भूदान, पृष्ठ 32.
3. भूदान, पृष्ठ 32.

बदलते गाँव और बिगड़ती स्थितियाँ

ग्रामीण जनता की बेरोजगारी और गरीबी को दूर करने केलिए सरकार कई योजनाओं के तहत करोड़ों रुपये खर्च करती है, विशेष कर गाँवों के किसान-मज़दूर केलिए जिनकी कोई ठोस नौकरी नहीं होती तथा कम आँदनी होती है । उन के जीवन को सुधारने के उद्देश्य से करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं । लेकिन राजनीतिक नेताओं तथा सरकारी कर्मचारियों की प्रवंचनाओं के कारण कई योजनायें वास्तविक भोक्ताओं केलिए गुणकारी सिद्ध नहीं होती हैं । कुछ योजनाएँ बिलकुल कागज़ पर की ही हो जाती हैं । कहीं और नफ़ा-नक्सान की कहानियाँ भी गढ़ी जाती हैं । जो हो, प्रगतिशील कार्यक्रमों और कार्यनिर्वहण का कोई फायदा नहीं होता है । पूँजीवादी ढ़ाँचा बना रहता है । मार्कण्डेय की कुछ कहानियों का वस्तुपक्ष इसी से संबंधित है । जैसे अन्य कहानियों में भी मार्कण्डेय ने ग्रामीण किसानों की दर्दनाक जीवन-स्थिति का चित्रण किया है, यह पक्ष भी उस से इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि आज ग्रामीण कहानियों की रचना के दौरान इस पक्ष को अनदेखा किया नहीं जा सकता ।

"आदर्श कुक्कुट गृह" कहानी उदाहृत की जा सकती है । ग्रामीणों की आमदनी बढ़ाने केलिए मुर्गी-पालन की एक योजना तैयार की जाती है । उस के उद्घाटन के अवसर पर आदर्श कुक्कुट गृह भी तैयार किये गये । गाँव की आर्थिक दशा की बढ़ोत्तरी के क्रान्तिकारी परिवर्तन के सपने के साथ सारे गाँववाले इस समारोह में भाग लेते हैं । बड़े-बड़े अफ्सर आये और योजना का उद्घाटन भी हुआ । ये सारे दृश्य बेचारे गाँव वाले दूर से ही देख सके थे । जब कलेक्टर साहब लौटने लगे तो मेम साहब केलिए बेचारे ग्रामीण रामजान की मुर्गी दी गई । अन्य अधिकारियों को भी देनी थी ।

गाँव की सारी मुर्गा-मुर्गी गायब हो गयी । "धीरे धीरे चपरासियों ने छोटे साहब को घेर लिया और एक दो, दो..... तीन..... मुर्गे इक्कों पर बाँध गये, साइकिलों के कैरियरों में टाँग गये, झोलों में कस लिये गये और मेहमानों के जाते-जाते आदर्श कुक्कुट-गृह खाली हो गया । बच्चे हरे-लाल कागजों की झंडियों से नोचने लगे, धरिकार अपनी बाँस की खपच्चियाँ उखाड़ने लगा और लोहार ने तारों की जाली की कीलें ढ़ीली कर लीं । फिर भी आदर्श कुक्कुट गृह तो बाकायदा स्थापित हो ही चुका था"[1] । आगे योजना की न कारवाई हुई और आदर्श कुक्कुट-गृह कागज का अलंकरण बन कर रह गया । मार्कण्डेय की यह कहानी एक सामान्य व्यंग्य कहानी है । यह सही है कि व्यंग्य को तीक्ष्ण बनाने का कार्य उन्होंने किया नहीं है । लेकिन इस का व्यंग्य एक सच का प्रतिरूप है । इस कहानी के बारे में रामविलास शर्मा ने यों लिखा है - "आदर्श कुक्कुट गृह" में विकास योजनाओं पर व्यंग्य है । कलक्टर साहब आते हैं, कुक्कुट गृह का उद्घाटन करते हैं, मुर्गे-मुर्गियों की स्वामी सुनहले सपने दखते हैं और साहब और उन के साथी-संगी उन सुभोज्य पक्षियों को उड़ा ले जाते हैं । सत्ता, धनी वर्ग के हाथ में है, गरीब जनता के पास कोई अधिकार नहीं है । इसलिए विकास योजनायें गरीब जनता केलिए विनाश योजनायें हो जाती हैं"[2] । कृष्ण अग्निहोत्री के अनुसार "आदर्श कुक्कुट गृह" में नये भारत के विकसित दृष्टिकोणों की तह में छिपे संकुचित वातावरण पर पैना व्यंग्य है"[3] ।

---

1. भूदान, पृष्ठ 42.
2. समालोचक - रामविलास शर्मा, जून 1959, पृष्ठ 55.
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्ण अग्निहोत्री, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 184.

मार्कण्डेय की कहानी "भूदान" प्रसिद्ध और चर्चित है । भूदान का महत्व सर्वविदित है । विनोबाजी के नेतृत्व में जो हुआ वह एक ऐसा परिवर्तन था जिस का महत्व निर्विवाद रूप से है । समर्पण और त्याग से भी समाज सुधर सकता है । भूमिहीन भूमिपति हो सकता है । पर इस योजना के तहत भी जो हुआ वह भी प्रवंचना से मुक्त नहीं हुआ । यही "भूदान" की विषयवस्तु है ।

भूदान के नाम पर होनेवाले अत्याचारों की ओर इंगित करना उक्त कहानी का उद्देश्य तो है । लेकिन एक और रचनात्मक सक्रियता का परिचय भी इस से प्राप्त होता है । वह है समर्पण, त्याग आदर्श जैसे मूल्यों को भी मूल्यहीन बना छोड़ने का पूँजीवादी तंत्र यह हमारे समाज इस प्रकार पनप चुका है कि विनोबाजी का भूदान यज्ञ भी दूषित हो गया है ।

बड़े पैमाने पर स्वरूपित और अनुसारित योजनाओं को अपनी कोई कमी नहीं है । पर हमारा सामाजिक ढ़ाँचा उस प्रकार सुदृढ़ नहीं है जिस की हमें अपेक्षा थी । इसलिए हमारी बहुत भारी योजनाएँ, उन की विशिष्टताओं के बावजूद, प्राय: सामान्य जनता के विरुद्ध ही साबित होती है । "दौने की पत्तियाँ" शीर्षक कहानी यही संकेतित करती है । यह कहानी ग्रामीणोंके ऊपर होने वाले नये ढ़ंग के अत्याचार का चित्रण प्रस्तुत करती है । छोटे-मोटे किसान, अपने जीवन में एक ही कामना ले कर चलता है । अच्छी फसल मिले, जीवन सुधरे । लेकिन जब परिस्थितियाँ उलट-पुलट जाती है तो जीवन कामना सूख ही नहीं जाती बल्कि जीवन-पथ ही धूमिल हो जाता है । प्रस्तुत कहानी का भोला बादल-सा हो जाता है जब उस की फसल नष्ट हो जाती है । उस के पीछे एक बड़े किसान का हाथ था ।

जनसेवकों की रिश्वतखोरी

बाढ़के नाम पर गरीबों को धोखा दे कर काम उठाने वाले राजनीतिज्ञों की प्रवंचना "प्रलय और मनुष्य" नामक कहानी की विषयवस्तु है । महारानी नदी का बांध टूट जाता है । बाढ़ हो आता है । वहाँ को धारा-सभा के सदस्य ने जल्दी ही "बाढ़-पीड़ित-संघ बनाया तथा दस हज़ार रूपये भी दान दे दिया और फंड खड़ा कर दिया। फिर वह इस सारे क्षेत्र में अनाज-कपड़ा बाँटने का काम संभालने लगा । इस से अपने दान के कई गुने लाभ उठाना वह जानता है । प्रलयपीड़ित लोगों की आँखों में धूल झोंक कर लाभ उठाने की पूरी सुविधा से वह वाकिफ है । यह हमारे समाज की ऐसी एक अवस्था है जिस में काफ़ी लोग डूब चुके हैं । गाँवों में ऐसे लोगों के लिए पूरी सुविधा है । अनपढ़ और सरल किसानों को वश में करना कोई.बड़ी बात नहीं । मार्कण्डेय ने इस मुद्दे को एक समस्या के रूप में अपनाया नहीं है । उन्होंने सामाजिक स्थिति की ऐसी निजी अवस्था का बिना किसी आवरण के साथ चित्रण कर के उस की गहराई का परिचय दिया है ।

"एक काला दायरा" कहानी में पुलीस के अन्याय और रिश्वतखोरी का यथार्थ-परक वर्णन है । पाँचू ग्रामीण युवक है । उसे अपनी दुलहिन नष्ट हो गयी । गाँव के युवकों की मार-पीट सह कर उसे वहाँ से भागना पड़ा । चंपा को जो युवक ले गये थे उन से रिश्वत ले कर पुलीस निरपराध पाँचू पर अत्याचार करने लगी । गवाही केलिए उसे किसी की सहायता भी नहीं मिली । पुलीस के रिश्वत लेने के यथार्थ तक यह रचना सीमित नहीं है । इस का असर यही होता है कि बेसहारा युवक आजीवन कारावास में बंद कर दिया जाता हैं । शासन तंत्र के बिगड़ने पर न जाने कितनों के जीवन बरबाद होता हैं । उस का त्रासद अनुभव मार्कण्डेयकीइस कहानी में प्राप्त होता ही है ।

शहरी जीवन की कहानियाँ

मार्कण्डेय प्रथमत: और अंतत: ग्रामीण यथार्थ के कहानीकार हैं । लेकिन उन की कुछ कहानियाँ शहरी जीवन से संबंधित हैं । संयोगवश ही उन्होंने ऐसी कहानियाँ लिखी हों यही प्रतीत होता है । क्योंकि ग्रामीण यथार्थ को प्रस्तुत करते समय जिस निजता और सादगी उन की तूलिका को मिल जाती है, जो स्फुर्ति और ठोसपन उन्हें प्राप्त होता है वह शहरी जीवन को लेकर कहानियाँ लिखते समय उन्हें प्राप्त नहीं है, और यह स्वाभाविक भी है । उन की रचना प्रक्रिया को ग्रामीण यथार्थ ने प्रेरित और प्रोत्साहित किया था तथा उस के रूपायन में ग्रामीणता का योगदान महत्वपूर्ण भी है । अत: शहरी जीवन की कहानियों में निजता का अभाव है । उन कहानियों का सामान्य विश्लेषण यहाँ वाँछित लगता है ।

"वासवी की माँ", "मिस शान्ता", "अगली कहानी", "सतह की बातें", "माही", "तारों का गुच्छा", "आदर्शों का नायक", "पक्षाघात", "प्रिया सैनी" आदि मार्कण्डेय की शहरी जीवन से संबंधित कहानियाँ हैं । "वासवी की माँ" एक सामान्य रचना है जिस में स्त्री जीवन की तड़प का सामान्य वर्णन मिलता है । वासवी की माँ की यातनाओं का वर्णन इस में है । वासवी की नौकरानी के शब्दों में वह प्रकट है - "स्त्री सहारा चाहती है, स्त्री मुहब्बत चाहती है, स्त्री एक पुरूष चाहती है, पर जिसे चाहती है, उस की ही बन कर जीना चाहती है - चाहे वह उस का विवाहित पति हो, चाहे मनचाहा प्रेमी, पर उसी के आगे, उसी के हाथों अपनी अस्मता लूटती देख कर वह मर जाती है, टूट जाती है ......"[1] । नारी जीवन की विशिष्टता की ओर संकेत करते हुए भी उक्त कहानी में परिवेशगत यथार्थ का अभाव है जब कि इच्छित आदर्शों का स्वर मुखरित भी है ।

---

1. पान-फूल दूसरा संस्करण 1957, पृष्ठ 32.

"मिस शान्ता" शीर्षक कहानी की शान्ता का व्यवहार विशिष्ट प्रकार का है । वह कई युवकों से एक साथ प्रेम करती है । जब कि उस के व्यक्तित्व का एक अलग पक्ष भी है कि उस में सेवापरायणता भी है । "अगली कहानी" की रोमी का चरित्र भी इस से भिन्न नहीं है । इन चरित्र प्रधान रचनाओं में चरित्रगत प्रासंगिकता भी संदिग्ध है तथा यथार्थ का एक दम अभाव भी अरुचिकर है ।

"सतह की बातें" एक प्रेम कहानी है । लेकिन प्रेम का न वह बदला हुआ रूप इस में अंकित है न रूमानी वातावरण से मुक्त । लेकिन प्रेमी और प्रेमिका के दारुण अंत की यह कहानी है । दोनों अपने प्रेम केलिए बलिदान कर बैठते हैं ।

"आदर्शों का नायक", "पक्षाघात" आदि रचनाओं को भी मार्कण्डेय ने प्रेम के इर्द-गिर्द रखकर सृजित किया है । लेकिन शहरी जीवन का कोई रूप इन में उभरता नहीं है । व्यक्ति की समग्रता का एहसास भी इन से प्राप्त होता नहीं है ।

अनुभव चाहे ग्रामीण हो या शहरी, सक्रिय लगाव के अभाव में वह प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता और उस को रचनात्मक दिशा विकसित नहीं होती । मार्कण्डेय की इन शहरी जीवन को लेकर लिखी गयी कहानियों की कमी यही है ।

आँचलिकता का चित्रण

आँचलिकता या ग्रामीणता के विविध रूप मार्कण्डेय की कहानियों को रचनात्मक बना देते हैं । यह बताया जा चुका है कि मार्कण्डेय ने सामाजिक यथार्थ को प्रश्रय दिया है । लेकिन मार्कण्डेय अन्ततः ग्रामीण कथाकार हैं । आँचलिकता की व्यापक पृष्ठभूमि उन की कहानियों की रही है ।

एक ओर ग्रामीण व्यक्ति है । उन के ग्रामीण चरित्र से संबंधित कई पहलु है जो उन को रचनाओं को आँचलिक परिवेश प्रदान कर रहे हैं । ग्रामीण रीतियों का अंकन आँचलिक कहानियों में हुआ है, उस का अपना महत्व भी है । मार्कण्डेय की कहानियों में इन जीवन रीतियों का, उन के आचार-विचारों का भी रचनात्मक प्रयोग हुआ है ।

ग्रामांकन

आँचलिक कहानियों में गाँव एवं अंचल की ठोस उपस्थिति होती है । उस की जीवन्तता का एहसास कराने की पूरी सुविधाएँ ऐसी रचनाओं में होती हैं । प्रकृति चित्रों, विशेष स्थानों एवं वस्तुओं का चित्रण इस केलिए किया जाता है ।

"गुलरा का बाबा" शीर्षक कहानी में ग्रामीण प्रकृति चित्रण केलिए फालगुन महीने के धूप-चाँदनी से सिक्त तथा खचाखच भरे खलिहानों का वर्णन यों किया है - दिन की सुनहली धूप, शाम की अबीरी आकाश और रात की रुपहली टहकी चाँदनी-खलिहान जौ-गेहूँ के डाँठ से खचा-खच भरे हुए हैं."[1] । साथ ही गुलरा के पलासों पर पड़े फालगुन के शाम की किरणों का भी वर्णन कर के ग्रामीण प्रकृति चित्रण सुन्दर बना दिया है - "गुलरा के पलासों पर तो फागुन उतर आया था, अजब का फूल होता है - लाला टेस ; और टहनियाँ काली या चितकबरी-वे-पत्तियों की । शाम की किरणें रोज इन पर थम जाती हैं और आम की बगिया की साँवरी छाँह जैसे उस की ललछहर में एक खैरी-मट-मैली रेखा से बंट जाती हैं."[2] ।

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 13.
2. वही, पृष्ठ 14.

उसी प्रकार आश्विन् की प्रकृति की सुन्दरता का चित्रण "रेखायें" नामक कहानी में यों हुआ है "आश्विन् हो तो था, शरद की समरस, गंध युक्त वायु से वातावरण कस उठा था, फूलों की रंग-रेलियाँ और लॉन पर फैली छिटपुर दूधियाघास के नन्हें-नन्हें, सुहाग बिन्दी के तरह-तरह के कुसुमों ने घास की निर्मल, स्वच्छन्द हरीतिका से एक सम्मिलित दुलराव स्थापित कर लिया था । हवा घूम कर सब को छूती थी, और सब, एक नहीं, उसी शरारत-भरे रखरे से सिर हिला देते थे, पर वह फूलों की रानी .....? उन की रूप-सज्जा को निखार और ढ़लाव देनेवाली देवकन्या, फूलों के पास नहीं देखी गयी"[1] । प्राकृतिक सुषमा के चित्रण के रूप में इन प्रकरणों को देखा जा सकता है । लेकिन ये मात्र प्रकृति परक रूपाँकन नहीं है । गाँव को प्रस्तुत करने का एक सफल उपक्रम है जो आँचलिक कहानियों केलिए आवश्यक है ।

गाँवों में मौसम का भी महत्व होता है । क्योंकि वहाँ के लोगों के जीवन के साथ उस का संबंध है । मौसम और आदमी के आपसी संबंध की सक्रियता का चित्रण प्रस्तुत करते समय आँचलिकता का स्फुर्तिला अंग प्रकट होता है । "घूरा" नामक कहानी का यह चित्रण दृष्टव्य है - "आज तीसरा दिन था, पर बारिश नहीं थमी, गृहस्थ लोग बार-बार बाहर निकल कर बादलों की ओर देखते, पर वे तनिक भी फटते नज़र नहीं आ रहे थे । उन की हल्की धुमड़न और बूदों की सरसराहट के अतिरिक्त कोई आवाज़ कहीं से नहीं आती थी । ऊपर काले कजरोर, धनघोर मेघ और नीचे भीगी, हल्की भूरी कीचड़ मिली में जगह जगह कूड़ा करकट और गोबर के सूखे कंडों से द्वीप और उन द्वीपों के ऊपर रेंगते हुए केंचुए गोबडोरे और मखमैली बीरबहूटियाँ । रह-रह कर आसमान में बादलों की गहरी भूरी, किन्तु टोक कर श्वेत लटें धुएँ-सी दौड़ जातीं और पानी की कड़ी बौछार होने लगती"[2] । विस्तार से इस प्रकार मौसम को प्रस्तुत कर के ग्रामीणों की प्रतिक्रिया की ओर इंगित करना तथा आँचलिक जीवन की भीतरी स्थिति का परिचय देना कहानीकार का वाँछित-लक्ष्य प्रतीत होता है ।

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 80.
2. वही पृष्ठ 63.

कुछ अंचलीय स्थानों का भी वर्णन कहानियों में विस्तार से दिया गया है। एक उदाहरण "कल्याणमन" नामक कहानी में यों दिया है - "इधर उधर, चारों ओर बैल और झरबेरी, झार-झंखाड़, बीच-बीच में शीशमनीम और कहीं कहीं इक्के-दुक्के आम के बड़े-बड़े पेड़ों से घिरे सोलह बीघे के इस तालाब को कल्याणमन कहते हैं। कुल एक-डेढ़ गज पानी ही ठहरता होगा, इस में, और वह थी जब तब साधारण हमवार खेत भी पानी में डूबे रहते हैं, वर्ना पानी आया और गया, फिर हर जगह एक-सा समतल, थिर और निर्मल जल। एक ओर भींट के पास नरई के हरे, शाखा विहीन, नुकीले इंठलों की बारात और दूसरी ओर सिंघाड़े के गहरे हरे और बीच में लाल धब्बों वाले सुहावने छत्ते। कोई दलवाला आँखें डाल दे, तो शोभा की इस अनबूझी वंशी में फँसे बिना न रहे"[1]।

"पान-फूल" का यह विवरण भी द्रष्टव्य है जहाँ मार्कण्डेय पूरी सहजता के साथ उपस्थित होते हैं - नीली ने बउली का घाट देखा मटियाहा-मटियाहा-सा और किनारे तक फफके पुरइन के पत्तों को भी, जिस पर जगह-जगह पानी की गोली मोती की आभा, सूरज की किरणों से कुछ सुनहली हो रही थी। कमल के फूल भी थे, पर सफेद नहीं, लाल-लाल और कुछ उदास उदास। सामने कनइल की डालियाँ पानी की सतह को चूम रही थीं, पर सब सुनसान और एकाकी......"[2] ग्रामीण मानसिकता को प्रकृति के अनुरूप गढ़ते हुए आँचलिक प्रभाव को बढ़ाया जाता है।

ग्रामीण व्यक्तिचित्रण आँचलिक कहानियों में होता है। लेकिन इस चित्रण में आँचलिकता बरतने का एक रचनात्मक उपक्रम भी होता है। यह शैली संबद्ध प्रवृत्ति नहीं है। उस के भीतर एक ग्रामीण मानसिकता भी वर्तमान है। "हंसा जाइ अकेला" कहानी के हंसा का चित्र यों प्रस्तुत है - "उसे लोग हंसा कहते हैं, काला-चिट्टा,

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 17. 2. पान फूल, पृष्ठ 54-55.

बहुत ही तगड़ा आदमी है । उस के भारी चेहरे में मटर-सी आँखें और आलू-सी नाक, उसके व्यक्तित्व के विस्तार को बहुत सीमित कर देती है । सीने पर उगे हुए बाल, किसी भीट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं । घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उस का पहनावा है । वैसे उस के पास एक दोहरा कुर्ता भी है, पर वह मौके-झोंके या ठारी के दिनों में ही निकालता है । कुर्त्ता पहन कर निकलने पर, गाँव के लड़के उसी तरह उस का पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखानेवाले मदारी का"[1] । उसी प्रकार गाँव के एक पालतू बैल के चित्रण में भी यही सादगी दिखाई गई है - "कैसी सवराई इस की पीठ पर, जैसे कोई मखमली बिछावन हो । लंबे-लंबे पतले सुडौल पैर, जैसे किसी साँचे में गढ़ कर निकले गये हों या किसी बड़े होशियार कारीगर ने बड़ी मेहनत से तराशा हो । यह भी तो कितना आल्हड़ था । यदि छुड़ा लेता तो कन्नो के पीछे-पीछे सारा गाँव घूम आता, बखरियों में धुस जाता"[2]।

देशज रीतियों का चित्रण

मार्कण्डेय ने अपनी कई कहानियों में गाँव की देशज स्थितियों का किंचित परामर्श किया है । "सोहगइला" कहानी में शादी के वक्त की ग्रामीण रीति का परामर्श मिलता है -" उस के दोनों निरीह, खुले हुए, नन्हें-नन्हें हाथों को पकड़ कर, उन में सोहगइला दबाते-दबाते, माँ की बरसाती नदी-सी आँखें किनारों को लाँघ कर वह चली थीं, "इन्हें छोड़ना नहीं । कुल परिवार की लाज का धियान रखना" । और माँ ने लाल ज़मीन छोटे-छोटे, पीले धब्बे वाली मोटी अँचरी-मनौरीदार सुहा के आँचल में टँके

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 65.
2. पान-फूल, पृष्ठ, 44.

घुँघरुओं वाले किनारे को थोड़ा नीचे खींच दिया।घूँघट से दुलहिन का मुँह ढँक गया। देह पहले से ही ढँकी थी। दिखाई पड़ रहे थे केवल वे दो नन्हें-नन्हें हाथ, जिन में लाल रंग का सोहगइला, गुलाब के लाल फूल की तरह कहक रहा था"[1]। लेकिन यह विवरण मात्र परामर्श नहीं है, बल्कि कहानी की पूरी स्थिति से सोहगइला का सांकेतिक संबन्ध है। गाँवों में बच्चों के बीच गुड़ियों की शादी कभी-कभी, बड़ी धूम-धूम से की जाती है। ऐसी एक शादी का वर्णन "पान-फूल" नामक कहानी में मिलता है - "एक दिन रीति ने कहा "नीली, तेरी गुड़िया और मेरे गुड्डे की शादी हो जाय। दिन निश्चित हो गया, जानकी, उस के पति, पारो और अन्य सैकड़ों लोग बाजे-गाजे से बाउली पर पहुँचे। खाना-पाना सब पहुँच गया और एक पालकी में गुड्डे-गुड्डे की डाल भी पहुँच गयी, ..."[2]। परिवार में बच्चे का जन्म होने पर सभी उपहार ले कर आया करते हैं,। इस का वर्णन "माई" कहानी में यों दिया है - "साथ में दस सेर जूनी दूध देनेवाली पहिलौं गाय, दो नौकरों के सिर पर बतासे का रंगा हुआ कुंड़ा और इक्यावन रुपये बच्चे की मुँह देखाई"[3]।

अपनी जान तक खतरे में डाल कर कुमार, पियारी को चेचक से बचाने केलिए तैयार होता है। महारानी वाले नीम की टहनी तोड़ने की बात का उल्लेख "नीम की टहनी" नामक कहानी में मिलता है - "जब वह कुमार पियारी के घर पहुँचा, तो नीम की एक टहनी उस के हाथ में थी। घर के लोग डर गये "किस नीम की टहनी है। कुमार ने महारानी वाली नीम की टहनी तो नहीं तोड़ी" ? पर वह कुछ नहीं बोला और धीरे धीरे नीम की पत्तियों से, पियारी की देह सहलाने

----

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 31.
2. पान-फूल, पृष्ठ 58, 60
3. भूदान, पृष्ठ 23.

लगा । कुछ देर बाद पियारी ने धीरे से आँखें खोलीं और झिपक कर फिर मूँद लीं । कुमार ने पुकारा, "पियारी" ?

और पियारी ने आँखें खोल दीं ।

टूटी हुई आवाज़ निकली, "तुम फिर आ गये

मना किया था न ! और यह नीम की टहनी

हाँ - महारानी वाली नीम की है पियारी ! तुम अच्छी हो जाओगी"!

"कुमार !" पियारी के मुंह से जैसे कोई कराह निकल पड़ी हो और उस की आँखें, किसी भयानक आशंका से बंद हो गयीं । हाँ, आँसू के बड़े-बड़े दो बूँदें उस की आँखों से निकल कर बिस्तर पर लुढ़क पड़े"[1] । ज़मीन के दुखपूर्ण अवसरों पर भी ग्रामीण व्यक्तियों के मन में ऐसी रीतियों के प्रति पूरी आस्था बनी रहती है, चाहे उस का फल अच्छा हो क्यों न हो । देशज रीतियाँ कभी कभी ऐसे विश्वासों में बदल जाती हैं कि उस का संबन्ध पूरे ग्रामीण जीवन के साथ रहता है ।

आचार विचार

आँचलिकता की उपस्थिति केलिए ग्रामीणों के ऐसे आचार विचारों तथा उन के अंधविश्वासों, अनुष्ठानों का जिक्र करना अनिवार्य होता है । गाँव के महारानीव नीम की टहनी तोड़नेवाला मर जायेगा-ऐसा एक अंधविश्वास गाँव भर में प्रबल है । उस के बारे में कुमार की माँ कुमार से कहती - "उस नीम की भी एक अजीब कहानी है । उसी साल की बात है, जिस साल तू पैदा हुआ था, और यह महराजिन बुआ भी अपने पति के साथ गाँव आयी थीं - महारानी वाली नीम की पूजा केलिए इस

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 40.

गाँव की चलन है कि लड़कियाँ शादी के बाद दूल्हे के साथ महारानी वाली नीम की पूजा करने आती है" । महाराजिन बुआ का पति बड़ा पढ़ा-लिखा था बेटा । उसे इस धरम-करम के ढकसले में विश्वास न था। बुआ ने उस से कह रक्खा था कि नीम की पत्तियाँ मत छूना, पर वह माना नहीं, और हँसते-हँसते एक टहनी तोड़ ही तो ली । गाँव की और बहुत-सी औरतें थीं - सब की आँखें टँग गयीं और बुआ तो वहीं रोने लगीं । लौट कर लड़के को जो ज़ोर का बुखार हुआ, तो महारानी ने उसे उठा ही लिया, और तभी से बुआ लगातार नीम की टहनियाँ तोड़ती रहीं और उन्हें कुछ न हुआ । हाँ अब वही टहनियाँ, जो बुआ तोड़ती है, मरते हुए लोगों के ऊपर से महरानी की छाया उठा ले जाती है"[1] । यहाँ एक साथ गाँव का आचार-लड़कियाँ शादी के बाद दूल्हे के साथ महरानी वाली नीम की पूजा करने आती-तथा साथ ही उस नीम के पेड़ से जुड़े अंधविश्वास, दोनों को एक साथ अंकित है । कहानी के अनेकानेक स्तरों के साथ इन दोनों का संबंध सीमातीत है ।

"भूदान" नामक कहानी में वनसत्ती को कड़ाही चढ़ाने के आचार और ऐसा न करने पर होनेवाले अनर्थ के बारे में बताया गया है - "रामजतन वनसत्ती के लहुरे चौरा पर प्रार्थना करता है जै वनसत्ती माई, तुम्हें कड़ाही चढ़ाएँगे माई, गरीब पर दया करो महरानी । जसवंती तुम्हें पियरी चढ़ाना न भूलेगी माई, इस साल भूल-चुक छिमा करो माई"[2] ।

"बादलों का टुकड़ा" कहानी में देवताओं के नाराज़ होने और उन को तृप्त करने के बारे में बताया हैं - "दो पैसे की धार-तपावन भी नहीं कि ड़िह बाबा को चढ़ा कर मनौती करूँ । जाने क्यों नाराज़ है देवता-दानी"[3] ।

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 37-38.
2. भूदान, पृष्ठ 54.
3. बीच के लोग, पृष्ठ 31.

"गनेशी" शीर्षक कहानी में भी एक अंधविश्वास का संकेत है - "उस दिन उस पुखा के हर घर में सूअर के मांस को एक बोटी पकी और बाद को अनायास ही इस गाँव का नाम सूअर-पारा पड़ गया । कहते हैं, आज भी कोई पुराना ब्राह्मण प्यासा होने पर भी इस गाँव में पानी नहीं पीता"[1] ।

लोकगीतों का प्रयोग

ऐसी बात नहीं है कि आँचलिक कहानियों के लिए लोकगीत अत्यंत आवश्यक है । पर वह आँचलिकता का एक पक्ष है । लोकगीतों की यही विशेषता है कि वह हमारी सांस्कृतिक अस्मिता का एक अभिन्न अंग है । इस अर्थ में ही लोकगीतों के प्रयोग को देखना चाहिए ।

मार्कण्डेय ने निम्न लिखित कहानियों में लोकगीतों का प्रयोग हुआ है । "हरामी के बच्चे" नामक कहानी में मल्लाहों के लोकगीत प्रयुक्त है -

"काहेन को तेरी न इया रे,
काहे को करूवारि ।
कहाँ तोरा नइया खेवइया,
के धन उतरई पार ।
घर में कै मोरी नइया रे,
सतकई लगी करूवारी ।
सैंया मेरा नइया खवइया रे,
हम धने उतरब पार । ......"[2]

---

1. बीच के लोग, पृष्ठ 83.
2. कटुए का पेड़, पृष्ठ 113.

अपनी प्रेमिका सुशील के आकस्मिक वियोग से पागल हंसा लोकगीत गाता - फिरता दिखाई देता है -

"जग बेल्हे मोलू बुलुम कहलू न नदो   जग
बरम्हा के मोहलू, बिसुनू के मोहलू
सिवजो के नचिया नचौलू मोरी न नदो ....जाग...:"[1]

लोकगीतों के उचित प्रयोग के बावजूद मार्कण्डेय में भी लोक संस्कृति बोध का नितांत अभाव है । किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी पात्र के मुँह से लोकगीत सुनवाने से कहानी की रचना दृष्टि में कोई गुणात्मक अन्तर उपस्थित होता नहीं है । लोकगीतों के रचे बसे संसार का कहानी की मूल दृष्टि से संबंध जब स्थापित होता है तभी लोकगीतों की प्रासंगिकता बढ़ती है । अन्यथा वह वातावरण सृजन तक का निर्वहण करता रह जाता है ।

मार्कण्डेय का रचना-संसार बहुधा ग्रामीण जीवन का सामाजिक पक्ष है । इसलिए तत्संबंधी आर्थिक और नैतिक विडंबनाओं का पक्ष उस में प्रबल है । कृषक जीवन की बहुत सारी समस्याओं का प्रक्षेपण उन की कहानियों में हुआ है । अत: ग्रामीण समाज शास्त्र को, विशेष रूप से कृषक जीवन का समाज शास्त्र को रचनात्मक स्तर उपलब्ध कराने का कार्य मार्कण्डेय के संदर्भ में महत्वपूर्ण योगदान है । आँचलिक उपन्यासों के संदर्भ में ही सही ग्रामीण समस्या के बारे में लिखते हुए मधुरेश ने सही बताया है - "सर्वग्रासी नैतिक स्खलन और राष्ट्रीय स्तरमूल विहीन राजनीति ने ग्राम जीवन की जटिलताओं को बढ़ाया है । ज़मीन्दारी की तथाकथित समाप्ति के बाद भी देश की स्वतंत्रता के प्रस्थान एक नयी तरह की ज़मीन्दारी कायम हुई है । जाति तथा वर्ग विद्वेष की भावना इस बीच जितनी तेज़ी से विकसित हुई है वह किसी के लिए

---

1. हंसा जाइ अकेला, पृष्ठ 75.

भी चिन्ता का कारण हो सकती है । देखते-देखते ही छोटी जोत के किसान, मज़दूर के स्तर पर उतर आए हैं और बड़ी जोत के किसान बाकायदा भू-स्वामी बनते गये हैं । साधन हीन सामान्य आदमी की असुरक्षा तेज़ी से बढ़ती गयी है । हमारे देखते-देखते आज़ादी की सारी फसल वे लोग काट और इकट्ठा कर रहे हैं जिन का उस आज़ादी केलिए कोई योगदान नहीं रहा"[1] । इस नैतिक पतन को बदलते ग्रामीण जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने का कार्य ही नहीं बल्कि उस संघर्ष के प्रति आत्मीयता भी मार्कण्डेय ने दिखाई है । इस प्रकार गाँवों के जीवन का एक पूरा नक्शा मार्कण्डेय ने अपनी इन रचनाओं में उतारा है । ग्रामीण जीवन बोध की ये रचनाएँ एक विशिष्ट अनुभव और लेखकीय सक्रियता के उदाहरण भी हैं ।

---

1. अक्षरा-5, "आँचलिकता बनाम लोक जीवन" शीर्षक मधुरेश के लेख से उद्धृत ।

अध्याय आठ

फणीश्वर नाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों का शिल्प विधान

अध्याय आठ

फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों का शिल्प विधान

नई कहानी : नए शिल्प की खोज

आंचलिक कहानी के शिल्प विधान पर विचार करने के पहले समान्यत: नई कहानी के शिल्प पर विचार करना उचित मालूम होता है । नई कहानी की मूल संवेदना जीवन के व्यापक परिवेश से जुड़ी हुई थी । जीवन मूल्यों के बदलाव के कारण रचना का पूरा संस्कार बदल रहा था । रचना के संस्कार का संबंध उस की अन्तर्बाह्य स्थितियों से है । शिल्प का भी संबंध उन तमाम अन्तर्बाह्य स्थितियों से है । जब हमें नई कहानी से नये पात्र मिलने लगे, उस के नये तौर-तरीके मिलने लगे, उन की नयी जीवन-स्थितियाँ प्राप्त होने लगीं तो उस बदले कहानी-परिवेश के साथ पूरे बदले हुए रचना-विधान का आभास भी होने लगा । कहानी का अन्तर्गठन जब बदलता है तो उस का प्रभाव बाह्यांकन में भी दिखाई पड़ने लगता है । यह इसलिए है कि शिल्प को कथ्य से अलग नहीं किया जा सकता । नई कहानी ने कथ्य सपेक्ष शिल्प को रूप दिया । कहानी के प्राविधिक संस्कार के इस बदलाव ने कहानी के माध्यम (मीडियम) संबंधी एक नई मान्यता को विकसित किया है ।

नई कहानी का शिल्प पुराने रूप बंधों का तिरस्कार करता है । कथानक संबंधी पुरानी मान्यता इसलिए नई कहानी में नहीं रही कि उस दौर तक आते-आते वह मान्यता ही लुप्त-प्राय हो चली थी । प्रथमत: कथानक को ही लें । कथानक शब्द की पुरानी मान्यता पर विस्तृत ढंग से विचार करें तो पुरानी कहानियों के शिल्प से ही नहीं बल्कि इस समय की आस्वादनीयता से भी हमारा परिचय हो जायेगा ।

कहानी के माध्यम संबंधी एक सुदृढ़ मान्यता की अनुपस्थिति भी इस शब्द में व्यंजित है । नई कहानी में कथानक का विघटन या कथा का जो ह्रास हुआ वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर कथानक की गति ही थी । यह उस के आकार को संक्षिप्त बनाने का कोई उपक्रम नहीं है । विघटन उस के अन्दरूनी स्तर पर हो गया था । "शिल्प विधि की दृष्टि से कथानक का भौतिक ह्रास कहानी कला का भौतिक उत्थान है, जहाँ कहानी अपने कथानक तत्व में बाह्य उपकरणों से आगे बढ़ कर आन्तरिक उपकरणों तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्वों को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाती चलती है"[1] । कहानी के कथानक का दिशा-संकेत पूर्णतः संश्लिष्ट बन गया । नामवर सिंह इसे कथा का ह्रास मानते हैं - "कहानी में जो चीज़ पहले कथानक नाम से जानी जाती थी, उस में कहीं न कहीं मौलिक परिवर्तन हुआ है । इसे यों भी कह सकते हैं कि कथानक की धारणा, कन्सेप्ट बदल गई है । आज घटना संघटन इतना विघटित हो गया कि लोगों को अधिकांश कहानियों में "कथानक" नाम की चीज़ मिलती ही नहीं । इसी को लोग कथानक का ह्रास कहते हैं । परन्तु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं बल्कि कथा का हुआ है और जीवन का लघु प्रसंग, खंड़, विचार अथवा विशि व्यक्ति चरित्र ही कथानक बन गया है, अथवा उस में कथानक की क्षमता मान ली गयी है."[2] । यह मात्र कथा के रूपविधान पर आया हुआ परिवर्तन नहीं है । हमारी रागात्मक प्रणालियों में आए परिवर्तन के कारण मूल दृष्टि में अंतर आया हुआ है । अनेक स्वीकृत परिभाषायें अब बदल गयी हैं और जीवन की अनेक परिस्थितियाँ अपरिभाषेय बन गई हैं । इस अवस्था में रचनात्मक रूपों का अपरिवर्तित दृष्टि पाना कठिन प्रतीत होता है । नई कहानी में दर्शित इस शैल्पिक परिवर्तन को इसी दृष्टि से देखना समीचीन लगता है ।

---

1. हिन्दी कहानी की शिल्प-विधि का विकास - डा. लक्ष्मी नारायण लाल, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 369.
2. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 20-21.

नई कहानी ने जीवन यथार्थ को उस तरह ही आत्मसात किया जिस तरह आत्मसात किया जाना चाहिए । आदर्शों के घटाटोपों से मुक्त हो कर जब जीवन को देखा गया तो वह इतना संश्लिष्ट था कि उसे प्रस्तुत करते समय विस्तृत घटना-संदर्भों या कार्यक्रमों केलिए कोई गुंजाइश नहीं रह गयी थी ।

परिवेश की संकीर्णता के अनुरूप ही नई कहानी के शिल्प में भी काफ़ी परिवर्तन हुए जो कहानी के बाह्य रूप को परिवर्तित करने के साथ साथ आन्तरिक स्थिति को भी परिवर्तित करने में सक्षम रहे हैं ; उदाहरणार्थ नई कहानी की सांकेतिकता को लें । नामवर सिंह ने यहाँ तक लिखा कि नई कहानी संकेत नहीं करती बल्कि संकेत है[1] । सांकेतिकता के बारे में मोहन राकेश ने विस्तार से लिखा है । उन के अनुसार सांकेतिकता रूपात्मक प्रयोग नहीं है - आज की हिन्दी कहानी के अन्तर्गत सांकेतिकता का विकास विभिन्न स्तरों पर हुआ है । कहानीकार बिम्बों के माध्यम से एक भाव या विचार को सफलतापूर्वक तभी व्यक्त कर सकता है जब वे बिम्ब यथार्थ की रूपाकृतियों से भिन्न न हों - उन के संघटन में जीवन के यथार्थ को पहचाना जा सके । कहानी की सहज सांकेतिकता रूपात्मक सांकेतिकता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । कहानी का वास्तविक संकेत कहानी की सहज गठन से स्वतः उभर आता है"[2] । अति संकीर्णता जीवन यथार्थ के अनुरूप ही नई कहानी ने ऐसे शिल्पागत संकेतों को अपनाया है ।

नई कहानी के दौर की अधिकतर रचनाओं में प्रथम पुरुष "मैं" का प्रयोग हुआ है । प्रेमचन्दोत्तर युग से ही यह प्रवृत्ति शुरू हो गयी है । यह कथ्य सापेक्ष शिल्प परिवर्तन है । व्यक्ति और परिवेश की पारस्परिकता को अधिक सघन बनाने केलिए इस शैल्पिक प्रयोग का महत्व है ।

---

1. कहानी: नयी कहानी - नामवर सिंह, पृष्ठ 42.
2. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति - सं. देवी शंकर अवस्थी, लेख कहानी नये संदर्भों की खोज-मोहन राकेश, प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ 93.

नई कहानी की संवेदना की बदलती हुई अवस्था अवश्य ही नए कहानीकारों के बदलते हुए जीवन दृष्टिकोण का परिणाम है । उन की रचना प्रक्रिया की नई आकांक्षाओं और संदर्भों में व्यक्त करने केलिए उन्हें नये शिल्प की भी आवश्यकता थी । अगर नये कहानीकारों ने शिल्प में नवीनता दर्शाई है तो उस के पीछे आधुनिक अवबोध की ही आकांक्षा विद्यमान है ।

नई कहानी के शिल्प के क्षेत्र में दिखाई पड़नेवाली नवीनता आंचलिक कहानियों के शिल्प के स्तर पर दर्शित नहीं है । आंचलिक कहानियों में कहानीकार यथार्थवादी ढ़ंग से अपने परिचित अंचलों को ही प्रस्तुत करते हैं । जैसे फणीश्वरनाथ रेणु ने बिहार के पूर्णिया का, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय तथा राजेन्द्र अवस्थी ने पूर्वांचल का और शैलेश मटियानी ने अल्मोड़ा के जनजीवन का, अपनी कहानियों में विशेष रूप से उल्लेख किया है । आंचलिक कहानीकारों ने कहानी के शिल्प पर अधिक जागरूकता नहीं दिखाई है । क्योंकि इस का प्रमुख कारण उन की अधिकांश कहानियाँ वर्णनात्मक हैं ।

<u>यथार्थवादी शिल्प</u>

प्राय: सभी आंचलिक कहानियाँ यथार्थवादी हैं । आंचलिक कहानीकारों की मूल दृष्टि ग्रामीण यथार्थ को उभारने की रही है । इसलिए अपनी कहानियों के लिए आंचलिक कहानीकारों ने यथार्थवादी शिल्प को अपनाया है । इस शिल्प विधान की सर्वप्रमुख रीति उस की विवरणात्मकता है । इस संदर्भ में एक प्रश्न उठ सकता है कि प्रेमचंद की कहानियों की तुलना में आंचलिक कहानियों की शिल्पगत विशेषता क्या है अगर वह यथार्थवादी और विवरणात्मक है तो किस दृष्टि से वह प्रेमचंदकालीन रचनाओं से अलग है ? यह अवश्य है, आंचलिक कहानियों में कथानक का ह्रास नहीं हुआ है । कथानक को सपाट ढ़ंग से आंचलिक कहानियों में अवतरित किया गया है ।

लेकिन उसे चरम विकास की ओर ले चलने की प्रक्रिया आँचलिक कहानियों में नहीं है । विवरणात्मक शिल्प की स्थूलता और शिथिलता ~~से~~ आँचलिक कहानियों में नहीं है ।

आँचलिक कहानियों के यथार्थवादी शिल्प में विवरणात्मक पक्ष एक टम अनिवार्य-सा है । क्योंकि इन में कहानीकार अपने इच्छित अंचल को प्रस्तुत करते हैं । प्रस्तुति में अंचल से संबंधित छोटे-मोटे प्रसंगों से ले कर छोटी-बड़ी घटनाओं तक या अनेक रीतियों का चित्रण होता है । अन्यथा ग्रामीण प्रतीति प्रदान करने में ये कहानीकार असफल हो सकते हैं । इस कारण से ग्रामीण जीवन और उस की अनुभूतियों की गहराइयों में उतरने और लोकचेतना को विकसित करने केलिए अंचलों की प्रस्तुति होती है । कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

"तीसरी कसम" रेणु की सर्वाधिक चर्चित कहानी है । इस में रेणु ने कहानी के प्रमुख पात्र को अवतरित कर के आँचलिक स्थिति को बनाये रखने का कार्य किया है । गाड़ीवानों की जिन्दगी के पहलू को दर्शाना ही इस कहानी के उक्त प्रकरण का लक्ष्य नहीं है । बल्कि एक ग्रामीण मानसिकता को केन्द्रित करने का उपक्रम इस में निहित है । इसलिए रेणु ने यथार्थवादी शिल्प का सहारा ले कर उसे प्रस्तुत किया है -

"हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है । पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हिरामन । बैलगाड़ी । सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है । कण्ट्रोल के ज़माने में चोरबाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है । लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में । कण्ट्रोल का जमाना । हिरामन कभी भूल सकता है उस जमाने को । एक बार चार खेप सीमेण्ट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबनी से विराट नगर पहुँचाने के बाद हिरामन का कलेजा पोख्ता हो गया था । फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी

उस को पक्का गाड़ीवान मानता है । उस के बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी खुद करते, अपनी भाषा में । गाड़ी पकड़ी गयी पाँचवीं बार सीमा के इस पार तराई में ।

महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की-मुक्की लगा कर छिपा हुआ था । दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लम्बी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज़ होती है, हिरामन जानता है । एक घण्टे केलिए आदमी अंधा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाये आँखों पर । रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज़ - "ऐ-य ! गाड़ी रोको ! साले, गोली मार देंगे !

"पंचलाइट" नामक कहानी में भी इसी प्रकार गाँव को रेणु ने प्रस्तुत किया है । उस संदर्भ में भी उन्हें यथार्थवादी विवरण का आश्रय लेना पड़ा है । उक्त कहानी में यह प्रकरण दृष्टव्य है - "पिछले पन्द्रह महीने से दंड जुरमाने के पैसे जमा कर के महतो टोली के पंचो नेपेट्रोमाक्स खरीदा है इस बार, रामनवमी के मेले में । गाँव में सब मिल कर आठ पंचायतें हैं । हरेक जाति की अलग-अलग "सभाचट्टी" है । सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, सतरंजी और पेट्रोमेक्स है - पेट्रोमेक्स, जिसे गाँववाले पंचलाइट कहते हैं ।

पंचलाइट खरीदने के बाद पंचों ने मेले में ही तय किया - दस रुपये जो बच गये हैं, इस से पूजा की सामग्री खरीद ली जाये - बिना नेम-टेम के कलकब्जेवाली चीज़ का पुन्याह नहीं करना चाहिए । अँग्रेज़-बहादुर के राज में भी पुल बनाने से पहले बलि दी जाती थी ।

मेले से सभी पंच दिन-दहाडे ही गाँव लौटे; सब से आगे पंचायत का छडीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर ले कर और उस के पीछे सरदार दीवान और पंच वगैरह । गाँव के बाहर ही ब्राह्मणटोले के फुटंगी झा ने टोक दिया - "कितने में लालटेन खरीद हुआ महतो" ?

"देखते नहीं हैं, पंचलाइट है । बामनटोली के लोग ऐसो ही ताब करते हैं । अपने घर की ढ़िबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलैट को लालटेन" ।

टोले-भर के लोग जमा हो गये । औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सभी काम-काज छोड़ कर दौड़े आये, "चल रे चल ! अपना पंचलैट आया है, पंचलैट !"[1]

"सिर पंचमी का सगुन" कृषक जीवन से संबंधित है । छोटे किसानों की समस्या का विशेष उल्लेख उस कहानी में हुआ है । साथ ही साथ कृषकों के एक विशेष पर्व का भी उल्लेख है । यह रेणु की रचनात्मकता की विशेषता है जहाँ उन्हें एक समस्या को प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है तो सिर्फ समस्या का चित्र तक सीमित नहीं होते बल्कि कृषक जीवन की आस्था को उन्होंने साथ मिलाया है । अत: "सिर पंचमी का सगुन" संघर्ष की भी कहानी है, आस्था की भी । लेकिन जैसे बताया गया है, रचना बिधान की यथार्थ वादिता और विवरण की अनिवार्यता ऐसी कहानियों केलिए बहुत ही आवश्यक है । ऐसे प्रसंगों को अवतरित कर के कहानीकार अपनी रचनादृष्टि विकसित तो करते हैं, पर उस का स्वरूप निपट विवरणात्मक है - "सिरपंचमी के दिन सभी किसान बहुत नेक-टेम कर के जाते हैं तुहरसार में बाँस की नयी टोकरी में एक पसेरी धान, दूब और पान-सुपारी के साथ हल का फाल, खुरपी और हँसिया ले कर पहुँचते हैं । नये साल की खेती केलिए सिरपंचमी को ही हल खड़ा किया जाता है ।

कालू कमार आस-पास के दस-बारह टोले का हल-फाल कमाता है । उसके दोनों जवान लड़के आरा-वसूली-रुखान ले कर लकड़ी का काम करते हैं, हल-हरेस-जुआ आदि केलिए लकड़ी छीलते हैं । धौंकनी, निहाई और हथौड़े से कालू कमार लोहे का छोटा-मोटा काम करता है ; फाल, खुरपी और हँसिया बनाता । गाँव के चार पाँच हल जोतनेवाले किसानों से अच्छी अवस्था है कालू कमार की । बड़े-बड़े किसान

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 78.

भी बेर-बखत पड़ने पर उस से कर्ज ले जाते हैं, कागज़ बनाकर । लेकिन बाकी खैन वसूलने का यही एक जातीय तरीका है सिरपंचमी के दिन का फाल टेढ़ा कर दो । सारी दुनिया रिरियाता फिरेगा फाल सीधा कराने केलिए ।

सिरपंचमी के दिन सभी किसान अपने-अपने सगुन की ही बात सोचते हैं । उस दिन किसी से बेकार रार न हो, किसी को नज़र न लग जाये, कोई छींक न दे । लुहरसार से लौट कर बैलों को नहला कर सींग में तेल लगाया जाता है । हल के हरेस पर चावल के आटे की सफेदी की जाती है । औरतें उस पर सिन्दूर से माँ लक्ष्मी के दोनों पैरों की उँगलियाँ अंकित करती हैं । गाँव से बाहर परती जमीन पर गाँव भर के किसान अपने हल-बैल और बाल-बच्चों के साथ जमा होते हैं । नयी खुरपी से सवा हाथ जमीन छील कर केले के पत्ते पर अक्षत-दूध और केले का मोती-प्रसाद चढ़ाया जाता है । धूप-दीप देने के बाद हल में बैलों को जोत कर पूजा के स्थान से जुताई का श्रीगणेश किया जाता है । फाल की रेफ पूजा के बीच में पड़े, इस का खयाल सभी किसान रखते हैं । अपने-अपने हलवाहों को सचेत कर देते हैं - बाये-बाये, ज़रा दाहिने पाँच चक्कट दक्षिण से उत्तर और पाँच पूर्व से पश्चिम । जुताई के समय जिस का बैल मल-मूत्र त्याग करे, उस को खाद पानी की कमी नहीं होगी इस साल की खेती में । आज जिस का बैल बैठ गया या जुए से खुल गया - उस की खेती के मालिक सीताराम । छोटे-छोटे बच्चे भी सतर्क हो कर अपने बैलों को देखते रहते हैं - "बाबा देखो, देखो, अपना गोला बैल क्या कर रहा है" । तालियाँ बजा कर नाचते हैं - सब से पहले हमारा बैल ।"[1]

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 85-86.

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का रचना विधान भी यथार्थवादी है । उनकी कई कहानियों में ग्रामांकन के अनेक परिदृश्य प्राप्त होते हैं । "ताड़ीघाट का पुल" नामक उन की कहानी में कहानी के पात्र तिलक की मानसिकता को उभारने के एक तरीके के रूप में ही उन्होंने यह ग्रामीण चित्र प्रस्तुत किया है । लेकिन वह अंग इस आँचलिक कहानी की अनिवार्य शैल्पिक स्थिति भी है - "ताड़ीघाट नाम जिस के भी रखा हो, काफ़ी सोचकर रखा था । क्योंकि गंगा के कगार पर पूरब मुँह कर के खड़े हो, तो दाहिनी तरफ़ आप को ताड़ के पेड़ों की एक पूरी कतार दिखाई पड़ेगी, जिसे लगता है किसी ने हरी जमीन पर सीधे रूल से हाशिया खींच कर बिठा दिया है । एक तरतीब से बराबर दूरी पर जमीन की छोटी-बड़ी इच्छायें मानों सिर उठा-उठा कर आसमान से बात कर रही हो । बायीं ओर गंगा पूरे कगार को अपने इठलाते शरीर से रोमांचित करती हुई खिलखिलाती रहती है जिस के दूधिया वक्ष में इक्के-दुक्के पेड़ों की छाया शीर्षासन करती प्रतीत होती है । सामने गाजीपुर का शहर है उस पार, जहाँ घाटों पर माल और मुसाफिरों से लदी नावें अपने नुकीले मुँह को लहरों के थपेड़ों में यों हिलाती रहती हैं जैसे अनगिनत सूरत धारा में कलाबाजियाँ खेल रहे हैं । अब इन दोनों घाटों को जोड़ने के लिए पीपे का पुल बिठा दिया गया है जिस के काले-काले पुश्ते पानी पर जमनापारी भैंसों की तरह तैरते रहते हैं और उन की पीठ से करीब दो राज चौड़ी सड़क उस भूरे अजगर की तरह पड़ी रहती है जो गरमी की वजह से बहुत परेशान हो जाता है और जिस की करम-गरम तपती साँसें पानी की सतह पर बीन की गों-गों आवाज़ कर का जाल फैलाती है और उस के मुँह से निकला ढेर-सा झाग किनारों पर वैशाखी धान और पूजा के लिए निवेदित फूलों को अपनी गोद में भरे रुई के गाले की तरह मटक-मटक कर सिर हिलाया करता है".[1]

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 2-3.

शिवप्रसाद सिंह की सर्वाधिक चर्चित कहानी "दादी माँ" से भी एक उदाहरण देखा जा सकता है । प्रस्तुत कहानी का प्रारंभिक प्रकरण पात्र और परिवेश की पारस्परिकता को अत्यंत सादगी के साथ दर्शाया गया है । "मुझे लगता है जैसे क्वार के दिन आ गये हैं । मेरे गाँव के चारों ओर पानी ही पानी हिलोरें ले रहा है । दूर के सिवान से बह कर आये हुए मोथा और साईं की अधगली घासें, घेऊर और वन-प्याज की जड़ें तथा नाना प्रकार की बरसाती घासों के बीज, सूरज की गर्मी में खौलते हुए पानी में सड़ कर एक विचित्र गन्ध छोड़ रहे हैं । रास्तों के कीचड़ सूख गये हैं और गाँव के लड़के किनारे पर झाग भरे जलाशयों में धमाके से कूद रहे हैं । अपने-अपने मौसम की अपनी-अपनी बातें होती हैं । आषाढ़ में आम और जामुन न मिले, चिन्ता नहीं, अगहन में चिउड़ा और गुड़ न मिले, दुख नहीं, चैत के दिनों में लाई के साथ गुड़ की पट्टी न मिले, अफसोस नहीं, पर क्वार के दिनों में इस गन्धपूर्ण झाग भरे जल में कूदना न हो तो बड़ा बुरा मालूम होता है । मैं भीतर हुडक रहा था । दो-एक ही दिन ही कूद सका था, नहा-धोकर बीमार हो गया । हल्की बीमारी न जाने मुझे अच्छी लगती है । थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो, सर में साधारण दर्द और खाने केलिए दिन-भर नींबू और साबू । लेकिन उस बार ऐसी चीज़ नहीं थी। ज्वार जो चढ़ा तो चढ़ता ही गया । रज़ाई पर रज़ाई - और उतरा रात बारह बजे के बाद । दिन में मैं चादर लपेटे सोया था । दादी माँ आयी, शायद नहाकर आयी थी, उसी झाग वाले जल में । पतले-दुबले स्नेह सने शरीर पर सफेद किनरी-हीन धोती, सन से सफेद बालों के सिरों पर सद्य: टपके हुए जल की शीतलता । आते ही उन्होंने सर, हाथ, पेट छुये । बहुत ही धीरे से बुदबुदाकर कुछ बोली, शायद किसी देवी-देवता को जान के बदले जान देने की मिन्नत रही हो । फिर आँचल की गाँठ खोल किसी अदृश्य शक्तिधारी के चबूतरे की मिट्टी मुँह में डाली, माथे पर लगायी ।

दिन-रात चारपाई के पास बैठी रहती, कभी पंखा झलती, कभी जलते हुए हाथ पैर कपड़े से सहलाती, सर पर दाल चीनी का लेप करती, और बीसों बार सर छू-छू कर ज्वर का अनुमान करती। नयी हाँड़ी में पानी आया कि नहीं ? उसे पीपल की छाल से छोंका कि नहीं ? खिड़की में मूँग की दाल एक दम मिल तो गयी कोई बीमार के घर में सीधे बाहर से आकर तो नहीं चला गया, आदि लाखों प्रश्न पूछ-पूछ कर घरवालों को परेशान कर देतीं। दादी माँ को गँवई-गाँव की पचासों किस्म की दवाओं के नाम याद थे। गाँव में कोई बीमार होता उस के पास पहुँचती और वहाँ भी वही काम। हाथ छूना, माथा छूना, पेट छूना। फिर नज़र, टोना, भूत से ले कर मलेरिया, सरसाम, निमोनियाँ तक का अनुमान वे विश्वास के साथ सुनातीं। महामारी और विशूचिका के दिनों में रोज़ सबेरे उठ कर, स्नान के बाद, लवंग और गुड़ मिश्रित जल धार, गुग्गुल और धूप, टोना टटका और सफाई कोई उन से सीख ले। दवा में देर होती, मिश्री या शहर खतम हो जाता, चादर या गिलास नहीं बदले जाते, तो वे जैसे पागल ही जातीं। बुखार तो मुझे अब भी आता है। नौकर पानी दे जाता है, मेस महाराज अपने मन से पका कर खिचड़ी या साबू। डाक्टर साहब आ कर नाड़ी देख जाते हैं, और कुनैन मिक्सचर की शीशी की तिताई के डर से बुखार भाग भी जाता है, पर न जाने क्यों ऐसे बुखार को बुलाने का जी नहीं होता"[1]।

मार्कण्डेय की कहानियाँ उन की प्रखर सामजिक दृष्टि केलिए प्रसिद्ध हैं। उन की दृष्टि आरंभ से यथार्थवादी ही रही है। कृषक जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करते समय ग्रामीण जीवन के गतिशील चित्रों को भी उन्होंने प्रस्तुत किया है। अर्थात् गाँवों की विवरणात्मक प्रस्तुति के अवसर पर वे अपनी कारीगरी दिखाते है। "भूदान" एक किसान-संघर्ष की कहानी है। मार्कण्डेय ने उस कहानी में यथार्थवादी शिल्प का परिचय दिया है। भूदान का यह उदाहरण इस संदर्भ में द्रष्टव्य है -

---

आर-पार की माला, पृष्ठ 40-42.

"बेर लटके दो घड़ी बीत गयी, इसलिए रामजतन के पाँव घर के रास्ते पर जल्दी-जल्दी बढ़ रहे है । मन में एक अजीब खुशी है, जो रह-रह कर अगल-बगल के खेतों में लहलहाते, चैतो के उमड़ते सागर-से पौधों में खो जाती है और वह फिर उसे ढूँढ़ता है, जो कड़ा करता है और अपने दाहने हाथ में लटकती लंबी लौकी और कंधे पर झूकती खटाई और दाल की पोटली तौलता है पर तभी किसी भड़भाँड़ के हरे काँटे या बेरें की हरी गाछ से चोट खा कर उसे जसवंती का खयाल है । आता है और वह सोचने लगता है, - जाने क्या कहेगी, जब ठाकुर की बात माननी ही थी, तो जैसे तीन, वैसे तेरह । न आज सही कल जवाब दे देता । कोई हर खड़ा था मेरी हाँ कहे बिना-पर क्षण ही भर बाद उस का पौरूष उसे ललकारता और एक झटके के साथ वह सोचने लगता - आखिर है जात औरत की ही न । दूर की बात का उसे क्या पता ? कल जहाँन कहाँ-सेकहाँ जानेवाला है, वह क्या जाने । दुनिया पलटा न खा गयी होती तो जिस धरती केलिए महाभारत हो गया, उसी धरती को लोग हँस-हँस कर दान कर देते और वह भी उस लँगोटी वाले संत को, जिस का अपना न घर, न दुवार । लोग कहते हैं, गाँधी जी का धरम बेटवा है   तभी तो, तभी   रामजतन पुलकित हो उठता और उस तराई की हरियर, कचर सिवान में बहता चला जाता"[1] ।

मार्कण्डेय ने आँचलिक कहानियों के यथार्थवादी शिल्प के संबंध में सही लिखा है - "चेतना के जिस नवीन स्तर पर नये लेखकों ने वास्तविकता को ग्रहण किया है, उसी स्तर के अनुरूप शिल्प तथा "स्ट्रक्चर" की बुनावट उन्होंने स्वीकार की है । सिर्फ कथावस्तु ही नहीं, वातावरण, शब्द और संकेत सभी से उन्होंने उस नयी वास्तविकता को अलंकृत किया है । कथा का यह सहज, मानवीयरूपान्तर उसे दिनों दिन जीवन (जैसा वह है) के सहज खंड बना देने की ओर है ।(शिल्पगत संस्कारों के

---

1. भूदान, पृष्ठ 53-54

अभाव में कई लोग इसे "फ्लैट" समझते हैं और अस्वाभाविक परिश्रम साध्य बुनावट में गहराई देते हैं।) हिन्दी कहानी के यह नयी ग्रहण शीलता ही नया मोड़ है और जिस लेखक ने जितनी ही सजगता से इसे पकड़ा है, वह उतना ही सफल है"[1]। इस कथन में मार्कण्डेय ने जिस ग्रहणशीलता और सजगता की बात उठाई है वह इस शिल्प की प्रासंगिकता को बढ़ाती है। मार्कण्डेय की कहानी "बीच के लोग" कृषक जीवन के संघर्ष की कहानी है। जब उन्होंने इस संघर्ष से संबंधित कुछ चित्रों को जिस बारीकी के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया है वह आँचलिक कहानी के यथार्थवादी शिल्प केलिए एक सामान्य उदाहरण ही नहीं है बल्कि कहानीकार के आत्मसमर्पण केलिए भी दृष्टव्य है। "इस घटना के बाद दूसरा सबेरा देखने केलिए अभी गाँव पुआल और कथारियों में आँख मूँदे, सिकुड़ा पड़ा ही था कि दौड़-भाग और शोरगुल के कारण चौतरफा एक नयी गर्मी दौड़ गयी। बुझावन अपने आलू वाले खेत को उलट कर उस में ब्याज लगाने केलिए हर चलाने जा रहा था और हरदयाल उसे रोक कर खुद खेत जोत लेने केलिए हल साज रहा था। वर्षों बाद बात ऊपर आ गयी थी और अब आमने-सामने हुआ चाहती थी। इस में क्या कुछ हो जाए, कहना मुश्किल है। बचवा दौड़ा हुआ आया, कोठे पर टँगी बन्दूक उतार, जेब में कारतूस भर, सीढ़ी से नीचे उतर रहा था कि बहू उसे पकड़ कर झूल गयी "हमें मार कर ही बन्दूक घर से जाई। नहीं मानोगे तो चिल्लाकर बाबू को जगा दूँगी"। वह दबे कंठ से धीरे-धीरे बोल रही थी और बचवा उसे धीरे-धीरे समझा रहा था, "देखो शोर न मचाओ, मैं चलाऊँगा नहीं, जाने दो"। लेकिन वह एक भी मानने को तैयार न थी और झगड़ा बढ़ता जा रहा था। बचवा संकोच में था कि कहीं बाबू जग न जोयें, इसलिए उस ने क्रोध में आखिरी चेतावनी दी, "नही मानोगी, नहीं मानोगी"।

---

1. भूदान, भूमिका पृष्ठ 14.

"नहीं, नहीं, नहीं" और उस की आवाज़ सहसा एक चीख में बदल गयी बचवा ने बन्दूक के साथ उसे पीछे झोंक दिया था और वह बीच आँगन में पड़ी कराह रही थी । दादा और बुचिया हड़बड़ा कर बाहर आये तो उन्हें कुछ समझ में ही नहीं आया । बहू बीच आँगन में पड़ी कराह रही थी और उस के हाथों में बन्दूक का कुन्दा कस कर भिंचा हुआ था । बुंचिया माई - माईऽऽ कह कर रो रही थी । बाबा उस के हाथ से बन्दूक लेने की कोशिश करने लगे, "आखिर है का ई सब भगवान । इतने सबेरे बन्दूक की का ज़रूरत पड़ी । कहीं बहू ने कुछ करतो नहीं लिया" । उन्होंने बैठ कर बहू की साँस का अन्दाज़ किया, फिर उस के माथे पर पानी के छींटे मारे तो वह उठ कर बैठ गयी"[1] ।

इस प्रकार के उदाहरण इन तीन कहानीकारों की बहुत सारी रचनाओं में मिल जाते हैं । विवरणात्मक प्रसंगों के माध्यम से ही कहानीकारों ने अपनी लोक-दृष्टि का परिचय दिया है । इन यथार्थवादी प्रसंगों में घटनाओं को जीवन्त बनाने का उपक्रम भी शामिल है । इस प्रकार आँचलिक कहानियों का यथार्थवादी शिल्प लोकदृष्टि को विकसित करने का कार्य भी करता है, साथ ही साथ लोकजीवन को जीवन्त बनाने का कार्य भी करता है ।

यथार्थवादी शिल्प आँचलिक रचनाओं केलिए अनिवार्य भी है । आँचलिक रचनाओं में स्थानिक आयाम का महत्व है । औपन्यासिक आँचलिकता पर विचार करते हुए डा.इन्दुप्रकाश पांडेय ने आँचलिकता की इस शिल्प प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया है । यद्यपि उन्होंने इस बात को उपन्यासों के माध्यम से विश्लेषित किया है, फिर भी उक्त विश्लेषण कहानी केलिए भी प्रासंगिक लगता है । औपन्यासिक आँचलिकता कथा के कालिक (टेम्पोरल) विकास को बाधित कर उसे स्थानीय (स्पेशयल)

---

1. बीच के लोग पृष्ठ 57-58.

आयाम में फैलाती है । ऐसी स्थिति में आँचलिक उपन्यास को स्थानीय सीमाओं का निर्धारण करना पड़ता है । अर्थात् लेखक केलिए कार्यव्यापार में स्थान का भौगोलिक निर्देश और निरूपण अनिवार्यतः आवश्यक हो जाता है और वह इस निश्चित भौगोलिक स्थान का विशिष्टीकरण करता है।[1] । बाह्य विवरणों का कथा के साथ तादात्म्य इसी प्रकार हो जाता है । इस कारण से आँचलिक कहानियों में भी स्थानीयता का अंकन एक आवश्यक अंग होता है । अतः आँचलिक कहानी के शिल्प के इस विवरणात्मक स्थानीय आयाम का अलग महत्व है ।

<u>संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प</u>

आँचलिक कहानियों की यथार्थवादी शिल्प विधान के बावजूद कुछ कहानियों में यही रचनाविधान संश्लिष्ट ढंग से प्रस्तुत हुआ है । यथार्थ की इस संश्लिष्टता का संबंध जीवन के कुछ गहन पक्षों से है । "कुछ चालू नुस्खे और फार्मूले के जरिए ज़िन्दगी को स्याह और सफेद में बाँट कर के तुरन्त फैसला कर देनेवाले लोगों की अपेक्षा ज़िन्दगी के गहरे सवालों के बारे में यदि कोई आदमी यह दृष्टि देता है तो मैं समझता हूँ कि एक सार्थक रचना की सृष्टि तो करता ही है, संश्लिष्ट यथार्थ की वयस्क दृष्टि का भी परिचय देता है।[2] । नामवर सिंह के इस कथन से यह स्पष्ट होता है संश्लिष्ट-यथार्थ का संबंध जीवन की गहराई से ही, नकि सपाटता से ।

लेकिन जिन कहानियों में संश्लिष्ट यथार्थ वादी शिल्प को अपनाया गया है उन में विवरणात्मक प्रसंग भी प्राप्त होते हैं । परन्तु उसके साथ-साथ कुछ ऐसे क्षणों का अनावरण भी होता है जो कहानी को संश्लिष्ट अंचलिक रचना बनाता है । इस रचना-शिल्प के अन्तर्गत कुछ कहानियाँ विचारणीय हैं ।

---

1. विश्वभारती पत्रिका - मार्च-अप्रैल 1987. डा.इन्द्रप्रकाश पांडेय का लेख - औपन्यासिक आँचलिकता से उद्धृत, पृष्ठ 125.
2. कहानी: आज की कहानी, पहल पुस्तिका-7 डा.नामवर सिंह से सुरेश पाण्डेय का साक्षात्कार, प्रथम संस्करण 1985, पृष्ठ 27.

रेणु की "रसप्रिया" में एक आंचलिक मिथक का विकास दृष्टिगोचर होता है । कहानी के पात्र पंचकौड़ी मृदंगिया की जीवन कामना और उस की वास्तविकता के बीच में यह मिथक इस प्रकार विकसित हुआ है कि कहानी की संश्लिष्टता उस के पूरे रचना विधान में व्याप्त है । प्रस्तुत कहानी में जिस प्रकार एक अंधविश्वास को समेट लिया गया है और जिस प्रकार उस के माध्यम से मिथकीय प्रतीक उभरा है, इन सब के बीच में पंचकौड़ी और रमपतिया का जीवन जिस प्रकार लुढ़कता-फिसलता जाता है, समाम प्रसंगों में संश्लिष्ट यथार्थ का रचना विधान प्रमुख हो उठा है । यथार्थवादी शिल्प को संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प के रूप में रेणु ने अतिशय सूक्ष्मता के साथ परिवर्तित किया है । इस केलिए कहानी का यह प्रकरण द्रष्टव्य है - "मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी ऊँगली को हिलाते हुए एक लंबी साँस ली । रमपतिया ? जोधन गुरुजी की बेटी रमपतिया । जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मंडली में शामिल हुआ था - रमपतिया बारहवें में पाँव रख रही थी । बाल-विधवा रमपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी । काम करते-करते वह गुनगुनाती - "नव अनुरागिनी राधा, किछु नँहिमानय बाधा" । मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजात पंचकौड़ी से रमपतिया के चुमौना की बात चलायी तो मिरदंगिया सभी ताल-मात्रा भूल गया । जोधन गुरुजी से उस ने अपनी जाति छिपा रखी थी । रमपतिया से उस ने झूठा परेम किया था । गुरुजी की मंडली छोड़ कर वह रातों-रात भाग गया । उस ने गाँव आकर अपनी मंडली बनायी, लड़कों को सिखाया-पढ़ाया और कमाने-खाने लगा । लेकिन, वह मूलगैन नहीं हो सका कभी । मिरदंगिया ही रहा सब दिन । जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद, एक बार गुलाब-बाग मेले में रमपतिया से उस की भेंट हुई थी । रमपतिया उसी से

मिलने आयी थी । पंचकौड़ी ने साफ़ जवाब दे दिया था - क्या झूठ-फरेब जोड़ने आयी है ? कमलपुर के नन्दबाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आयी है । नन्दबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को । चीख उठी थी रमपतिया पाँचू ! चुप रहो !

उसी रात रसपिरिया बजाते समय उस की ऊँगली टेढ़ी हो गयी थी । मृदंग पर जमनिका दे कर वह परबेस का ताल बजाने लगा । नटुआ ने ड्रेढ़ मात्रा बेताल हो कर प्रवेश किया तो उस का माथा ठनका । परबेस के बाद उस ने बहुआ को झिड़की दी - "एस्साला ! थप्पड़ों से गाल लाल कर दूँगा" । और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गयी । मिरदंगिया ने ताल को संम्हालने की बहुत चेष्टा की । मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावा-फरही फूटने लगे और ताल काटते-काटते उस की ऊँगली टेढ़ी हो गयी । झूठी टेढ़ी ऊँगली ! हमेंशा केलिए पंचकौड़ी की मंड़ली टूट गयी । धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति-नाच ही उठ गया । अब तो कोई विद्यापति की चर्चा भी नहीं करते हैं । धूप-पानी से परे, पंचकौड़ी का शरीर ठंड़ी महफ़िलों में ही पनपा था । बेकार ज़िन्दगी में मृदंग ने बड़ा काम दिया । बेकारी का एकमात्र सहारा - मृदंग !"[1]

मार्कण्डेय की "सोहगइला" नामक कहानी भी संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प केलिए उदाहरण है । प्रस्तुत कहानी में सोगहइला दाँपत्य जीवन की आस्था का प्रतीक है । शादी के बाद ड़ोली में बैठ कर जानेवाली छोटी-सी रनिया की कहानी है, जो दाँपत्य जीवन के उस आस्था जनक प्रतीक का तिरस्कार करती है । कहानी में रनिया की माँ की दुख भरी अवस्थाओं की थोड़ी-सी सूचना तो मिलती है । साथ

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 16-17

ही साथ रनिया की छोटी-छोटी कामनाओं और स्थितियों का वातावरण भी सृजित किया गया है । इन दोनों में जो विरोध है वह रनिया का छोटा-सा मन पहचान लेता है । पूरी कहानी आस्था और निषेध की भूमि पर सृजित है । मगर कहीं भी आस्था का या निषेध का सपाट प्रस्तुतीकरण नहीं है । रनिया की मानसिकता इस कहानी में मुख्य है और इसे संश्लिष्ट रचना विधान प्रदान करने में सहायक भी हुआ है ।

इसी प्रकार शिवप्रसाद सिंह की कहानी "किस की पाँखें" धार्मिक कट्टरता से घेर स्नेह की आद्रता की कहानी है । धर्म ने मनुष्य को इस प्रकार अंधा कर दिया है और उस अंधेपन का बोझ कहानी के अशरफ़ चाचा को सहना पड़ता है । पर यह कहानी धार्मिक कट्अरता के विरुद्ध किया हुआ आह्वान मात्र नहीं है । शिवप्रसाद सिंह ने सामाजिक विषमता को एक संश्लिष्ट रचना विधान के अन्तर्गत परिणमित कर के उसे एक तीव्र अनुभव के रूप में परिवर्तित किया है । कहानी के अंत में हम यह देखते हैं कि प्रमुख पात्र के मन से हो कर जितनी स्मृतियाँ गुज़रती जाती हैं । ये स्मृतियाँ जिस प्रकार प्रस्तुत की गयी है, उन की प्रस्तुति से कहानी की मूलदृष्टि भी स्पष्ट होती है और साथ ही साथ उस के रचना विधान की संश्लिष्टता का परिचय भी हमें मिलता है - और आज गुद्दन कह रहा है कि अशरफ़ काका का इन्तकाल हो गया । लेकिन मैं इन बातों पर क्यों सोचूँ ? अशरफ़ चाचा से मेरा क्या वास्ता ? न तो ये मेरी जात के थे, नधर्म के । मैं तो असल में इस हवा के बारे में सोच रहा हूँ । अजीब खुनखुनी हवा है यह । जब भी घुमर कर चलती है तो ढेरों पत्ते इस की लपेट़ में ऐंठ कर पत्ता-पत्ता गिरने लगते हैं । बचपन के दिनों में जब ऐसी हवा चलती थी तो जाने कहाँ से सफेद-सफेद नरम-नरम अनगिनत पाखें मेरे आँगन में उड़-उड़ कर आ गिरती थीं । एक बार इन पाँखों को मुट्ठियों में बाँधे मैं माँ के पास दौड़ा गया -

"माँ, किसकी पाँखें हैं ये - इतनी सफेद, इतनी मुलायम" ?

"किसी परी की है" । माँ ने मुसकुराते हुए कहा,

"क्यों चाची" मैं ने यही सवाल पास बैठी जमीरन चाची से भी किया ।

"हमारे मज़हब में तो लिखा है बेटे, कि ऐसी पाँखें फरिश्तों की होती है" चाची मुसकुरायी ।

और जब भी ऐसी उदास सर्द हवा चलती है तो मुझे अनायास ये पाँखें याद आ जाती है जिन्हें मैं आज तक न समझ पाया कि आखिर ये किस की पाँखें है ? परी की या फरिश्ते की"[1] ।

संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प से संरचित कहानियों में या तो कुछ प्रतीकों, बिम्बों या मिथकों को विकसित किया जाता है जो कहानी भर में उस की रचनात्मक स्थिति सेजुड़ कर सांकेतिक अर्थसार देने में समर्थ निकलते हैं । यह बताया जा चुका है कि नयी कहानी में सांकेतिकता का कौन-सा वातावरण सृजित हुआ है । संश्लिष्ट यथार्थवादी शिल्प से युक्त रचनाओं में ऐसे अनेक सांकेतिक संदर्भ प्राप्त होते हैं । आँचलिक कहानीकारों ने ग्रामीण संदर्भ में सांकेतिक सूक्ष्मता को विकसित करने का कार्य किया है ।

"रसप्रिया" की सांकेतिकता कथा संदर्भ का ही एक अविच्छिन्न पक्ष है । उस में एक सांकेतिक मिथक को विकसित किया गया है । शिवप्रसाद सिंह की कहानी "किस की पाँखें" में पाखें सांकेतिक प्रतीक केलिए उदाहरण है । "सोहगइला" में भी वह प्रतीक का संकेत है ।

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 64-65.

पात्र केन्द्रित कहानियाँ

अधिकतर आँचलिक कहानियाँ ग्रामीण व्यक्तियों पर आधारित हैं । ग्रामीण व्यक्तियों के माध्यम से ग्रामीण जीवन की व्यापकता को दर्शाने का कार्य आँचलिक कहानीकारों ने किया है । जहाँ तक रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय का संबंध है, उन की बहुत सारी चर्चित कहानियों में पात्र प्रमुख दीखते हैं । इस संदर्भ में शिवप्रसाद सिंह का कथन उद्धरणीय है । क्योंकि उन्होंने अपनी इस शिल्प प्रवृत्ति के बारे में विस्तार से विचार किया है - "मेरी अनेकानेक कहानियाँ चरित्रप्रधान हैं । अगर मैं ईमानदारी से कहूँ तो यह कि मेरी प्रयास प्रतिशत से अधिक कहानियों की प्रेरणा में चरित्रों का योगदान है, यानि सृजन प्रक्रिया की दृष्टि पहले आकृष्ट करते हैं, बाकी चीजें बाद में"[1] । यह मत मात्र शिवप्रसाद सिंह की कहानियों केलिए ही नहीं बल्कि दूसरे आँचलिक कहानिकारों के संबंध में भी प्रासंगिक है ।

कहानियों में चरित्र को प्रस्तुत करते समय कहानीकार केलिए यह सुविधा मिल जाती है कि सब से पहले एक ग्रामीण व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया जाय और बाद में उस के संदर्भ में पूरे गाँव को देखा जाये । इस प्रकार के रचना विधान को अपनाने के कारण कहानी की स्थितियाँ एक दम केन्द्रीभूत भी होती हैं और व्यापकता में प्रसरित हो जाती हैं । यह प्रवृत्ति परिवेश के आकलन का एक सीधा माध्यम है ।

उपरोक्त शिल्पप्रवृत्ति केलिए एक अच्छा उदाहरण है मार्कण्डेय की "हंसाजाइ अकेला" नामक कहानी । मार्कण्डेय ने अपने कथापात्र हंसा को इस तरह प्रस्तुत किया है - "उसे लोग हंसा कहते हैं, काला-चिट्टा, बहुत ही तगड़ा आदमी है । उस के भारी चेहरे में मटर-सी आँखें और आलू-सी नाक, उस के व्यक्तित्व के विस्तार को

---

1. मुरदा सराय, कुछ न होने का कुछ - शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 12

बहुत सीमित कर देती है । माथे पर उगे हुए बाल, किसी भीट पर उगी हुई घास का बोध कराते हैं । घुटने तक की धोती और मारकीन का दुगजी गमछा उस का पहनावा है । वैसे उस के पास एक दोहरा कुर्ता भी है, पर वह मौके-झौके या जाड़े के दिनों में ही निकालता है । कुर्ता पहन कर निकलने पर गाँव के लड़के उसी तरह उस का पीछा करने लगते हैं, जैसे किसी भालू का नाच दिखानेवाले मदारी का"[1] जिस बाबा के घर में हंसा का आना-जाना है और वहीं गाँव के दूसरे लोग इकट्ठे भी होते हैं । इन बातों का चित्रण कर के कहानीकार ग्रामीण जीवन की व्यापकता की ओर बढ़ते हैं । फिर बाद में कहानीकार दुबारा हंसा पर केन्द्रित होते हैं और हंसा एवं सुशीला नामक समाज सेविका के बीच के संबंध को विकसित करने का कार्य करते हैं - "हंसा खो गया । सुशीला का साल भर पहले का गाना "जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले आय गइलैं उस के होठों पर थिरक उठा । साँवला-साँवला-सा रंग था, लंबा-छरहरा वदन, रुखे-रुखे से बाल और तेज़ आँखें । कैसा अच्छा गाती थीं । हंसा सोचता रहा । इसी बीच कीर्तन-प्रवचन हो गया । सुशीला जी ने भी भाषण दिया और सारी ग्राम-मंडली, "बिना विद्या के भारत देश, दिन-दिन होती है तेरी ख्वारी रे" गुनगुनाती वापस जाने लगी । हंसा खोया बैठा रहा । खंजडी की डिम्‌डिम् और झाँझ की झंकार उस के कानों में गूँजती रही । सुशीला का पैना स्वर उस के हृदय को बेधता रहा और दंगल की शामवाली घटना का भी उसे बार-बार ध्यान आता रहा । - देखो तो इन आँखों को, जो न करा दें । - और उस की नसों में रक्त की झनझनाहट भर जाती । एक एक, "गन्ही महात्मा की ......" सुन कर, वह चौंक पड़ा और ज़ोर से चिल्ला पड़ा, "जय.... जय......."[2] ।

---

1. हंसा जाइ अकला, पृष्ठ 65.
2. वही पृष्ठ 72.

मार्कण्डेय की एक अन्य कहानी "गुलरा के बाबा" में यही शिल्प विधान अपनाया गया है । पात्र केन्द्रित अवस्था का एक उदाहरण इस प्रकार है - पूरे पचहथे जवान, भीट ऐसी छाती और हाथी की सूँड़ जैसे हाथ, बड़ी बड़ी तेज़ आँखें, लोग हनुमान कहते थे, बाबा को, हनुमान । मेले-ठेले में अपने पिता गंजन सिंह केलिए रास्ता बनाने का काम बाबा ही करते थे । बड़ी भीड़ को पानी की काई की तरह इधर-उधर कर देता उन केलिए कोई विशेष बात न थी । बखरी में खाने घुसते समय बिटियों-पतोहुओं को जता देना तो ज़रूरी होता न । बाबा दलान ही में से खाँसते और सारी बखरियों के कुत्ते मारे डर के भाग कर बाहर हो जाते"[1] । इस के बाद गुलरा की आँचलीय विशेषताओं और अन्य प्रकार की घटनाओं की ओर कहानी विकसित होती है, और अंत में पुनः बाबा पर केन्द्रित होती है ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "अँधेरा हँसता है" इसी शिल्प विधान की है । इस में अर्जुन पाँडे के माध्यम से एक ग्रामीण व्यक्ति का चित्र ही नहीं, एक ग्रामीण परिवेश को ही प्रस्तुत किया गया है । अर्जुन पाँडे का विवरण यों है - "अर्जुन पाँडे उस तरह के इनसानों में है जिन्हें या तो लोग बार-बार की पढ़ी हुई हनुमान चालीसा की किताब मानते हैं जिस की चौपाइयाँ एक दम साफ है और जो संकट में भले ही एकाध बार बाँच ली जायें, फुरसत के वक्त तो हमेशा ही नीरस लगती है, या फिर उस तिलस्मी कुंजी-की तरह जिस के अंक और बेढ़ंग अक्षरों का रहस्य समझ पाना सब के बल-बूते का काम नहीं, इसे तो कोई सयाना ही जान सकता है । हम तब जानने लगे जब जानने-योग्य हो गये क्योंकि गाँव में अर्जुन पाँडे सब से बातें करते-नवयुवकों से, प्रौढ़ों से, नौकरों से, चरवाहों से, खेतों में काम करनेवाली धानकाटनी या रोपनेवालियों से, भाभियों से, कभी-कभार कम उम्र की चाचियों से भी पर उन्हें

---

1. पान-फूल पृष्ठ 11.

बच्चों और बूढ़ों से बात करना कतई पसंद न था । बूढ़ों से वह बड़ी बेमुरव्वती से पेश आते और खूसट कह कर टाल देते । बच्चों के प्रति उन की दृष्टि हमेशा उपेक्षा की रहती । कभी-कभार गली से गुज़रते हुए किसी बच्चे की नटखट अदाएँ उन्हें भा जातीं, तो वह उसे पुचकार देते । मगर उपेक्षा का बन्धन कभी ढीला न होता । शायद वह समझते थे कि उन का व्यक्तित्व इन अबोध प्राणियों की समझ में क्या आ पायेगा लड़के हैं, खेलें-कूदें, बड़े आदमियों की बात में दखल देना, ठुनकना, हठ करना, सहानुभूति या प्रोत्साहन पाने की कोशिश करना अथवा रोना-गाना उन्हें बहुत बुरा मालूम होता और वह अक्सर बच्चों को झिड़ककर दूर भगा देते"[1] ।

किन्तु शिवप्रसाद सिंह की "दादी माँ" नामक कहानी में पात्र और परिवेश का संयोजन ही दीख पड़ता है । ग्रामीण वातावरण में दादी माँ की परिकल्पना पूरी सहजता के साथ हुई है । अत: पात्र और परिवेश का पारस्परिक संबंध; रचना स्तर का है । इस केलिए एक उदाहरण दृष्टव्य है - "किशन के विवाह के दिनों की बात है । विवाह के चार-पाँच रोज़ पहले से ही औरतें रात-रात भर गीत गाती हैं । विवाह की रात को अभिनय भी होता है । वह प्राय: एक ही कथा का हुआ करता है, उस में विवाह से ले कर पुत्रोत्पत्ति तक के सभी दृश्य दिखाये जाते हैं, सभी पार्ट औरतें ही करती हैं । मैं बीमार होने के कारण बारात न जा सका । मेरा ममेरा भाई राघव दालान में सो रहा था । वह भी बारात जाने के बाद पहुँचा था औरतों ने उस पर आपत्ति की ।

दादी माँ बिगड़ी "लड़के से क्या पर्दा । लड़का और बरह्मा का मन एक सा होता है" ।

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 85-86.

"शादी हुई होती, तो एक साल में लड़का हुआ होता । अभी बने हैं बच्चे" । देवू की माँ बोली । वे बड़ी शरारती और चुहलबाज़ थीं । रिश्ते में हम लोगों की भाभी लगती थीं । मुझे भी पास ही एक चार पाई पर चादर उढ़ा कर दादी माँ ने चुपके से सुला दिया था । बड़ी हँसी आ रही थी । सोचा, कहीं ज़ोर से हँस दूँ, भेद खुलजाय तो निकाल बाहर किया जाऊँगा, पर भाभी की बात पर हँसी रुक न सकी और भंडाफोड़ हो गया ।

"यह न लो" देवू की माँ ने चादर खींच की - "कहो दादी, यह कौन बच्चा सोया है । बेचारा रोता है शायद, दूध तो पिला दूँ ।" हाथापाई शुरू हुई । दादी माँ बिगड़ी, "लडके से क्यों लगती है ।"

"तो बनें यही औरत, इन्हीं को बच्चा पैदा हो । खूब सी-सी करें । मैं तो नहीं बनती । "मैं वहाँ से हँसता हुआ भागा । सुबह रास्ते में देवू की माँ मिलीं - "कल वाला बच्चा भाभी" मैं वहाँ से ज़ोर से भागा और दादी माँ के पास जा कर खड़ा हुआ । वस्तुत: किसी प्रकार के अपराध हो जाने पर जब हम दादी माँ की छाया में खड़े हो जाते, अभयदान मिल जाता"[1] । वस्तुत: यह एक परिचयांकन ही है । यथार्थवादी ढ़ंग से ही यह दर्शाया गया है । पर शिवप्रसाद सिंह ने जिस आत्मीयता से अपने पात्र को प्रस्तुत किया है, उस में उन की परिवेश को पकड़ने की उद्भुत क्षमता का परिचय प्राप्त होता है ।

रेणु की "तीसरी कसम" में हिरामन के माध्यम से ग्रामीण परिदृश्य अनावृत होता है :- "मथुरामोहन नौरंकी कम्पनी में लैला बननेवाली हीराबाई का नाम किस ने नहीं सुना होगा भला ! लेकिन हिरामन की बात निराली है । उस ने सात साल

---

1. आर पार की माला, पृष्ठ 43-44.

तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी-थियेटर या वयस्कोप सिनेमा नहीं देखा । लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी । देखने की क्या बात । सो मेला टूटने के पन्द्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देख कर उस के मन में खटका अवश्य लगा था । बक्सा ढोनेवाले नौकर ने गाड़ी-भाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढनीवाली ने सिर हिलाकर मना कर दिया । हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा, "क्यों भैया, कोई चोरी-चमारी का माल-बाल तो नहीं" ? हिरामन को फिर अचरज हुआ । बक्सा ढोनेवाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हाँकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया । हिरामन को मेले में तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी की काली सदी की याद आयी थी । -

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हाँके !

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है । दूसरे रह-रह कर चम्पा का फूल खिल जाता है उस की गाड़ी में । बैलों को डाँटो तो "इस-बिस" करने लगती है उस की सवारी ।   उस की सवारी ! औरत अकेली, तम्बाकू बेचनेवाली बूढ़ी नहीं ! आवाज़ सुनने के बाद वह बार-बार मुड़ कर टप्पर में एक नज़र डाल देता है, अँगोछे से पीठ झाढ़ता है ।   भगवान जाने क्या लिखा है इस बार उस की किस्मत में ! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उस की गाड़ी में समा गया । सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा । हिरामन को सब कुछ रहस्यमय - उजगुत-अजगुत-लग रहा है । सामने चम्पानगर से सिंधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान !   कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं ?

हिरामन की सवारी ने करवट ली । चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते-चीखते रुक गया - अरे बाप ! ई तो परी है !"[1]

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 109-10.

इसी प्रकार के एक ग्रामीण व्यक्तित्व को रेणु ने "ठेस" नामक कहानी में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत कहानी में सिरचन के माध्यम से ग्रामीण संवेदना उभरती है। यद्यपि सिरचन नामक ग्रामीण कारीगर के चरित्र के भिन्न पहलुओं का ही अंकन रेणु ने किया है, फिर भी वह एक ग्रामीण मानसिकता का प्रक्षेपण है। परन्तु इस कहानी में पात्र और परिवेश का वह आपसी संबंध उतना प्रकट नहीं दीखता है - "खेती-बारी के साथ गाँव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग इस को बेकार ही नहीं "बेगार" समझते हैं। इसलिए, खेत-खलिहान की मज़दूरी केलिए कोई नहीं बुलाने जाता है। क्या होगा उस को बुला कर ? दूसरे मज़दूर खेत पहुँच कर एक तिहाई काम कर चुकेंगे, तब कहीं सिरचन बायें हाथ में खुरपी डुलाता हुआ दिखाई पड़ेगा - पगडण्डी पर तौल-तौल कर पाँव रखता हुआ धीरे-धीरे। मुफ्त में मज़दूरी देनी हो तो और बात है।

आज सिरचन को मुफ्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जब कि उस की मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियाँ बंधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उस की खुशामद भी करते थे। अरे सिरचन भाई ! अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गयी है सारे इलाके में। एक दिन का समय निकाल कर चलो। कल बड़े भैया की चिट्ठी आयी है शहर से- सिरचन से एक जोड़ा चिक बनवा कर भेज दो"[1]। इस प्रकार के चित्रों में स्थानिक स्थिति को उभारने का प्रयास ही दिखाई पड़ता है। सारा ध्यान पात्र पर केन्द्रित किया गया है। इसलिए पात्र की विशिष्टताओं से आंचलिकता प्रकट होती है।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 51.

रेणु ने "ताबे एकला-चलो रे" नामक कहानी में किसन महराज नामक पात्र का वर्णन किया है । वह एक प्रमुख पात्र के रूप में पूरी कहानी में व्याप्त दीखता है । किसन महाराज गाँव का पहरा देता है तथा गरीबों की सहायता भी करता - "एक रात को वे आये, चुपचाप पाड़े की चोरी करने - मकदूम, असगर ।

ऐसा लगता है, किसन महराज ने धूल उड़ा कर उन्हें सचेत करने की चेष्टा की होगी-पहले । जब असगर ने भाला फेंक कर पुट्ठे पर धाव कर दिया तब उस ने निरुपाय हो कर सीधे हमला बोल दिया होगा । बारी-बारी से चहेट कर उस ने मक़दूम और असगर के हाथ-पैर तोड़े थे ।

इस घटना के बाद ही उस ने गाँव की चौकीदारी शुरू की होगी । वह कब से रात में पहरा देता है, किसी को नहीं मालूम । तनुकसाह के पिछवाड़े से किसी की चीख सुनायी पड़ी, एक रात । तनुकसाह के परिवार वाले जगे, किन्तु साहस नहीं हुआ पिछवाड़े की ओर जाने का । चीख-पुकार क्रमशः बढ़ती गयी - "बचाइये हो गाँव के लोग अरे बाप, मर गये !" लोग हा-हू करते दौड़े आये । देखा, तनुकसाह के पिछवाड़े में एक आदमी लहूलुहान पड़ा कराह रहा है और पास खड़ा किसन महराज रह-रह कर हुँत्था मारता है । चोरने ही पाड़े की कहानी बतायी । जब वह गाँव में घुस रहा था पाड़े ने उसे अचरज से देखा था । फिर जैसे ही सेंध लगाना शुरू किया, न जाने किधर से आकर पाड़े ने उसे हुँथियाना शुरू किया"[1]

ज़मीन्दार गरीब किसानों की जमीन फसल के साथ हरप लेने को तैयार हो गया खेत में संघर्ष होने लगा तो किसन गरीब किसानों के पक्ष में - गरीबों की हक की रक्षा कर रहा था । ईंट-पत्थरों की मार खाकर भी धूल उड़ाता रहा, सिर्फ ।

---

1. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 31.

चेतावनी देता रहा । फिर लाठी चली । वह अहिंसक रहा । सींगों से डराना, धूल उड़ाना, हिंसा नहीं । तीर और भाले से घायल हुआ-देह छलनी हो गयी । तब उस ने दो लुटेरे लठैतों के हाथ-पैर तोड़े पटककर । शिवशंकर ने झूठे फयर किये, किन्तु देवशंकर ने गोली दाग दी - कलेजे पर । गोली खाकर भी उस ने किसी की हत्या नहीं की । मरते-मरते उस ने शिवशंकर और देवशंकर को घायल ही किया । वह जान ले सकता था । अंत में गाँव की ओर भागा । भागा नहीं । यह निश्चय ही मेरे पास आ रहा था । मेरी पत्नी के आँचल में मुँह छिपाकर सोने केलिए रघुवर महतो के कूप का पानी पीने केलिए संतोखी की बेवा के हाथ से केला खाने केलिए मेरे बेटे के हाथ से फरही-गुड़ खाने केलिए.....।

कुछ दूर आया डगमगाया गिरा .....[1] । गरीब किसानों के अधिकारों की रक्षा केलिए अपनी जान तक कुरबान करनेवाले पाड़े का चित्र प्रस्तुत कहानी में सुस्पष्ट दीखता है । प्रमुख पात्र के माध्यम से गाँवों के किसान-जमीन्दार संघर्ष का चित्र भी प्राप्त होता है ।

पात्र और परिवेश की अन्विति - प्रतीकात्मकता

आँचलिक कहानियों की उपलब्धि तभी प्रकट होती है जब आँचलिक स्थिति रचना के आंतरिक क्षणों के साथ जुड़ कर अभिव्यक्त होती है । इतने पर भी कई प्रकार की बहिरंग आँचलिक स्थितियों का अंकन इन में होता है । पात्र और परिवेश की अन्विति रचना केलिए अत्यन्त आवश्यक है । आँचलिक कहानीकार कभी-कभी जडवस्तुओं को भी पात्रों के रूप में स्वीकार करते हैं और एक विशिष्ट आँचलिक वातावरण सृजित करते हैं । इस प्रकार एक ओर प्रतीक पात्रों का सृजन करते हैं,

---

1. आदिम रात्रि की महक, पृष्ठ 37-38.

दूसरी तरफ प्रतीक पात्रों के माध्यम से अंचल का स्वच्छंद वर्णन प्रस्तुत करते हैं । यथार्थवादी शिल्प में रचित इन कहानियों में प्रतीकात्मक शिल्प का संयोजन भी समन्वित ढंग से होता है ।

"बरगद का पेड़" नामक कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने गाँव के बड़े-बूढ़े बरगद के पेड़ को यों प्रस्तुत किया है - "बरगद का पेड़ मेरे बरामदे से ही दीखता है । लगता जैसे देवगटी के टीले पर खड़ा यह बरगद का पेड़, हवा में तीखे-तीखे बल फैलाये कोई राक्षस खड़ा हो । मैं इस पेड़ को होश आने के समय से ही देखता आ रहा हूँ । मैं ने इसे चाँदनी रात में देखा है, काली रात में देखा है, डूबते हुए सूरज के गेरुए आलोक में देखा है ; और प्रात: ओस-सने वातावरण में सोना रोलते दिनमणि के प्रकाश में देखा है ; पर मुझे यह ऐसा कभी न लगा । पुरवैया के झकोरे में, लंबी-लंबी शाखों की रगड़ से बेसुरा भद्दा शब्द करते, श्मशान की खोपड़ी-सा दाँत फैलाये जैसे यह अट्टहास कर रहा है । उस के पैरों में सायी तलैया शान्त पड़ी है । वह कभी बाहरी आक्रमणकारियों से गढ़ की रक्षा केलिए खाई का काम देती थी, अब प्राय: इस में एक तरफ़ बहुत दूर तक फैले हुए सेवार, नागरमोथा और रेंड़ई की जड़ों को थूथन से खोद कर खाते हुए गंवई सूअर और दूसरी ओर टीले के पास, थोड़े गहरे पानीवाले कंकरीले घाट पर स्नान करते हुए कुछ लड़के दिखाई पड़ते हैं । सूअरों और आदमियों के खित्तों को बीच से बाटती हुई पुरइन की कतार सोयी रहती है जिस में मौसम में लाल फूल भी झाँकते हैं"[1] । पेड़ यहाँ एक माध्यम है । इस पेड़ को एक पात्र के समान प्रस्तुत किया गया है ।

मार्कण्डेय ने "नीम की टहनी" नामक कहानी में गाँव के एक बूढ़े नीम के पेड़ को पात्र बनाया है । इस के द्वारा गाँव के विश्वासों और अंचल का स्वच्छंद

---

1. आर पार की माला, पृष्ठ 11.

वर्णन भी हुआ है - "उस नीम की भी एक अजीब कहानी है । उसी साल की बात है, जिस साल तू पैदा हुआ था, और यह महराजिन बुआ भी अपने पति के साथ गाँव आयी थीं - महारानीवाली नीम की पूजा केलिए इस गाँव की चलन है कि लड़कियाँ शादी के बाद दूल्हे के साथ, महारानी वाली नीमको पूजा करने जाती है । महराजिन बुआ का पति बड़ा पढ़ा-लिखा था बेटा । उसे इस धरम-करम के ढकोसले में विश्वास न था । बुआ ने उस से कह रखा था कि नीम की पत्तियाँ मत छूना, पर वह माना नहीं, और हँसते-हँसते एक टहनी तोड़ ही तो ली । गाँव की और बहुत-सी औरतें थीं - सब की आँखें टंग गयीं और बुआ तो वहीं रोने लगीं । लौट कर लड़के को जो जोर का बुखार हुआ, तो महरानी ने उसे उठाही लिया, और तभी से बुआ लगातार नीम की टहनियाँ तोड़ती रहीं और उन्हें कुछ न हुआ । हाँ, अब वही टहनियाँ, जो बुआ तोड़ती हैं, मरते हुए लोगों के ऊपर से महरानी की छाया उठा ले जाती है"[1] ।

"सवरइया" नामक मार्कण्डेय की कहानी में एक बैल को पात्र बना कर, उस के माध्यम से अंचल को उभारा गया है - "जब मैं उस साल मैके गयी तो बापू ने नया-नया मेले ये खरीद कर लाये थे । कैसी सवराई थी इस की पीठ पर, जैसे कोई मखमली बिछावन हो । और जो मचल उठता था इस की पीठ पर हाथ फेरने को । लम्बे-लम्बे पतले, सुडौल पैर जैसे किसी साँचे में गढ़ कर निकाले गये हो, या किसी बड़े होशियार कारीगर ने बड़ी मेहनत से तराशा हो । कन्नो इस के पीछे लगी रहती थी, रात-दिन । इसे चाचा कहती थी । और यह भी तो कितना अल्हड़ था । यदि छुड़ा लेता तो कन्नों के पीछे-पीछे सारा गाँव घूम आता, बखरियों में घुस आता ।

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 37-38.

-एक दिन कन्नो स्कूल चली गयी, तो इस के खूँटे से छुड़ा लिया। सारा गाँव जुटा, पर किसी की पकड़ में न आया। आखिर कन्नो स्कूल से लायी गयी, और आते ही उस ने पुकारा, "चाचा! ओ मेरे चाचा! आओ!" यह दौड़ता हुआ उस के पास पहुँच गया और उस के हाथ पैर चाटने लगा।

-और जब मैं चलने को हुई, तो बाबू ने इसे बिदाई में दे दिया।"[1]

गाँव की उपस्थिति पात्र-गत स्थिति के रूप में

जीवन के एकान्त क्षणों का चित्रण प्राय: आँचलिक कहानियों में उपलब्ध नहीं है। आँचलिक कहानियों में ग्रामीण पात्रों की मानसिकता या उन के जीवन का समग्र चित्रण ही नहीं बल्कि पूरा गाँव कहानी में चित्रित होता है। ऐसे प्रसंगों में गाँव के अनेक व्यक्तियों के नाटकीय संवादों, उन के विशिष्ट रुझानों को भी कहानीकार प्रस्तुत करते हैं। पात्र परिकल्पना की नाटकीयता के संदर्भ में यह एक नया शिल्प प्रयोग है।

प्रमुख पात्रों के जीवन के कुछ अनूठे प्रसंगों को प्रस्तुत करते समय गाँव की प्रतिक्रिया को सूचित करने केलिए कहानीकार उक्त प्रसंगों को कभी नाटकीय बनाते हैं। उदाहरण केलिए "सात बच्चों की माँ" कहानी में सन्नो जब गाँव वापस आती है तो पूरा गाँव उस के विरुद्ध हो जाता है - "सारा गाँव अमोलियावाले कुएं के चारों ओर जुटा था। कुए में रस्सियाँ पड़ गयी थीं और लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, 'हरामजादी निकल आ, क्यों गाँव को फंसाती है। मरना था तो जहाँ भतार किया था, वहीं क्यों नहीं मर गयी? पर वह बाहर आने को तैयार

---

1. पान-फूल पृष्ठ 43-44.

नहीं होती थी । उस का दुबला पतला शरीर शीत से सिकुड़ कर गठरी हो गया था । फटी-पुरानी धोती का सूत-सूत उस के शरीर से सट गया था । सन्नो के दो बड़े लड़के लाठियाँ ले कर लाख-लाख गालियाँ बक रहे थे, "हरामजादी निकली नहीं कि सिर तोड़ देंगे" ।

बाहर कुएं के पास एक छोटी-सी हाँड़ी पड़ी थी । उस में मिठाइयाँ थीं । लोग कह रहे थे, "सरूपवा केलिए लायी है, सरूपवा केलिए" । पर सभी टस से मस नहीं हुई और रस्सी पकड़े हुए खड़ी रही ।

इसी बीच लोगों ने देखा सरूप ज़मीन पर दो हाथ और एक पैर को घसीटता चला आ रहा है । बोलियाँ शुरू हो गयीं । लोगों ने गालियों की बौछार की, पर वह हाँफता हुआ आगे बढ़ता-बढ़ता कुएं के पास पहुँच गया । उस ने मिठाइयाँ देखीं, तो उस की आँखों से पानी बहने लगा । फिर झुक कर देखा -

"चली आओ मुन्नू की माँ । दो रोटियाँ तो बना कर दोगी" । और फिर वह बोल नहीं सका । उसकी आँखों से आँसू बह कर कुएं में गिरने लगे"[1] ।

इसी प्रकार का एक उदाहरण "कर्मनाशा की हार" नामक कहानी में भी प्राप्त होता है । गाँव भर के लोग इकट्ठे हुए हैं और एक नाटकीय वातावरण सृजित कर के ग्रामीण जीवन के स्पंदन को पकड़ने का कार्य किया गया है - "भोर होने में देर थी, उनींदी आँखें कसआ रही थीं, किन्तु मन की जलन के आगे उस दर्द का क्या मोल । पाँडे उठ कर टहलने लगे । सामने की बँसवार के भीतर से पूरबी क्षितिज पर ललछौहाँ उजास फूटने लगा था । गली की मोड़ के कच्चे मकान के भीतर से जाँत की घर्र-घर्र गूँज रही थी । एक घुमड़ता गरगराहट का स्वर, जिस के पीछे जौतवाली के कंठ की व्यथा को एक सुरीली तान टूट-टूट कर कौंध उठती थी ।

---

1. पान फूल, पृष्ठ 130.

'मोहे जोगिनी बना के कहाँ गइले रे जोगिया' पाँडे एक क्षण अवाक् हो कर इस दर्दीले गीत को सुनते रहे । पियासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पाँडे की आत्मा में जैसे समान वेदना को पहचान कर उतरते चले जा रहे हों ।

"अब रोने चली है चुड़ैल" पाँडे पागल की तरह बड़बड़ाते रहे - रो रोकर मर, मैं क्या करूँ" ।

बाढ़ के लालपानी में सूरज डूब रहा था, पाँडे बैशाखी के सहारे आ कर दरवाज़े पर खड़े हुए, नदी की और आदमियों की भीड़ खड़ी थी । वे धीरे धीरे उधर हो बढ़े । सामने तीन चार लड़के अरहर की खूँटियाँ गाड़ कर पानी का बढ़ाव नाप रहे थे ।

"क्या कर रहा है रे छबीला" पाँडे बलात् चेहरे पर मुसकुराहट का भाव लाकर बोले ।

"देखता नहीं लंगड़ा, बाढ़ रोक रहे हैं" ।

पाँडे मुसकराये - जैसा बाप वैसा बेटा । तेरा बाप भी खूँटिया गाड़ कर कर्मनाशा को बाढ़ रोकना चाहता है ।

"वह भीड़ कैसी है रे छबीले"

"नहीं जानते, फुलमत को नदी में फेंक रहे हैं, उस के बच्चे को भी उस ने पाप किया है", छबीला फिर गंभीर खड़े पाँडे से सट कर बोला "क्यों पाँडे चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न" ।

"हाँ, हाँ, पाँडे आगे बढ़े। बोतल की टोप खुल गई थी। पाँडे के मन में भयानक प्रेत खड़ा हो गया। "चलो, न रहेगी, बाँस, न बाजेगी बँसुरी। हुँ, चलो थी पाँडे के वंश में कालिख पोतने। अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है।

फुलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये टूटते हुए अरार पर एक नीम के दाने से सटकर खडी थी। उस की बूढ़ी माँ जार-बेजार रो रही थी, किन्तु आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था, अपने-अपने प्राणों का मोह इन्हें पशु से भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्याय के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करता था। कर्मनाशा को प्राणों की बलि चाहिए, बिना प्राणों की बलि लिये बाढ़ नहीं उतरेगी फिर उसी को बलि क्यों न दी जाय, जिस ने पाप किया पर सार जाने के बदले जान दी गई, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी त्रिशंकु के पापों को लहरें किनारों पर साँप की तरह फुफकार रही थीं। आज मुखिया का विरोध करने का किसी में साहस न था। उस की नीचता के कार्यों का ऐसा समर्थन क्यों न हुआ था। "पता नहीं किस बैर का बदला ले रहा है बेचारी से"। भीड़ में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किन्तु कौन बोले, सब मुँह सिये खडे थे।

"तुम्हारी क्या राय है भैरो पाँडे" मुखिया बोला, सारे गाँव ने फैसलाकर दिया-एक के पाप केलिए सारे गाँव को मौत के मुँह में नहीं झोंक सकते। जिस ने पाप किया है उस का दंड भी वही भोगे।

एक बीभत्स सन्नाटा। पाँडे ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भय से चिल्ला उठी। पाँडे ने बच्चे को उस की गोद में छीन लिया। "मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुहे बच्चे और एक अबला की बलि

देने से नहीं रुकेगी, उस के लिए तुम्हें पसीना बहा कर बाँधों को ठीक करना होगा

कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चे को छोड़ कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ ; मेरे जीते जी बच्चे और उस की माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता समझे" ।

"तो यह है बूढ़े पाँडे जी की बहू" मुखिया व्यंग्य से बोला: "पाप का फल तो भोगना ही होगा पाँडे जी, समाज का दंड तो झेलना ही पड़ेगा"।

"ज़रूर भोगना होगा मुखिया जी मैं आप के समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता किन्तु मैं एक एक के पाप गिनने लगूँ तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा है कोई तैयार जाने को

लोग अवाक् पाँडे की ओर देख रहे थे जो अपने कंधे से छोटे बच्चे को चिपकाए अपनी बैसाखी के सहारे खड़े थे, पत्थर की विशाल मूर्ति की तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल कर्मनाशा के लाल पानी में सूरज डूब रहा था ।

जिन उद्धत लहरों की चपेट से बड़े से बड़े विशाल पीपल के पेड़ धराशायी हो गये थे, ये एक टूटे नीम के पेड़ से टकरा नहीं थी, सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टान की तरह अड़िग थी, लहरें टूट-टूट कर पछाड़ खा कर गिर रही थीं । शिथिल थकी पराजित ......"[1] ।

शिवप्रसाद सिंह ने अपनी इस कहानी में एक नाटकीय शिल्प अपनाया है । विवरणों और वार्तालापों का समन्वय तथा भावों और प्रतिक्रियाओं का संयोजन कर के उन्होंने नाटकीयता को बनाये रखने की चेष्टा की है और कर्मनाशा की हार में गाँव की पूरी उपस्थिति का सजीव परिचय हमें मिलता है ।

---

1. कर्मनाशा की हार, पृष्ठ 22-24.

रेणु की कहानी "लाल पान की बेगम" और "तीसरी कसम" जैसी कहानियों में भी इस प्रकार की ग्रामीण टोली को एकत्रित करने का कार्य मिलता है । "लाल पान की बेगम" में मेला देखने जानेवाली ग्रामीण युवतियों का सामान्य चित्रण ही नहीं अपितु उस के माध्यम से गाँव की उपस्थिति का बोध भी प्राप्त होता है - "अरी टीशनवाली, तो रोती है काहे !" बिरजू की माँ ने पुकार कर कहा, "आ जा झट से कपड़ा पहन कर । सारी गाड़ी पड़ी हुई है ! बेचारी ! आजा जल्दी" । बगल के झोंपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा, "काकी गाड़ी में जगह है, मैं भी आऊँगी" ।

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है । उस की बहू भी नहीं गयी है । गिलट का झुनकी-कड़ा पहन कर झमकती आ रही है ।

"आ जा ! जो बाकी रह गयी है, सब आ जायें जल्दी" ।

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी और राधे की बेटी सुनरी तीनों गाड़ी के पास आयीं"[1] ।

"तीसरी कसम" में हिरामन अपने साथियों सहित नौटंकी देखने जाता है और उस प्रसंग को भी बढ़ा-चढ़ा कर तथा पूरी नाटकीयता के साथ रेणु ने अवतरित किया है । हिरामन के चरित्र के कई पहलू भी उस वक्त प्रकट होता है और हिरामन तथा हीराबाई के आपसी रिश्ते का भी परिचय मिलता है । इन दोनों के साथ ग्रामीण टोली का भी परिचय मिलता है - "नौटंकी शुरू होने के दो घंटे पहले ही नगाड़ा बजाना शुरू हो जाता है । और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतंगों की तरह टूटने लगते हैं । टिकट घर के पास भीड़ देख कर हिरामन को बड़ी हँसी आयी - लालमोहर, उधर देख कैसी धक्कर-मधुक्की कर रहे हैं लोग" ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 154.

"हिरामन भाय" ।

"कौन पलट दास ! कहाँ की लादनी लाद आये" ? लालमोहर ने पराये गाँव के आदमी की तरह पूछा ।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफ़ी माँगी-कसूरवार है ; जो सजा दो तुम लोग, सब मंजूर है । लेकिन सच्ची बात कहें कि सिया सुकुमारी....." ।

हिरामन के मन का पुरइन लगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है । बोला "देखो पलटा, यह मत समझना कि गाँव-घर की जनाना है । देखो तुम्हारे लिए भी पास दिया है ; पास के लो अपना, तमाशा देखो" ।

लालमोहर ने कहा, "लेकिन एक शर्त पर पास मिलेगा । बीच-बीच में लहसनवाँ को भी" ।

पलट दास को कुछ बताने की ज़रूरत नहीं । वह लहसनवाँ से बात चीत कर आया है अभी ।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी - "गाँव में अगर यह बात मालू हुई किसी तरह ।

"राम"राम!" दाँत से जीभ को काटते हुए कहा लपटदास ने"[1] ।

जिन कहानियों में से हमें ऐसे चित्र मिलते हैं उन में यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि कहानीकार एक छोटे प्रसंग को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करते हैं । अर्थात् एक सतही वर्णन नहीं अपितु एक गहरा परिचय वे देते चलते हैं । अनेक पात्रों और उन की विशिष्टताओं को नाटकीय बनाने का यह एक शैल्पिक उपक्रम है ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 132-33.

प्रथम पुरुष पात्रों की प्रस्तुति

आधुनिक कथा साहित्य में प्राय: प्रथम पात्रों की प्रस्तुति हुई है । यह आत्मकथात्मक शिल्प का एक परिवर्तित रूप है । हिन्दी में नई कहानी के विकास के पहले ही प्रथम पुरुष "मैं" माध्यम से कहानी को प्रस्तुत किये जाने लगा है । प्रथम पुरुष कहानी का एक पात्र होता है । लेकिन वह मात्र निरीक्षक नहीं है । कहानी के कथात्मक स्थिति के साथ उस "मैं" का गहरा संबंध रहता है । नई कहानी में इस शिल्प प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

आंचलिक कहानीकारों ने भी इस शिल्प को अपनाया । शिवप्रसाद सिंह ने खास तौर से इस तरीके को बढ़ावा दिया है - मेरी कहानियों में प्राय: एक "मैं" ज़रूर होता है । यह "मैं" समय के प्रति मेरी निजी प्रतिबद्धता का साक्षी है, जिस के माध्यम से जीवन के प्रत्येक अक्स को मैं सही ढंग से देखना चाहता हूँ । दूसरी ओर यह "मैं" इस बात का भी सबूत है कि "मैं" वर्तमान युग में, जो सामूहिक और यान्त्रिक सत्याभासों से परिचालित होने केलिए विवश है, अपने निजी खून-मांस से उपलब्ध सत्य को कहने का प्रयत्न करता है । यह "मैं" एक प्रकार से सभी प्रकार के अनुभव-खंडों, बिम्बों, प्रतीकों, चरित्रांशों तथा सन्देहों को सहज सरलीकृत कर के एक स्वाभाविक अन्तर्निहित एकता के छंद में ढालने का माध्यम बन जाता है"[1] ।

बहुत-सी रचनाएँ आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत की गई हैं । इन में आंचलिक जीवन के साथ उन की सहभागिता भी है और अपने आप को अलग रखने की तटस्थता भी । इस शिल्पविधि का प्रयोग जितनी कहानियों में हुआ है उनमें प्रथम पुरुष की ये दोनों भूमिकायें प्रकट होती हैं । प्रथम पुरुष की सहभागी भूमिका केलिए कुछ उदाहरण इस

---

1. मुरदा सराय, भूमिका, पृष्ठ 20.

प्रकार हैं - तोतापुर पहुँचे साहित्यकार के अनुभवों का वर्णन "अतिथि-सत्कार" नामक कहानी में रेणु यों करते हैं - "सरगना ने मेरा हाथ पकड़कर उठाया । मेरी बोली ही बन्द हो गयी । लगा, हाथ उखड़ कर अलग हो गया देह से । मैं ने कलेजा मज़बूत करके कहा, "मुझे कोई पहचान नहीं करवानी है । मैं वापस जा रहा हूँ" ।

सभी तोतापुरियों ने हुंकार भर कर कहा, "क्या, वापस ?"

तो, वापस भी नहीं जाने देंगे ? मेरे तो हाथ के तोते उड़ गये ।

सरगना ने कहा, "मैं ने कहा न वही आदमी असली है । दस कोस आगे बढ़ आया है । देह में मिट्टी लगा कर बैठा है" ।

"तो कुश्ती ?"

"नहीं तो और क्या ? देहाती समझ कर ठगने चले थे" ।

मेरी कलाई रह-रह कर सरगना की पकड़ में कड़मड़ा रही थी । मैं ने कहा, "कोई ज़बरदस्ती है । मुझे जाने दीजिए" ।

गाँववालों ने कहा, "भागने न पावे । पकड़े रहो" ।

स्वागत उपमंत्री ने कहा, तो मैं ने कहा था न, हमारा तोतापुर अनुमंडल और प्रमंडल के ग्रामों में सर्वोपरि है । बराबर अखबार में खबर छपती है - तोतापुर के पास दिन-दहाड़े हत्या" ।

अंत में मुश्किल से समझौता हुआ । लम्बी कहानी है, क्या कीजियेगा किसी के बेपानी होने की कहानी सुन कर । पच्चीस रुपये तेरह आने बतौर हरजाने के अदा करने का हुक्म हुआ । मेरे पास सिर्फ बीस थे । एक तोतापुरी के पैर में मेरा नया

जूता आ गया, वह ले गया । गाँव के सरगना हल्ला मचाना शुरू किया, "वाह, वाह । जिस गाँव में चोर पकड़ा गया, वहाँ के लोगों को कुछ नहीं । नहीं छोड़ेंगे आसामी को पकड रे" सरगना ने धन्नू के हाथ से मेरी झोली ले ली"[1] ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "धरातल" में भी "मैं" को सह भागी के रूप में चित्रित किया है - "मैं गालियाँ बकने में ज़रा कमजोर हूँ । मुझे औरतों की गालियाँ बेढ़ंगी और बकवास सी लगती है । इन पर मैं अक्सर सोचती रही हूँ । गुस्सा चुकने का यह एक तरीका हो सकता है, मगर गंदा है । मैं चाह कर भी इस में कूद नहीं पाती । एकाध बार कूदी थी । पर बुरी तरह पराजित हुई । मुझे गालियाँ गढना आता ही नहीं"[2] ।

"मार्कण्डेय की" बादलों का टुकड़ा" नामक कहानी में प्रथम पुरुष पात्र की प्रस्तुति है - "उसे इन बादलों में जाने क्या दिखा - कहना मुश्किल है लेकिन वह सहसा उठ खड़ा हुआ और अंदर आँगन में जाते-जाते बोला, "मुझे एक लोटा पानी दो, और हाँ, कुनाई को देखना । मैं अभी बसगाँव जा रहा हूँ, वहाँ सरकारी ठेके पर बाँध बन रहा है"[3] ।

प्रथम पुरुष की तटस्थ भूमिका केलिए उदाहरण इस प्रकार है - "इन्हें भी इन्तजार है" कहानी में शिवप्रसाद सिंह ने प्रथम पुरुष "मैं" को इस प्रकार प्रस्तुत किया है - "मैं कनखी से देख लेता हूँ । कबरी वैसेही घुटने पर मुँह टिकाये । एकटक लाइन की समानान्तर पटरियों को देख रही है, ..."[4] । यहाँ "मैं" केवल तटस्थ दर्शक ही है, सहभागी नहीं ।

---

1. आदिम रात्री की महक, पृष्ठ 86-87.
2 भेड़िये, पृष्ठ 95.
3. बीच के लोग, पृष्ठ 32.
4. इन्हें भी इन्तजार है, पृष्ठ 73.

मार्कण्डेय की "सात बच्चों की माँ" नामक कहानी में प्रथम पुरुष का प्रयोग यों किया है - "तुमने अच्छा नहीं किया देवी ।" मैं ने दुखी हो कर कहा और उठ कर चलने को तैयार हो गया । दिन बहुत चढ़ आया था और सर्दी भी कुछ कम हो गयी थी । वह भी उठ खड़ा हुआ । मैं ने देखा, उस का शरीर कुछ कड़ा हो गया था; फिर भी वह काँपता जा रहा था ।

मैं ने कहा, "तो यहाँ क्यों पड़े रहते हो"[1]।

"नेपथ्य का अभिनेता" कहानी में रेणु ने प्रथम पुरुष को केवल निरीक्षक के रूप में यों प्रस्तुत है - "मैं ही नहीं, उसे देख सभी परिचित अपरिचित अकचका कर रुक जाते हैं,। कोई-कोई उस के टेबुल के निकट जा कर कुछ कुछ पूछ भी लेता है और मैं यह भी देखता हूँ कि वह घोर नाटकीय ढंग से छोटा-सा उत्तर दे देता है"[2] ।

इन दोनों रीतियों से अंचल का भरा-पूरा चित्रण उपलब्ध होता है । दो अलग अलग भूमिकाओं में पात्रों को प्रस्तुत करने के पीछे यही शिल्पगत आग्रह लिया हुआ है ।

अन्य शैल्पिक प्रवृत्तियाँ

नयी कहानी के अध्ययन के दौरान इस बात का अन्दाज़ा हो जाता है कि शिल्प की प्रयोग-परता की दृष्टि से भी वह संपन्न है । आँचलिक प्रवृत्ति के उन्तर्गत शिल्प की उतनी प्रयोगपरता नहीं दिखाई पड़ती है । लेकिन कुछ कहानियों में नए-नए शिल्पगत प्रयोगों के लिए कुछ उदाहरण मिल जाते हैं । इसप्रकार की शिल्प प्रवृत्ति को रूपात्मक प्रयोग के अंतर्गत रखा जा सकता है । रेणु की "अपनी कथा" को उदाहृत किया जा सकता है जिस में उन्होंने सदस्यों को संबोधित करने की रीति को अपना कर एक

---

1. पान-फूल, पृष्ठ 129.
2. अच्छे आदमी, पृष्ठ 109.

नये शिल्प का परिचय दिया । "पहले ही कह चुका हूँ, उस "गब्बे हाउस" का एक पिद्दी-सदस्य यह अपात्र भी था । मेरी पात्रता परखने केलिए या संचालकीय विधान के अनुसार एक दिन मुझे हुक्म हुआ - आज "हाउस" तुम्हारा "गब्बे" सुनेगा ।

हुक्म तो नहीं, लगा पेड़ से बेल गिरा । संचालक महोदय हुक्म देने के बाद घड़ी देख रहे थे ।

अपात्र ने अपनी पात्रता प्रमाणित करने केलिए कथा शुरू कर दी । भूत से हाथ मिलाने की कथा । - बतौर शीर्षक के मुँह से पहले ही निकल गया । हाथी के दाँत की तरह ?"[1]

"प्रतिनिधि चिट्ठियाँ" नामक कहानी पाँच चिट्ठियों के रूप में कहानी की रचना हुई है । कहानी के प्रारंभ में कोष्ठकों में विवरण प्रस्तुत करना, अलग-अलग तिथियों में अलग-अलग व्यक्तियों के नाम पर पत्र लिखाना आदि शिल्पगत प्रयोग केलिए उदाहरण हैं । कुछ पत्रों के अंत में नोट देने की प्रविधि भी है । उक्त कहानी के प्रारंभ में कोष्ठका में एक विवरण यों दिया हुआ है प्रतिनिधि चिट्ठियाँ-जनता के प्रतिनिधि द्वारा लिखी गयी - अपने प्रतिनिधियों के नाम । पत्र की भाषा केलिए लेखक, सम्पादक और पाठक-कोई जिम्मेदार नहीं । राजभाषा का व्यवहार, जिसे जैसे जी में आये, कर सकता है - छोटन बाबू की राय है । फिर भी, यथा-साध्य सम्पादन कर दिया गया है । -लेखक "[2] उदाहरण के रूप में एक पत्र भी दिया गया है -

---

1. एक श्रावणी दोपहरी की धूप, पृष्ठ 34.

2. अच्छे आदमी, पृष्ठ 137.

शहर अजीमाबाद

16 अगस्त 1962

आदरणीय काले बाबू,

आप हम को हमेशा विरोधी साइड का आदमी मानते आये हैं । लेकिन हमारे "छेत्र" के "साहित्य सम्मेलन" के अवसर पर आप ने देखा ही होगा कि हमारे छेत्र में हमारा कितना प्रभाव है । आप को इस सबब से यह पत्र लिख रहा हूँ कि आप मुझे विरोधी साइड का आदमी मत मानिए । मैं लाल बाबू का जैसा सेवक वैसा आप का सेवक । आप कहियेगा तो वक्त पड़ने पर एक दर्जन काया, दस दर्जन "कार्यकर्ता" मँगाकर सेवा में तैनात कर सकता हूँ । आप चाहेंगे तो लाल बाबू का साइड़ छोड़ कर-बजाप्ता आप के साइड़ में आ सकता हूँ । हम बहुत कम पढ़ा-लिखा आदमी हैं । लेकिन एक बार जिस से दोस्ती करते हैं, निभाना जानते हैं ।

योग्य सेवा

भवदीय

छोटन बाबू एम.एल.ए .[1]

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में भी ऐसे कुछ नूतन प्रयोग प्राप्त होते हैं । एक कहानी के अन्तर्गत एक से अधिक कहानियों को समन्वित करने का शैल्पिक प्रयोग शिवप्रसाद सिंह ने किया है । दो कहानियों के माध्यम से एक तीसरी कहानी का प्रयोग, हिन्दी कहानी साहित्य में शिवप्रसाद सिंह ने ही शुरू किया है । इस केलिए एक अच्छा उदाहरण उनकी "मैं कल्याण और जहाँगीरनामा" शीर्षक कहानी है । इस में तीन कथायें हैं । पहली कथा एक होस्टल के नौकर चरन की है । दूसरी गाँव के

---

1. अच्छे आदमी, पृष्ठ 143-44,

लुहार कल्याण और एक अधेड़ विधवा औरत की है । तीसरी होस्टल में रहनेवाला रिसर्च स्कोलर दयानाथ की है । इसी प्रकार "बरगद का पेड़" शीर्षक कहानी में भी तीन कथायें हैं - विनय और उस की प्रेमिका शीला की, शीला और उस के पति सोरी की तथा चंपक के ठाकुर की लड़की चंपा और उस के पति राजकुमार वीरेन्द्र की ।

रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय ने पत्र शैली तथा डायरी शैली में कहनियाँ लिखी हैं । रेणु की "प्रतिनिधि चिट्ठियाँ" पत्र शैली में तथा "जीत का स्वाद" डायरी शैली में लिखित कहानियाँ हैं । शिवप्रसाद सिंह की "मुरदासराय", "अंधकूप" तथा "हाथ का दाग" तथा मार्कण्डेय की "प्रिया सैनी" पत्र शैली में लिखी गयी कहानियाँ हैं । शिवप्रसाद सिंह का "प्लास्टिक का गुलाब" डायरी शैली में लिखी गयी है । इस कहानी में विभिन्न तिथियों में घटित तथा घटनाओं का लेखा-जोखा है ।

<u>भाषा</u>

आँचलिक कहानी में ग्रामीण या देशज भाषा का प्रयोग होता है । जहाँ देहाती पात्रों को अवतरित करने का अवसर आ जाता है वहाँ देशज भाषा का प्रयोग अनिवार्य होता है । इस दौर में लिखी हुई आँचलिक कहानियों में नयी भाषिक संरचना का आभास मिलता है । इस का कारण यही है कि आँचलिक कहानीकारों ने पात्रोचित या प्रसंगोचित भाषा का प्रयोग न करके ग्रामीण जीवन की सहज स्थितियों को भाषा के माध्यम से संरक्षित करने का कार्य किया है ।

आँचलिक कहानीकारों की मूलदृष्टि तथा उन का शिल्पगत विन्यास यथार्थ-वादी है । अतः यथार्थोन्मुखी भाषा का प्रयोग ही उन में प्राप्त किया जा सकता है । परन्तु भाषा को उस की मूल स्थिति में पहचानने के कारण भाषा को सहज जीवन के साथ मिलाने के कारण अथवा भाषा के मूल स्रोत को पहचानने के कारण आँचलिक रचनाओं में भाषा का नया संदर्भ उसे मिलता है । आँचलिक कहानीकारों को अंचल की तमाम गतिविधियों का वर्णन करना पड़ता है । वर्णन केलिए विवरणात्मक भाषा का ही प्रयोग हो सकता है । लेकिन आँचलिक कहानीकारों ने विवरणात्मक भाषा में से सूक्ष्म आँचलिक स्थितियों को गढ़ने का कार्य किया है जो कि नई भाषा दृष्टि केलिए उदाहरणहहै । "गाँव के बदलते हुए परिवेश और रिश्तों को पकड़ पाने केलिए जरूरी है कि गाँव के उन खास शब्दों को पकड़ा जाय जिन की जड़ें देश की माटी में बहुत गहराई तक धँसी हुई हैं । ग्रामीण मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों के संदर्भ की समझदारी से आधुनिक परिवेश से जोड़ कर कहानी में प्रयुक्त किया जाय । यह तभी संभव है जब कि लेखक को उस परिवेश की खासी समझ हो । खासी समझ ही नहीं, उस ज़िन्दगी के साथ साझेदारी भी है और पूरी संवेदना के साथ हो या कि लेखक उस परिवेश की ज़िन्दगी का सह भोक्ता/सहयात्री भी हो"[1] ।

ठेठ शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का वातावरण सृजित करने का कार्य इन कहानीकारों ने नहीं किया है बल्कि ठेठ शब्दों और मुहावरों को आँचलिक स्थितियों के साथ जोड़ने का उपक्रम अपनाया है । भिन्न-भिन्न कहानियों से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं - "मैथिल ब्राह्मणों, कायस्थों और राजपूतों के यहाँ विदापतवालों की बड़ी इज्ज़त होती थी । अपनी बोली मिथिलाम - में नटुआ के मुँह से "जनम अवधि हम रूप निहारल" सुन कर वे निहाल हो जाते थे । इसलिए

---

1. गवाह, लेख - हिन्दी कहानी, गाँव और भाषा का सवाल, बलराम, जुलाई-आगस्त-सितंबर 1979, पृष्ठ 16.

हर मंडली का "मूलगैन" नटुआ की खोज में गाँव-गाँव भटकता फिरता था - ऐसा लड़का, जिसे सजा-धजा कर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाये ।

"ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है । है न ?"

"मधुकान्त ठाकुर की बेटी की तरह..... ।"

"ना । छोटी चम्पा - जैसी सूरत है ।"[1] इसी प्रकार "तीसरी कसम" का एक भाषिक सन्दर्भ इस प्रकार है - "हीराबाई लम्बी साँस लेती है । हिरामन के अंग-अंग दे उभंग समा जाती है ।

"तुम तो उस्ताद हो मीता ।"

"इस्स ।"

आसिन - कातिक का सूरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है । सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुँचना है, हिरामन अपने बैलों को समझा रहा है - "कदम खोल कर और कलेजा बाँध कर चलो ए छि: छि: । बढ़के भैयन । ले- ले - ले - ए है - य ।"

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा । हर ललकार के पहले वह अपने बैलो को बीती हुई बातों की याद दिलाता - याद नहीं, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थीं ; सब को कैसे मात किया था । हाँ, वही कदम निकालो । ले - ले - ले । ननपुर से फार बिसगंज तीन कोस । दो घंटे और ।

ननपुर के हाट पर आज कल चाय भी बिकने लगी है । हिरामन अपने लोटे में चाय भर कर ले आया । कम्पनी की औरत को जानता है वह, सारा दिन, घड़ी-घड़ी भर में, चाय पीती रहती है । चाय है या जान ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 12-13.

हीरा हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही है - "अरे, तुम से किस ने कह दिया कि क्वारे आदमी को चाय नहीं पीना चाहिए ?"

हिरामन लजा गया । क्या बोले वह ? लाज की बात । लेकिन वह भोग चुका है एक बार । सरकस कम्पनी की मेम के हाथ की चाय पी कर उस ने देख लिया है । बड़ी गरम तासीर !

"पीजिए गुरुजी !" हीरा हँसी ।

"इस्स !"

ननकपुर हाट पर ही दीया-बाती जल चुकी थी । हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका दिया । आजकल शहर से पाँच कोस दूर के गाँववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं । बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़ कर चालान कर देते हैं । बारह बखेड़ा ।

"आप मुझे गुरुजी मत कहिए" ।

"तुम मेरे उस्ताद हो । हमारे शास्तर में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरु और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद" !

"इस्स ! शास्तर-पुरान भी जानती है ! मैं ने क्या सिखाया ? मैं क्या

हीरा हँस कर गुनगुनाने लगी - "हे अ - अ - अ - सावना - भादवा के - र !

हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया । इस्स ! इतना तेज़ जेहन ! हू - ब - हू महुआ घटवारिन !"[1]

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "तकावी" में ग्रामीण भाषा का प्रयोग यों हुआ है - "शंकर सिंह चुप हो गये । पत्नी ने ठीक बात कही थी । शंकर सिंह के घर में खाने-पीने की दिक्कत नहीं है । पिछले साल का चावल औंत ब्योंत कर के इस साल भी चल जायेगा । साल लगते-लगते नई फसल आ जायेगी । मगर सारा गाँव तकावी ले रहा है । जिसे देखो मोटर पकड़कर या पैदल ही रपटता हुआ चला जा रहा है सैयद-राजे । शाम होते-होते लोग लौटने -

"का चाचा ?"

"ड़ेढ़ सौ रुपिया भइया" ।

" - हूँ"

"का हो मंगरू ?"

"चालिस ठे मालिक" ।

"अभी काफी, चिरौरी पर" ।

"अच्छा !"

- शंकर सिंह सुनते और चुप रह जाते । अब देवकरन चाचा को तकावी की क्या ज़रूरत थी भला ? बाकी नाहीं, जब मिल रही है तो लाना चाहिए । और तकावी लेने में शरम कैसी भाई ? किसी ऐसे-वैसे के सामने तो हाथ फैला रहे हैं सरकार दे रही है, सरकार लेगी भी । तो क्या हुआ ? इस समय रुपयों का कसाला है । हाथ-पैर बँधे हैं । अगहनी मारी गयी है । बाढ़ का पानी उतर जायेगा । माटी खूब गहवर हो कर फूल जायेगी । वह गेहूँ लगेगा कि देखवैया लगेंगे, हाँ । बस, दे देंगे ।

---

1. ठुमरी, पृष्ठ 123-24.

शंकर सिंह रात का खाना खाने बखरी पहुँचे । रामू सो रहा था । रामू की माँ जाग रही है । क्या करे बिचारी ? जाने कितने दिन हुए एक ठो नयी साड़ी भी तो नहीं दी इसे । दिन-भर काम करते-करते थक जाती है । अचानक शंकर सिंह रामू की माँ के बारे में ममता से भर उठते हैं । उन को लगता है कि वह जो आँगन के कोने में बैठी सूप से चावल फटक रही थी, उनकी पत्नी है । वह जो एक फूल होता है कटस-रैया का, हाँ आज तो उसे बाँहों में भरते वैसी ही गन्ध आती है । पर एक जमाना था । शरीर केंचुल छोड़े हुए नागिन की तरह हाथ से बिछल जाता था । होठों के ठण्डे और गालों के गरम स्पर्श से लगता था जैसे किसी ने करेम के बैंगनी फूल नाक के पास रख दिये हों"[1] ।

रेणु और शिवप्रसाद सिंह की तुलना में मार्कण्डेय की भाषा अधिक ठेठ लगती है । एक उदाहरण इस प्रकार है - "सुन लेव फउदी दादा, बुझावन महतो के विचार । रघुवा, लूस कभी-कभी ठीक बात करता है । उस ने परसों मिठवा के नीचे पुरवट हाँकते हुए अपने बैलों के पीठ से नार उतार कर उन्हें खड़ा कर दिया और पउदर में लकीर खींच कर कुछ कहा । मुदा बेटवा की किरिया धराये है । कहा है, जो सच न हो तो बकड़ी केमूत से मूछ मुड़वा दूँगा" । रामहरख उत्तेजना में बोल रहे थे । फउदी ने उन्हें फिर डाँटा, "बड़े बेसहूर हो भाई कितनी बार तुम्हें समझाया कि चेत से बात बोला करो । लेकिन तुम हो कि आँवा की तरह धधकने लगते हो । तुम्हारी बात का मतलब तो यह हुआ कि रघुवा ने बुझावन के घर में हुई बैठक को ले कर ही कुछ बात कही है । फिर लड़के की किरिया कहाँ गयी" । फउदी दादा बात को उस जगह से हटा कर बुझावन को कुछ हल्का करना चाहते थे, लेकिन इस से उस पर भार और भी बढ़ गया और पूरी चर्चा एक खास केन्द्र पर टक्कर मारने लगी । हुड़दंगी ने बोड़ी बैल का काम किया, "मतलब इ भया, दादा कि तुम कोल्हू के बैल होय चुके हो और बुझावन महतो कन्धे में नया जुआ ले रहे हैं"[2] ।

---

1. मुरदा सराय, पृष्ठ 144-45.

2. बीच के लोग, पृष्ठ 41.

इस में कोई संदेह नहीं है कि आँचलिक कहानीकारों ने भाषा का इस्तेमाल उस की वास्तविक स्थिति में किया है । आँचलिक कहानियाँ मुख्यत: यथार्थवादी शिल्प में संरचित हैं, जिस का विवेचन हो चुका है । चित्रणात्मकता उस की अनिवार्य प्रवृत्ति है । इस सन्दर्भ में आँचलिक कहानी के भाषिक सन्दर्भ को देखना चाहिए । आँचलिक कहानी की भाषा यथार्थवादी शिल्प के अनुकूल है । पर उस की एक और विशेषता है वह उस की जीवन्तता है । ऊपर भाषिक सन्दर्भ के जितने उदाहरण दिए हुए हैं उन में इस जीवन्तता का अनुभव किया जा सकता है । ग्रामीण जीवन की भीतरी स्पन्दन को पहचानते हुए, ग्रामीण मानसिकता की सूक्ष्मता को आत्मसात करते हुए आँचलिक कहानीकारों ने इस जीवन्तता को संप्रेषित करने का कार्य किया है । इसलिए आँचलिक भाषा का एक नया संस्कार भी हिन्दी कहानी में विकसित हुआ है ।

आधुनिक कहानी का प्राविधिक संस्कार बदल गया है । आँचलिक कहानी भी एक नये प्राविधिक संस्कार से हमें परिचित कराती है । मोटे तौर पर आधुनिक कहानी के अध्ययन के दौरान शिल्प को कथ्य से अलगाकर नहीं देखा जाता है । कहानी को रचना की एक मूल स्थिति के रूप में ही देखा जाता है । उस की वस्तुगत विशेषताओं को अलग से देखने की बात आधुनिक विश्लेषण की रीति नहीं है । इस का एक उदाहरण यह दिखाया जा सकता है कि कभी कभी एक कहानी में भाषा महत्वपूर्ण हो उठती है । अर्थात् उस का भाषिक सन्दर्भ विषय वस्तु के विभिन्न कोणों का स्पर्श करने लगता है और विषयवस्तु को गहरानेवाला पक्ष भाषिक संदर्भ ही होता है । आँचलिक कहानियों केलिए भी यह बात सही सिद्ध होती है । इस प्रकार देखा जाय तो कहानी के क्षेत्र में कियेगये रूपात्मक प्रयोगों की भी प्रासंगिकता है । विषयवस्तु

की सामान्यता और संकीर्णता के अनुरूप उस की प्राविधिक स्थिति भी बदलती है । अत: शिल्प का अध्ययन कहानी के बाह्याकार का अध्ययन न हो कर उस के प्राविधिक संस्कार का अध्ययन है ।

जहाँ तक आंचलिक कहानियों का संबन्ध है और विशेष रूप से रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों का संबन्ध है, कहानी के शिल्प की दिशा में उन के स्वच्छन्द ग्रामीण विवरणों और यथार्थवादी प्रकरणों के बीच दर्शाई गई ग्रामीण अस्मिताओं के रचनात्मक भागों का विशेष महत्व है । इसलिए आंचलिक कहानीकारों के रचना शिल्प को प्रेमचंदीय रचनाशिल्प के पुनप्रस्तुतीकरण के रूप में देखना उचित नहीं होगा । प्रेमचन्दीय दृष्टि से आंचलिक कहानी को अलगानेवाली बात उस की अन्दरूनी लिरिकल प्रवृत्ति है । अधिकतर आंचलिक कहानियाँ यथार्थवादी होते हुए भी ग्रामीणता की संगीतात्मकता को पहचानने में समर्थ निकली हैं ।

उपसंहार

उपसंहार

आँचलिकता नयी कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । लेकिन प्रवृत्ति विशेष तक ही वह सीमित नहीं है । हिन्दी कथासाहित्य में एक नये आंदोलन के रूप में उस का उन्मेष और उत्कर्ष हुआ । आँचलिक कहानी को एक अलग धारा के रूप में देखने और पहचानने का कार्य भी शुरू हुआ । इस कारण से नयी कहानी के दौर के बाद भी आँचलिक धारा सशक्त ही रही है और इस दिशा में कई श्रेष्ठ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं । नये रचनाकारों ने आँचलिकता को नई दृष्टि से आत्मसात किया और आधुनिक अवबोध के अनुरूप उसे परिवेश सहित प्रस्तुत करने का कार्य किया है ।

यह बात नहीं है कि आँचलिक या ग्रामीण परिवेश मात्र स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों में उपलब्ध होता है । उस से पहले भी हमें ग्रामीण पात्र, ग्रामीण जीवनस्थितियाँ और ग्रामीण भाषा का वातावरण उपलब्ध हुआ था । इस संदर्भ में हम प्रेमचन्द का परामर्श अक्सर करते हैं । लेकिन प्रेमचन्द पूर्णत: आँचलिक या ग्रामीण कहानीकार नहीं हैं । प्रेमचन्द की रचनादृष्टि मात्र ग्रामीण जीवन से संबंधित भी नहीं है । यही सही है कि उन्होंने ग्रामीण वातावरण की अनेक कहानियाँ लिखी हैं । लेकिन प्रेमचन्द ने अपने को ग्रामीण वातावरण से जोड़ कर सीमित नहीं किया । वस्तुत: उन्होंने हमारे समाज तथा इतिहास का अध्ययन किया था । गाँवों के जीवन से निकट परिचय रखने के कारण उन्होंने ग्रामीण जीवन की सामाजिक स्थिति पर सोचा, विचारा और कहानियाँ लिखीं । उन के सूक्ष्म इतिहास दर्शन की अभिव्यक्ति है "पूस की रात", "कफ़न" तथा "ठाकुर का कुआ" नामक कहानियाँ । अत: प्रेमचन्द आज भी उन के गहन अवबोध केलिए प्रासंगिक हैं, न कि उन के ग्रामीण मोह के कारण । इसलिए यद्यपि प्रेमचन्द ने हमें ग्रामीण परिस्थितियों से परिचित कराया,

ग्रामीण व्यक्तियों के दुख-दर्द की कहानियाँ बताईं, फिर भी आज वे हमारे सामने आँचलिक या ग्रामीण कहानीकार के रूप में उपस्थित नहीं हैं। एक व्यापक अर्थ में आँचलिकता की शुरुआत प्रेमचन्द से मानी भी जा सकती है। आँचलिकता का प्रारंभ प्रेमचन्द से मानने वाले आलोचक भी हैं। साथ ही प्रेमचंद के युग में तथा बाद में प्राप्त इनी-गिनी आँचलिक रचनाओं के आधार पर वे इस के विकास को भी लक्षित करते हैं। पर यह दृष्टिकोण संगत प्रतीत नहीं होता।

स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानी में जिस प्रकार आँचलिक और ग्रामीण स्पंदन शुरू हुआ है, उस का एक अलग और अर्थवान परिवेश है। अनेकों शहरी जीवन की कहानियों के बीच स्वच्छ ग्रामीण जीवन की कहानियों की अपनी ऊष्मलता थी। एक नया परिवेश हिन्दी कहानी में विवृत हो रहा था। नयी कहानी ने परिवेश की समग्रता पर बल दिया था। ग्रामीण परिवेश उस की समग्रता का एक इच्छित पक्ष है। इस अर्थ में हम यह भी बता सकते हैं कि आँचलिक कहानी नई कहानी की एक अन्वेषित दिशा है। नई कहानी के इस अन्वेषित परिवेश की अपनी विशिष्टता भी है। ग्रामीण जीवन के एक नये संस्कार और उस के समाजशास्त्र को ले कर आँचलिक कहानी नई कहानी के प्रारंभिक दौर में प्रकट हुई थी।

यह तो ज़रूर है कि इस दौर में ऐसी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं कि जिन्हें हम मात्र ग्रामीण वातावरण की कहानियाँ बता सकते हैं। जब एक प्रमुख प्रवृत्ति एकदम विशिष्ट हो जाती है, अधिकाधिक कहानीकार उस दिशा में रचनाशील होते हैं तो यह सहज और स्वाभाविक बात है। सभी कहानियों में समान ढंग की ग्रामीणता की गहरी दृष्टि प्राप्त होती भी नहीं है। जिन रचनाओं में गहरी दृष्टि मिलती, आँचलिकता की परिभाषा उन श्रेष्ठ कहानियों के आधार पर होती है। पच्चासोत्तर

युग में इस प्रवृत्ति ने हिन्दी कहानी को विस्तार और गहराई दी है । हिन्दी कहानी की संवेदना को एक नया संस्कार प्राप्त हुआ है । हिन्दी कहानी के इस दौर में ऐसी रचनाओं के माध्यम से लोकजीवन का एक व्यापक परिवेश खुल गया था । आँचलिक संस्कार और आधुनिक दृष्टि का सृजनात्मक समन्वय ऐसी रचनाओं से संभव हुआ । निर्विवाद रूप से यह बताया जा सकता है कि हिन्दी कहानी में आँचलिक कहानियों की अपनी अलग अस्मिता और मूल्य है ।

फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय सन् 1950 के बाद हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आए हुए रचनाकार हैं । हिन्दी कहानी की आँचलिक धारा के ये प्रथम प्रयोक्ता और प्रवक्ता हैं । आँचलिक व ग्रामीण कहानी को सुस्थापित करने में इन तीनों का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है । इस कारण से आँचलिक कहानी की प्रारंभिक चर्चा इन की रचनाओं के माध्यम से ही होती है । यहीं नहीं आँचलिकता का सैद्धान्तिक निरूपण, कई प्रकार की भिन्नताओं के बावजूद, उन की रचनाओं के उपलक्ष्य में किया जा सकता है । जिस क्षण हम आँचलिक कहानी को प्रेमचन्द से अलगाते हैं, उसी क्षण हमें यह अनुभव होता है, कि आँचलिक कहानियों का प्रादुर्भाव रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय से शुरू होता प्रतीत होता है । अर्थात् आँचलिक कहानी की अधिकाधिक संभावनाएँ इन की रचनाओं में विवृत हुई हैं । इन की आँचलिक कहानियों ने राष्ट्रीय अस्मिता को भी अधिक सुदृढ़ बनाया है । प्रेमचन्द ने उसे सामाजिक संदर्भ में परिपोषित किया है तो आँचलिक कहानीकारों ने उसे ग्रामीण संदर्भ में समृद्ध किया है, लोकचेतना से स्वच्छन्द बना दिया है । आँचलिक संस्कृति को अपनी रचनाओं में पहचानने के कारण राष्ट्रीय अस्मिता का एहसास इन में स्पष्ट है ।

तीन। कहानीकारों की रचनाओं को समकक्ष रख कर देखते समय कई तुलनीय और अतुलनीय पक्ष हमारे सामने आते हैं । इस में कोई संदेह नहीं है कि तीनों में रेणु अधिक चर्चित और स्वीकृत कहानीकार हैं । आंचलिकता पर विचार करते समय आलोचकों ने रेणु की कहानियों को अधिक समर्थित किया है । लेकिन रेणु की विशिष्टता को स्वीकार करने के साथ-साथ यह भी एक प्रमुख तथ्य है कि शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय ने आंचलिक कहानी को अधिक विस्तृत और समृद्ध किया है । पिछड़ी जाति के कई प्रकार के ग्रामीण लोगों से संबंधित कहानियाँ शिवप्रसाद सिंह ने लिखी हैं । मल्लाहों, नटों, मुसहरों, कुम्हारों, खंजड़ों और डोमों तथा हिजड़ों और उन की जीवन रीतियों का भरा-पूरा संस्कार हमें शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में प्राप्त हुआ है । मार्कण्डेय ने कृषकों के जीवन को प्रमुखता दी । बदलते हुए ग्रामीण वातावरण में किसानों की नई समस्याओं को उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया । हिन्दी कहानी में ऐसे गाँव और गाँववाले अधिकाधिक परिचित से लगने लगे । एक ओर उन की आर्थिक कठिनाइयाँ हैं तो दूसरी तरफ़ उन की बेफ़िक्री से, अलहड़ता से भरा जीवन है । उन के संघर्ष को चित्रित करने के साथ उन के जीवन में व्याप्त संगीत को इन आंचलिक कहानीकारों ने चित्रित किया है । जिस प्रकार आंचलिकता का क्षेत्रीय विस्तार इन तीनों कहानीकारों के माध्यम से अधिकाधिक बढ़ता गया उसी प्रकार अपनी अलग-अलग अस्मिताओं के साथ उन की रचनाएँ स्वीकृत भी हुईं ।

रेणु की कहानियों का रचना संसार उन की निजता और आत्मीयता के कारण विशिष्ट है । उन की कहानियों में ग्रामीणता या आंचलिकता मात्र वातावरण नहीं है, बल्कि वह एक जीवन्त स्थिति है । सामान्य ग्रामीण जीवन के एक छोटे-से प्रसंग को ले कर लिखी हुई "पंचलाइट" नामक कहानी में जिस प्रकार यह जीवन्त ग्रामीण व्यवस्था उभरी है, वह इसलिए उल्लेखनीय है कि रेणु ने एक सस्ते मनोरंजन के प्रसंग

को ग्रामीण अवस्था में डुबोकर रचनात्मक रूप प्रदान किया है । यह बात उन की बहुचर्चित कहानी "तीसरी कसम" केलिए भी लागू है । लेकिन उस में जीवन के कुछ त्रासदपूर्ण संदर्भों को भी उन्होंने अंकित किया है । "पंचलाइट" और "तीसरी कसम" के बीच का सृजनात्मक आयाम (क्रियेटिव रेंज) अलग-अलग स्तर का है । परन्तु दोनों में आंचलिकता की स्थिति तथा कहानी की मूल संवेदना के साथ उस का तादात्म समान रूप से वर्तमान है ।

रेणु ने अपने अंचल को, पूर्णिया जिले को, मेरीगंज गाँव को तन्मयता के साथ चित्रित किया है । इसलिए रेणु की कहानियों में गाँव गतिशील हैं । उन की कहानियों में ग्रामीणता अकृत्रिमता के साथ वर्तमान है । ग्रामीण जीवन के साथ रेणु जिस प्रकार घुलमिल गये थे उस का रचनात्मक विकास उन की कहानियों में भी लक्षित होता है । अंचल का चाहे एक सामान्य विवरण हो, किन्हीं पर्वों या उत्सवों का वर्णन हो, ग्रामीण प्रकृति की स्वच्छन्दता हो, या उन के ग्रामीण निम्नजाति के पात्र हो, रेणु का स्वर उन के अन्तरंग में से सुनाई पड़ता है । अर्थात् रेणु अपनी कहानियों में मात्र एक निरीक्षक नहीं बल्कि भोक्ता हैं, सहज सहभागी हैं ।

शिवप्रसाद सिंह की पहली कहानी ही ध्यानाकर्षक रही और उस में उन्हों ने ग्रामीण मानसिकता का स्वच्छन्द पक्ष व्यंजित किया है । इसलिए उन की "दादी माँ" कहानी की अपनी मौलिकता थी । ग्रामीणता का यह पक्ष उन की अन्य बहुत-सी रचना में भी प्राप्त है । इस के अलावा उन का ग्रामीण मोह भी प्रखर है । "धारा" तथा "किस की पाँखें" जैसी कहानियों में इस के विभिन्न पक्ष प्राप्त किये जा सकते हैं । उन के इस ग्रामीण मोह के साथ कई स्मृतियाँ और कई व्यक्तिचित्र आदि सम्मिलित हैं । सब से पहले उन्होंने व्यक्तिचित्रों से संबंधित कहानियाँ लिखी हैं, बाद में बदलते हुए ग्रामीण वातावरण के आधार पर कहानियाँ रचीं । लेकिन हर बार उन्होंने

सामाजिक अन्तर्विरोध पर ध्यान दिया । अत: उन की कहानियों में गाँव के लोगों को आर्थिक विपन्नता और अन्य प्रकार को कठिनाइयों पर अधिक बल है । उपेक्षित वर्गों पर कहानियाँ लिखने के पीछे उन की यही दृष्टि रही है । शोषण का जो षड्यंत्र ग्रामीण जीवन में व्याप्त है, उस के संबंध में संकेत उन की कई कहानियों में प्राप्त होते हैं । अपनी कहानी "धारा" का विश्लेषण भी शिवप्रसाद सिंह ने इसी दृष्टि से किया है । यह विश्लेषण सिर्फ "धारा" केलिए ही प्रासंगिक नहीं, बल्कि उन की अन्य अनेक कहानियों केलिए भी प्रासंगिक है । शिवप्रसाद सिंह ने ग्रामकथा को सुस्थापित किया । ग्रामकथा पर लिखे उन के निबन्ध भी महत्वपूर्ण हैं । शिवप्रसाद सिंह ने निम्न जातीय ग्रामीणों पर भी कहानियाँ लिखी हैं । इस प्रकार ग्रामीण जीवन का एक व्यापक संदर्भ हमें प्राप्त हुआ है ।

मार्कण्डेय की कहानियों केलिए एक सरलीकृत परिभाषा दें तो हम कह सकते हैं कि उन की कहानियाँ कृषक जीवन की व्यथा-कथाएँ हैं । इस अर्थ में उन का संवेदनात्मक संबंध प्रेमचंद की रचनाओं से है । स्वयं मार्कण्डेय ने ऐसा सूचित भी किया है । मार्कण्डेय की कहानियों का प्रमुख पक्ष ज़मीन्दारों और किसानों के बीच का संघर्ष है । लेकिन इस संघर्ष को बिलकुल ही दुखदायी ढंग से उन्होंने चित्रित नहीं किया है । उन के किसान-मज़दूर आदि पात्र शोषण के विरुद्ध खड़े होनेवाले हैं । "बीच के लोग" जैसी कहानियाँ इस केलिए उदाहरण हैं । बदले हुए ग्रामीण वातावरण में ऐसे पात्रों की प्रामाणिकता है । ज़मीन्दारों और किसानों के बीच के संघर्ष को उन्होंने बिना किसी हेर-फेर के साथ चित्रित किया और बदलाव के ऐसे संकेत भी दिए हैं ।

भूमिसमस्या से संबंधित "भूदान" जैसी कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं। इस संदर्भ में यह सवाल उठाया जा सकता है कि प्रेमचंद और मार्कण्डेय में अंतर क्या है ? अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रेमचंद की तुलना में मार्कण्डेय की कहानियाँ ग्रामीण जीवन का दस्तावेज हैं, वह ग्रामीण संघर्ष की यथार्थ कहानियाँ हैं। सामाजिक अनैतिक पर अंकुश लगाते समय भी मार्कण्डेय ने ग्रामीण आबोहवा को बनाये रखने की चेष्ठा की है। ग्रामीणता में डूबी हुई अवस्था, ग्रामीण अस्मिता का उभरता हुआ एहसास तथा ग्रामीण निजता से रची गयी भाषा का प्रयोग कर के मार्कण्डेय ने दुहरे दायित्व को निभाया है। मार्कण्डेय की कहानियों के प्रगतिशील चिन्तन पक्ष को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार आँचलिकता को बनाये रखने के साथ-साथ कहानी को प्रगतिशील तत्वों से ओतप्रोत बनाने का रचनात्मक कार्य भी मार्कण्डेय ने किया है।

तीनों कहानीकारों के रचना संसार में उन के विशिष्ट दर्शन का संस्पर्श अनुभव किया जा सकता है। लेकिन अपने आप को ग्रामीण वातावरण से मुक्त रखने का कार्य किसी ने किया नहीं है। आगे इन में दर्शित कुछ तुलनीय पक्षों पर विचार किया जा सकता है।

व्यक्तिचित्रों के माध्यम से ग्रामीण जीवन की करुणाद्रता का अंकन तीनों में परिलक्षित है। उदाहरणार्थ रेणु की "टेस", "तीसरी कसम" "लाल पान की बेगम", शिवप्रसाद सिंह की "दादी माँ" "टेऊ दादा", "उपाधायिन मैया", "धारा", तथा मार्कण्डेय की "गुलरा के बाबा", "जूते", "हंसा जाइ अकेला" आदि। इन सभी कहानियों में ग्रामीण पात्रों का सहज खुलापन प्राप्त होता है।

शोषण के विविध रूप को तीनों रचनाकारों ने प्रस्तुत किये हैं - "सिरपंचमी का सगुन", "प्रतिनिधि चिट्ठियाँ" (रेणु), "आर पार की माला", "माटी की औलाद", "धारा", (शिवप्रसाद सिंह), "आदर्श कुक्कुड़-गृह", "भूदान", "महुए का

पेड़" (मार्कण्डेय)। शोषण का चित्रण प्रस्तुत करना ही उन का वांछित आदर्श नहीं है। विद्रोहात्मक दृष्टिकोण को पुष्ट करने के दौरान उन की कहानियों ने इस प्रवृत्ति को महत्व दिया है। यह दृष्टिकोण उन से अंकित नये अंचलों की बदली हुई अवस्था और ग्रामीणों की नयी आशा-आकांक्षा के अनुकूल ही है।

रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों में राजनीतिज्ञों तथा अन्य अधिकारियों के शोषण के विविध प्रारूप मिल जाते हैं। अनपढ़ ग्रामीणों को लूटना या धोखा देना कठिन कार्य नहीं है। इस दिशा में छोटे-मोटे राजनीतिज्ञों से ले कर बड़े-बड़े नेता लोग, पंचायतों के अधिकारियों तथा सरकारी अफसरों तक होशियार दीखते हैं। रेणु की "पुरानी कहानी नया पाठ", "प्रतिनिधि चिट्ठियाँ", शिवप्रसाद सिंह की "आदिम हथियार", "भड़िये", मार्कण्डेय की "आदर्श कुक्कुड़ गृह", "एक काला दायरा" आदि कहानियों में इस लूट का विस्तार से वर्णन मिलता है। ऐसी कहानियों में भी प्राय: कहानीकारों की मूल दृष्टि ग्रामीण जनता की मजबूरी पर ही पड़ती है। एक ओर गाँव के बदलते हुए वातावरण के चित्र हैं तो दूसरी तरफ़ आर्थिक पिछड़ेपन में जर्जरित किसान-मजदूरों के चित्र भी हैं। इस अन्तर्विरोध को कहानी के माध्यम से चित्रित करने का कार्य तीनों कहानीकारों ने किया है।

हमारे समाज की बहुत बड़ी विडंबना यह कि आज भी नारी प्रताड़ित है। स्त्रियों पर होने वाले शोषण के विविध दृश्यों को भी इन्होंने विस्तृत रूप से चित्रित किया है। रेणु की "विघटन के क्षण", "प्रजा सत्ता", "नैना जोगिन", शिवप्रसाद सिंह की "बरगद का पेड़", "उपाधीइन मैया", "आर-पार की माला", "कर्मनाशा की हार", "केवड़े का फूल", "कहानियों की कहानी", "गंगा-तुलसी",

"रेती", "नन्हो" "बेहया" "टूटे तारे", "अंध कूप", "अरुन्धती", "धारा", "हत्या और आत्महत्या के बीच", मार्कण्डेय की "वासवी की माँ", "सात बच्चों की माँ", "सोहगइला" आदि कहानियाँ इस संदर्भ में प्रमुख हैं ।

प्राकृतिक विक्षोभ के चित्र भी इन में प्राप्त होते हैं जो ग्रामीण भूप्रकृति की सहज स्थिति है । सूखा तथा बाढ़ के अवसरों पर जीवन के साथ संघर्ष करनेवाले कई पात्र इन्होंने सृजित किये हैं । रेणु की "पुरानी कहानी नया पाठ", शिवप्रसाद सिंह की "मुर्गे ने बाँग दी", "आर-पार की माला", "कर्मनाशा की हार" तथा मार्कण्डेय की "घूरा", "दाना-भूसा", आदि इस केलिए अच्छे नमूने हैं ।

ग्रामीणों के जीवन के विविध परिदृश्यों को चित्रित करते समय तीनों ने उन की विशिष्ट आस्थाओं का चित्रण किया है । ये आस्थायें अधिकतर उन के अंधविश्वास हुआ करती है या उन की रूढ़ियाँ हुआ करती हैं, जैसे:- "सिरपंचमी का सगुन", "कालचरित", "कपड़ घर" (रेणु), "बरगद का पेड़", "चितकबरी", "कर्मनाशा की हार", "रेती", "खैरा पीपल कभी न डोले", "अरुन्धती" (शिवप्रसाद सिंह), "नीम की टहनी", "घूरा", "बादलों का एक टुकड़ा" (मार्कण्डेय)।

ग्रामीण परिवेश के चित्रण केलिए रेणु ने "तीसरी कसम", "पुरानी कथा नया पाठ", "दिल बहादुर दा" म" आदि कहानियों में, शिवप्रसाद सिंह ने "मंजिल और मौत", "बिन्दा महाराज" "कहानियों की कहानी", "नन्हो", "इन्हें भी इन्तजार है", "बेहया" आदि में तथा मार्कण्डेय ने "ग्रामों के बच्चे" "हंसा जाइ अकेला" आदि में लोकगीतों का प्रयोग किया है ।

इन आंचलिक कहानीकारों का रचना शिल्प यथार्थवादी है । अपनी कहानियों के संग्रहों में लिखी हुई भूमिकाओं में इन्होंने अपने यथार्थवादी आग्रह को प्रकट किया है

दरअसल नयी कहानी संश्लिष्ट यथार्थ की कहानी है जब कि आँचलिक कहानी में संश्लिष्टता के स्थान पर सपाट यथार्थ का अधिक प्रयोग हुआ है । इस कारण से अपनी कहानियों में ग्रामीण भूभाग का विस्तृत वर्णन और ग्रामीण वातावरण बनाये रखने योग्य कई घटनाओं का अंकन भी उन्होंने किया है ।

वर्णनात्मकता और यथार्थवादिता के बावजूद तीनों की कहानियों में एक विशिष्ट प्रकार की "लिरिसिज्म" (lyricism) की प्रवृत्ति मिलती है । रेणु की "रसप्रिया", शिवप्रसाद सिंह की "मुरदा सराय", मार्कण्डेय की "पान-फूल" आदि में ग्रामीण जीवन के "लिरिकल सौन्दर्य" प्राप्त होता है । इस कारण से इन की कहानियों में प्राय: एक रूमानी वातावरण बना रहता है ।

आँचलिक कहानियों की मूल चेतना तथा उस की प्रासंगिकता लोकचेतना को ले कर है । लोकचेतना का लहराता हुआ अनुभव रेणु, शिवप्रसाद सिंह तथा मार्कण्डेय की कहानियों में बहुधा प्राप्त किया जा सकता है । यह केवल अंचल के बाह्यांकन से संभव नहीं होता, बल्कि अंचल की अन्तरूनी स्थितियों से ही संपूर्ण होता है ।

आँचलिक कहानी के माध्यम से नई भाषिक संवेदना स्वरूपित करने में ये कहानीकार सफल निकले हैं । ग्रामीण व्यक्तियों की भाषा का सामान्य प्रयोग संदर्भ के अनुसार प्रयुक्त करने का यह सामान्य उपक्रम नहीं है । जो परिवेश कहानियों के लिए स्वीकृत है, उस के अनुरूप भाषा की संरचनात्मक क्षमता को पहचानने का कार्य ही इन कहानीकारों ने किया है ।

आँचलिक कहानी लिखते समय जो सहजता और आत्मीयता इन में दिखाई पड़ती है, वह इन्हीं की शहरी जीवन को ले कर लिखी गयी कहानियों में अनुपलब्ध है । आँचलिक जीवन के छोटे-मोटे प्रसंग भी जीवन का एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं । लेकिन इन की शहरी जीवन की कहानियों में न वह विस्तार है, न गहराई ।

इस प्रकार आँचलिक कहानी के इन तीन हस्ताक्षरों की रचनाओं को समीप रख कर देखते समय समानता के अधिकाधिक बिन्दु प्राप्त होते हैं, और असमानता के कुछ बिन्दु भी प्राप्त किये जा सकते हैं ।

शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय की कहानियों की तुलना में रेणु की कहानियाँ संश्लिष्ट यथार्थ की कहानियाँ हैं । चरित्र और परिवेश को समान अनुपात में उन्होंने मिलाया है । इसलिए दोनों की अलग सत्ता का कोई एहसास नहीं मिलता है । इसलिए रेणु की रचनाओं में कभी कोई आँचलिक मिथक, आँचलिक आस्था या आँचलिक विश्वास कहानी के रचना विधान को समेटता दिखाई देते हैं । ऐसे आँचलिक तथ्य शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय में भी उपलब्ध हैं । लेकिन उन्हें यथार्थवादी तरीके से ही उन दोनों ने पुनर्रचित किया है ।

शिवप्रसाद सिंह ने निम्न जाति के उपेक्षित वर्ग के पात्रों पर दर्जनों कहानियाँ लिखी हैं। जातिविशेष के पात्रों पर अन्य दो कहानीकारों ने इतनी कहानियाँ लिखी नहीं हैं ।

संघर्ष का चित्रण मार्कण्डेय की कहानियों में जो प्राप्त होता है वह रेणु या शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में उतना नहीं है । इस अर्थ में मार्कण्डेय की कहानियाँ सामाजिक असंगति की तीव्रता को स्वर बद्ध करनेवाली रचनाएँ भी हैं ।

कुलमिलाकर इन की कहानियों से आँचलिक कहानी की जो सशक्त धारा प्रवाहित हुई, उस का सौन्दर्यशास्त्र जो बना, उस का मूल्य निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है ।

भारत एक कृषिप्रधान देश है । अधिकतर लोग गाँवों में ही बसते हैं । शहरों में आकर बसे हुए लोग भी अपनी ग्रामीण अस्मिता को पूरी तरह छोड़ना नहीं

चाहते हैं । भारतीय मानसिकता को निर्दिष्ट करते समय इस ग्रामीण अस्मिता के विभिन्न स्रोतों को ढूँढ़ लिया जा सकता है । हम अपनी परंपराओं या आस्थाओं में ग्रामीण हैं । हमारी संस्कृति की अधिकतर दिशायें ग्रामीण बोध से युक्त हैं । हमारी वास्तविक कला इस के उदाहरण ही है । हमारी पारंपरिक दृष्टि लोकान्मुख है । हमारे जीवन दर्शन में इस का स्पंदन अजस्र रहता है ।

आधुनिक कला और साहित्य में लोकोन्मख प्रवृत्ति प्राय: अधिक प्रकट हुई है । पहले पहल कला के क्षेत्र में इस का प्रसार हुआ, बाद में साहित्य की सभी विधाओं में यह विकसित हुई । जहाँ तक कविता की बात है उस में यह मोह या तो बिम्बों या प्रतीकों के माध्यम से प्रकट हो सकता है या भाषिक चेतना की सूक्ष्मता के माध्यम से । लेकिन कहानी में बहुधा यह संभव नहीं दीखता । कहानी में इस के दो रूप हो सकते हैं - लोकदृष्टि का विन्यास उस का एक रूप है, दूसरा है ग्रामीण जीवन की सामाजिक समस्याओं का प्रतिपादन । कभी-कभी इन दोनों का समन्वय भी होता है । हिन्दी-आँचलिक कहानियों में यही हुआ है । हालाँकि यह कहना बेहत्तर होगा कि इस प्रवृत्ति का प्रकट रूप है आँचलिक साहित्य । हिन्दी कहानी में सन् 50 के बाद यह प्रवृत्ति अधिकाधिक विकसित दीखती है । अत: लोकजीवन से परिचित कराने की दिशा में आँचलिक कहानियों का योगदान निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है । हिन्दी में यह प्रवृत्ति अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में अधिक सशक्त दीखती है । अत: इस का उत्तरोत्तर विकास ही हुआ है ।

आँचलिक कहानियाँ प्राय: गाँवों के समाजशास्त्र से संबद्ध हुआ करती हैं । गाँवों में पुरानी सामन्तीय व्यवस्था पूर्ण रूप से गायब नहीं हुई है । गाँवों का जीवन अब भी कुछ इने-गिने ज़मीन्दारों के अधीन में है । गाँवों के विकास के हेतु

स्वीकृत योजनाओं का सही कार्यान्वयन इसलिए नहीं होता है कि ज़मीन्दारों के साथ सरकारी कर्मचारी भी मिले हुए हैं । चाहे बाढ़ हो या सूखा हो या अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ, सुरक्षा और सुविधायें उन लोगों को मिलती नहीं है जिन्हें इन की सख्त ज़रूरत है । अत: गाँवों या अंचलों का पिछड़ापन इस प्रकार स्वीकृत हो गया है जैसे कोई स्वीकार्य तथ्य हो । पिछड़ी हुई जातियों पर दूसरे ढंग के शोषण भी चलते रहते हैं । इस कारण से गरीबों का जीवन बिना किसी परिवर्तन के साथ रह गया है । आर्थिक विपन्नता के दलदल से उन को मुक्ति ही नहीं हुई है । अत: उन का संघर्ष अब भी ज़ारी है ।

आँचलिक कहानीकारों ने इन स्थितियों को अपनी कहानियों केलिए अपनाते हुए गाँवों के समाजशास्त्र का एक आनुषंगिक प्रारूप पाठकों के सामने रख दिया है । इस का यह अभिप्राय नहीं कि उन के द्वारा तैयार किया हुआ यह प्रारूप वैज्ञानिक और सर्वसम्मत है । कहानीकारों ने समस्याओं की तरफ़ संकेत किया है, उन अन्तर्विरोधों पर ज़ोर दिया है, जिन का बदलना बेहद आवश्यक है । "कर्मनाशा की हार" का भैरोपाँड़े की घोषणा में अंधविश्वास की आड़ में होनेवाले शोषण के नंगापन को दर्शाने का उपक्रम है । उस में नई आकांक्षा स्फुरित है ; बदलाव का स्वर भी सुनाई पड़ता है । अत: आँचलिक कहानियों में हम यह अनुभव कर सकेंगे कि भारतीय गाँव किन किन अवस्थाओं में स्थित हैं । कुछ कहानियों में गाँवों का वास्तविक वर्णन है, अन्य कुछ कहानियों में बदलने की आकांक्षा है । इस प्रकार स्थिर और गतिशील सामाजिक अवस्थाओं के बीच में कहानीकारों ने अपने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का परिचय दिया है ।

इस संदर्भ में यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि क्या साहित्य के माध्यम से ही सामाजिक अन्तर्विरोधों का चित्रण भली-भाँति किया जा सकता है ? क्या

साहित्य ऐसी समस्याओं के प्रचार का मंच है ? वस्तुत: जहाँ तक इन विवेच्य आँचलिक कहानीकारों का संबंध है, उन की अधिकतर ऐसी कहानियाँ मिलती हैं, जिन में ग्रामीण सामाजिक समस्या एक ज्वलंत पक्ष है । उन रचनाओं की बुनियाद में सामाजिक अन्तर्विरोध के प्रति विद्रोही भावना भी वर्तमान है । यह सच है कि आँचलिक कहानी की यह दिशा प्रगतिशील चिन्तन का परिणाम है । आँचलिक कहानी का कतई यह उद्देश्य नहीं है कि वह मात्र ग्रामीण सौन्दर्य का चित्रण करे । ग्रामीण जीवन के तमाम सौन्दर्य पक्षों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ आँचलिक कहानीकारों ने सामाजिक पक्ष को भी प्रमुखता दी है । प्रश्न सिर्फ इतना ही है कि सामाजिक यथार्थ को कौन किस रीति से प्रस्तुत करता है । यह तो सही है कि सभी कहानियाँ इस दृष्टि से सफल नहीं हैं । लेकिन यह असफलता मात्र आँचलिक धारा की कहानियों की ही नहीं है । सभी रचनाओं से रचनात्मकता की पूरी निष्ठा की अपेक्षा नहीं की जा सकती । अत: यह स्वाभाविक ही है ।

हाल ही में भारतीय और रूसी के साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन पर आयोजित संगोष्ठी का उद्घाटन भाषण करते हुए रघुवीर सहाय ने हिन्दी और रूसी के आँचलिक साहित्यों पर गहराई के साथ विचार किया था । उन के अनुसार आँचलिक साहित्य राष्ट्रीय साहित्य की कोटि का है । (आलोचना जनवरी-मार्च '87) रघुवीर सहाय ने भी संभवत: इसी अर्थ में आँचलिक साहित्य को राष्ट्रीय साहित्य कह कर अभिहित किया है कि उस में वास्तविक मानवीय सरोकार केलिए सही स्थान प्राप्त है । जो साहित्य देश की सही स्थिति का परिचय कराता है उसे निस्सन्देह राष्ट्रीय साहित्य माना जा सकता है । रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय की कहानियों की यह मूल्यवत्ता हमेशा रहेगी ।

फणीश्वरनाथ रेणु

कहानी संग्रह

1. ठुमरी	(छठा संस्करण)	-	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।
2. आदिम रात्री की महक	(नवीन आवृत्ति) 1982)	-	अनुपम प्रकाशन, पाटना ।
3. अग्निखोर	(प्रथम संस्करण)	-	संभावना प्रकाशन, हापुड ।
4. एक श्रावणी दोपहरी की धूप	(प्रथम संस्करण)	-	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।
5. अच्छा आदमी	(प्रथम संस्करण)	-	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

[illegible]

6. मैला आँचल	(छठा संस्करण)	-	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।
7. परती परिकथा	(छठा संस्करण)	-	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

8. दीर्घतपा (दूसरा संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रका दिल्ली-।

9. जुलूस (पहला संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रका दिल्ली-।

10. कितने चौराहे (प्रथम संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

11. पलटू बाबू रोड़ (प्रथम संस्करण) - अनुपम प्रकाशन, पाटना।

12. नेपाली क्रान्तिकथा (प्रथम संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

13. ऋणजल धनजल (द्वितीय संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

14. श्रुत अश्रुत पूर्व (प्रथम संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

15. वनतुलसी की गंध (प्रथम संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

शिवप्रसाद सिंह

कहानी संग्रह

16. आर-पार की माला (प्रथम संस्करण) - सरस्वती मन्दिर, काशी ।

17. कर्मनाशा की हार (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाश वाराणसी ।

18. इन्हें भी इन्तजार है (प्रथम संस्करण) - हिन्दी प्रचारक पुस्तकाल वाराणसी ।

19. मुरदासराय (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाश वाराणसी ।

20. भेड़िये (द्वितीय संस्करण) - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

[illegible] साहित्य

21. अलग-अलग वैतरणी (द्वितीय संस्करण) - लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

22. गली आगे मुड़ती है (द्वितीय संस्करण) - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली ।

23. उत्तर योगी (प्रथम संस्करण) भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

24. घाटियाँ गूँजती है (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

25. शिखरों का सेतु (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

26. कस्तूरिमृग (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

27. चतुर्दिक (प्रथम संस्करण) - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

28. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उस का साहित्य (प्रथम संस्करण) - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी ।

29. आधुनिक परिवेश और नवलेखन (प्रथम संस्करण) - लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

30. आधुनिक परिवेश और अस्थित्ववाद (प्रथम संस्करण) - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली - 6

31. विद्यापति (छठा संस्करण) - लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

32. मेरी प्रिय कहानियाँ (प्रथम संस्करण) - राजपाल एण्ड़ सन्स, दिल्ली ।

मार्कण्डेय

कहानीसंग्रह

33. पान-फूल (तृतीय संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

34. महुए का पेड़ (प्रथम संस्करण) - लहर प्रकाशन, इलाहबाद ।

35. हंसा जाइ अकेला (तृतीय संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, अलाहबाद ।

36. भूदान (दूसरा संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

37. माही (प्रथम संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

38. सहज और शुभ (प्रथम संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

39. बीच के लोग (प्रथम संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

कहानियेतर रचनाएँ

40. सेमल के फूल (दूसरा संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

41. अग्निबीज (प्रथम संस्करण) - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहबाद ।

42. कहानी की बात (प्रथम संस्करण) - लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

43. पत्थर और परछाइयाँ (प्रथम संस्करण) - लहर प्रकाशन, इलाहबाद ।

44. सपने तुम्हारे थे (प्रथम संस्करण) - लहर प्रकाशन, इलाहबाद ।

आलोचनात्मक ग्रन्थ

45. अधूरे साक्षात्मकार (प्रथम संस्करण) - नेमीचन्द्र जैन,
अक्षर प्रकाशन,
दिल्ली ।

46. आँचलिक उपन्यास और रेणु (प्रथम संस्करण) - डा.सत्यनारायण उपाध्याय,
संजय प्रकाशन
वाराणसी ।

47. आँचलिकता से आधुनिकता बोध(प्रथम संस्करण) - डा.भगवतीप्रसाद शुक्ल,
ग्रन्थम, रामबाग,
कान्पुर ।

48. आज का हिन्दी साहित्य (प्रथम संस्करण) - रामदरस मिश्र,
अभिनव प्रकाशन,
दिल्ली-6 ।

49. आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि - परमानंद श्रीवास्तव,
अभिनव प्रकाशद,
दिल्ली ।

50. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य में प्रगति चेतना (प्रथम संस्करण) - डा.लक्ष्मणदत्त गौतम,
कोणार्क प्रकाशन,
दिल्ली-7

51. आलोचना और साहित्य - इन्द्रनाथ मदान,
कोणार्क प्रकाशन,
दिल्ली-7

52. आधुनिक हिन्दी कहानी संग्रह (प्रथम संस्करण) - गंगाप्रसाद विमल, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नयी दिल्ली ।

53. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व (प्रथम संस्करण) - डा. लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, साहित्य भवन, इलाहबाद ।

54. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. बच्चनसिंह, साहित्यभवन, इलाहबाद ।

55. कहानी और कहानी (प्रथम संस्करण) - इन्द्रनाथ मदान, रामचंद एण्ड कंपनी, दिल्ली ।

56. कहानी नयी कहानी (प्रथम संस्करण) - नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

57. कहानी स्वरूप और संवेदना (प्रथम संस्करण) - राजेन्द्रयादव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली - 6

58. कथा विवेचन और गद्य शिल्प (प्रथम संस्करण) - रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 7

59. नई कहानी दशा, दिशा और संभावना (प्रथम संस्करण) - धनंजयवर्मा, अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर ।

60. नई कहानी की मूल संवेदना (प्रथम संस्करण) - डा. सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली - 6

61. नई कहानी की मूल संवेदना (प्रथम संस्करण) - डा. सुरेश सिन्हा, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली - 6

62. नई कहानी उपलब्धि और सीमायें (प्रथम संस्करण) - डा. गोरधन सिंह - शेखावत, रमा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर ।

63. नई कहानी कथ्य और शिल्प (प्रथम संस्करण) - डा. सन्तबख्शसिंह, अभिनव भारती प्रकाशन, इलाहबाद ।

64. नई कहानी नये प्रश्न (प्रथम संस्करण) - डा. सन्तबख्शसिंह, साहित्यालोक, कानपुर ।

65. नई कहानी की भूमिका (संस्करण 1978) - कमलेश्वर, शब्दकार, दिल्ली ।

66. नई कहानी संदर्भ और प्रकृति (प्रथम संस्करण) - देवीशंकर अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 6

67. नये कहानीकार (द्वितीय संस्करण) - फणीश्वरनाथ रेणु, सं. राजेन्द्रयादव, राजकमल एण्ड सन्ज, दिल्ली ।

68. प्रश्नों के घेरे (प्रथम संस्करण) - सं. राजेन्द्र अवस्थी, सरस्वती विहार, दिल्ली - 32

69. प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य (प्रथम संस्करण) - डा. राधेश्याम गुप्त, विमल प्रकाशन, जयपुर ।

70. प्रेमचन्द विरासत का सवाल (प्रथम संस्करण) - शिवकुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

71. प्रसंग (प्रथम संस्करण) - श्रीकान्त वर्मा, संभावना प्रकाशन, हापुड़ ।

72. फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला - कुसुम सोफर, संभावना प्रकाशन, हापुड ।

73. बदलते परिप्रेक्ष्य (प्रथम संस्करण) - नेमीचन्द्र जैन,
राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली ।

74. मानक शब्द कोश भाग-2 (प्रथम संस्करण) - सं. रामचन्द्र वर्मा,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग ।

75. रेणुसेभेंट (प्रथम संस्करण) - सं. भारत यायावर,
वाणी प्रकाशन,
दिल्ली ।

76. रेणु कतृत्व और कृतियाँ (प्रथम संस्करण) - सं. सियाराम तिवारी,
नवनीत प्रकाशन,
पाटना ।

77. रेणु संस्मरण और श्रद्धांजली (प्रथम संस्करण) - सं. प्रो. रामबुझावन सिंह,
नवनीत प्रकाशन,
पाटना ।

78. विवेक के रंग (प्रथम संस्करण) - सं. देवीशंकर अवस्थी,
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
वाराणसी-5

79. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ (प्रथम संस्करण) - सं. राजेन्द्र अवस्थी,
पराग प्रकाशन,
दिल्ली ।

80. समकालीन कहानी रचना और दृष्टि (प्रथम संस्करण) - श्यामकिशोर सेठ,
प्रतिमान प्रकाशन,
शाहजहाँपुर ।

81. समकालीन हिन्दी कहानी (प्रथम संस्करण) - प्रवृत्ति और परिदृश्य,
यदुनाथ सिंह,
चित्रलेखा प्रकाशन,
इलाहाबाद-6

82. साहित्यधारा - प्रकाश चन्द्रगुप्त,
चित्रलेखा प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

83. स्वातंत्र्योत्तर कथासाहित्य (प्रथम संस्करण) - सीताराम शर्मा,
युगबोध प्रकाशन,
कलकत्ता-12.

84. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन (प्रथम संस्करण) - विवेकी राय,
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

85. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी (प्रथम संस्करण) - कृष्ण अग्निहोत्री,
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन,
दिल्ली - 51.

86. स्थितियाँ रेखाँकित (प्रथम संस्करण) - गोविन्द मिश्र,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली ।

87. स्मृतिलेखा (प्रथम संस्करण) - अज्ञेय,
नेशनल पब्लिशिंह हाउस,
दिल्ली ।

88. हिन्दी कहानी नयी रचना-शीलता (प्रथम संस्करण) - सतीश जमालिया, नई कहानी प्रकाशन, इलाहबाद - 6.

89. हिन्दी कहानी सामाजिक-संदर्भ (प्रथम संस्करण) - डा. अश्वघोष, राजश्री प्रकाशन, मथुरा ।

90. हिन्दी कहानी के विकास में बिहार का योगदान (प्रथम संस्करण) - चन्द्रभूषण मिश्र, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली ।

91. हिन्दी कहानी एक अन्तर्यात्रा (प्रथम संस्करण) - डा. वेदप्रकाश अमिताभ, निराला प्रकाशन, गुजरात-2.

92. हिन्दी गद्य- विकास और परंपरा (प्रथम संस्करण) - डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश, साहित्य संस्था, दिल्ली-32.

93. हिन्दी कहानी - पन्द्रह पदचिन्ह (प्रथम संस्करण) - प्रो. महेन्द्र प्रताप, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।

94. हिन्दी गद्य साहित्य का विकास (प्रथम संस्करण) - आ. उमेश शास्त्री, देवनगर प्रकाशन, जयपुर ।

95. हिन्दी कहानी की शिल्पविधि का विकास (तृतीय संस्करण) - डा.लक्ष्मी नारायण लाल, साहित्य भवन प्राइवट लिमिट इलाहबाद-3.

96. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि (प्रथम संस्करण) - आदर्श सक्सेना, सूर्या प्रकाशन, बिकानेर ।

97. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - डा.परमानंद श्रीवास्तव, सूर्या प्रकाशन, बिकानेर ।

98. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान (प्रथम संस्करण) - डा.रघुवरदयाल वार्ष्णेय, पाँडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली-51.

99. हिन्दी कहानी सातवाँ-दशक (प्रथम संस्करण) - प्रह्लाद अग्रवाल, दि मैकमिलन एण्ड कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली ।

100. हिन्दी कहानी समीक्षा और संदर्भ (प्रथम संस्करण) - डा. विवेकीराय, राजीव प्रकाशन, इलाहबाद-6.

101. A glossary of Literary Terms (Re-print 1985) - Abrams M.H., Machmillan India Ltd., Delhi.

102. Dictionary of World Literary Terms (First Edition) - Joseph.T.Shiplay, Machmillan India Ltd., Delhi.

103. Encyclopedia Americana(1961) - Damiel.G.Hoffman,

104. Hindi Review Magazine - Devaraj Upadhyaya, Sakhathyadhara, Calcutta.

105. Indian Literature Since Independence (First Edition) - Introduction: K.R.Sreenivas Iyankar Sahitya Academi, New Delhi.

106. Modern Hindi Short Story (First Edition) - Mahendra Kulassestha, National Publishing H Delhi.

107. Rural Tradition in English Novel (Edition 1977) - Glen Caveliers, Machmillan Publishers New Delhi.

108. Short Stories of Thomas Hardy (Edition 1980) - Kristan Brady, Machmillan Publishers New Delhi.

109. The English Regional Novels (First Edition) - Phyllis Bentlay, George Allen and Unio Ltd., London.

110. What's in a Novel (First Edition) - Helen.E.Haindas, George Allen and Unio Ltd,, London.

पत्रिकाएँ

1. अब	- अप्रैल 1973
2. अक्षरा	- अंक - 5
3. अमृत-प्रभात	- वार्षिक विशेषांक 1985
4. आज कल	- जुलाई 1977,
	- एप्रिल 1986
5. आलोचना	- अक्तूबर 1957
	- जुलाई 1965
	- जनवरी 1966
	- पूर्णांक 33
	जनवरी-मार्च 1983
	- जनवरी-मार्च 1984
	- अक्तूबर 1985
	- जनवरी-मार्च 1987
6. कल्पना	- नवंबर 1957
	- मई-जून 1961
	- मार्च 1965
7. कहानी	- मार्च 1957
8. कथा	- अंक - 5
9. गगनांचल	- अंक - 2
10. गवाह	- जुलाई-आगस्त-सितंबर 1979
11. ज्योत्सना	- रेणु स्मृति अंक

12. ज्ञानोदय - जून 1965
- फरवरी 1968
- अक्तूबर 1969
13. तटस्थ - अक्तूबर 1972
- अप्रैल 1979 - रेणु स्मृति अंक
14. दस्तावेज - जुलाई 1984
- अक्तूबर-दिसंबर 1985
15. नया आलोक - अंक 6, 1984
16. पहल - पुस्तिका-7
17. पूर्णा - मार्च 1984 - कहानी समीक्षा विशेषांक
18. पूर्वग्रह - मार्च-अप्रैल 1979
19. प्रतिमान - अक्तूबर 1972
20. मूल्यांकन - अंक - 1, 1985.
21. माया - जनवरी 1965
22. रविवार - अप्रैल 1986
23. लहर - नवंबर-दिसंबर 1965
24. वातायन - अक्तूबर-जनवरी 1981
25. वीणा - मार्च 1986
26. विश्वभारती पत्रिका - अक्तूबर 1971, मार्च-अप्रैल 1987
27. सारिका - अक्तूबर 1961
- जुलाई 1978
- फरवरी 1980

28.	समालोचना	- जून 1958
		- जून 1959
		- फरवरी 1958
		- जून 1968
29.	समीक्षा	- अप्रैल-जून 1986
30.	हिन्दुस्तानी	- मार्च 1975
		- जनवरी-मार्च 1984